चिन्तामणि : कवि और आचार्य

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

की

डी० फिल्० (हिन्दी) के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध सार

⊙

प्रस्तुतकर्ता

विद्याधर मिश्र

एम० ए० (हिन्दी)

⊙

निर्देशक

डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह

प्राध्यापक : हिन्दी विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

⊙

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

महाशिवरात्रि, सम्वत् २०३३ बुधवार, १६ फरवरी, १९७७

"शोध प्रबन्ध सार"

शोध का आरम्भ सम्भावनाओं से होता है किन्तु जब सम्भावनायें वास्तविकता का रूप ले लेती हैं तो सारांश एक सुखद भूमिका में पर्यवसित हो जाता है। चिंतामणि के विषय में शोध प्रारम्भ करने पर जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा उन खट्टी मीठी अनुभूतियों की आवृत्ति अपेक्षित नहीं है किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि इस क्रम में जो कुछ प्राप्त हुआ है वह परिश्रम की सार्थकता प्रदान करने के लिए पर्याप्त है।

अपने शोध के प्रवाह में मैंने जितना कुछ किया और जो कुछ मुझे मिला उससे मैं केवल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अभी मैं केवल मूर्ति का ढाँचा तैयार कर सका हूँ। उसमें रंग रेखाएं उभारने की आवश्यकता बनी हुई है जिसे आगे के शोधार्थी पूरा करेंगे। व्यक्ति की समग्रता को बाँध लेना इतना सरल भी तो नहीं है।

मानव के अन्तर्मन में आन्दोलित होने वाले भावों का संकलन हिन्दी साहित्य के रीति काल में कला के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। भावों की सरलता, कल्पना की ऊँचाई, वास्तविक सौन्दर्य की अनुभूति एवं काव्य शास्त्र का विविधांग विवेचन इस काल के आचार्य कवियों में भरा पड़ा है।

आचार्य चिन्तामणि रीति साहित्य के प्रथमाचार्य हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। इसे हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि इतने प्रमुख आचार्य कवि की उपेक्षा हुई है। इनकी कृतियां देश के विभिन्न पुस्तकालयों में "पुरानी पोथी" के रूप में बँधी पड़ी हैं।

<u>चिन्तामणि का जीवन वृत्तः-</u> भारतीय जीवन दृष्टि मुख्यतः अन्तर्मुखी एवं आत्मपरक है इसलिए कुछ अपवादों को छोड़कर कवियों एवं साहित्यकारों ने आत्म-विज्ञापन से बचने का प्रयत्न किया है। आचार्य चिंतामणि ने भी अपने जन्म, कुल, गोत्र, कुटुम्ब आदि के विषय में हमें "गोता लगाने" के लिए छोड़ दिया है। ऐसी दशा में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में बहिः साक्ष्य एवं जन श्रुतियों का आश्रय लेकर चिंतामणि के जीवन वृत्त की एक सम्भावना मूलक पुनरचना प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

चिंतामणि के जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक प्रकार की मान्यताएं स्थापित की हैः

१- ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने इनका समय सं० १७२९ स्वीकार किया है जिसे भ्रमवश जन्म काल मान लिया गया है।

२- मिश्र बन्धुओं ने इनका जन्म सं० १६६६ स्वीकार कर लिया है।

३- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मिश्र बन्धुओं के आधार पर बिना किसी विवेचन के सं० १६६६ स्वीकार कर लिया है।

४- डा० सत्यदेव चौधरी ने अपने शोध प्रबन्ध में परम्परा प्राप्त सं० १६६६ का उल्लेख किया है किन्तु हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास षष्ठ भाग में सं० १६६०-१६६५ के बीच मानने का आग्रह किया है।

५- डा० सत्य कुमार चन्देल ने सं० १६६० सिद्ध किया है।

हमारा विचार है कि सं० १७२९ जन्म संवत न होकर उनकी उपस्थिति का सूचक है क्योंकि यदि हम सं० १७२५ तक कवि कुल कल्पतरु का निर्माण काल मान लेते हैं तो

का यह कथन अपनी विसंगतियों के कारण एक प्रवाद बन कर रह गया है कि डा० शिव सिंह सेंगर ने अनुमानतः रूप से इन्हें इनका आश्रित कवि मानते हुए यद्यपि इनका जन्म संवत १७२९ वि० निश्चित कर दिया है फिर भी विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता ।

अतः सं० १७२९ को केवल भ्रमवश ही जन्म संवत मान लिया गया है और सेंगर जी के नाम से उसे जोड़ दिया गया है उक्त संवत् को जन्म संवत मानना किसी दृष्टि से उचित नहीं है।

ऐसी दशा में किसी अकाट्य प्रमाण के न होते हुए भी अनेक दृष्टि से विचार करने पर तथा चिन्तामणि के भाइयों के भी जीवन वृत्त को ध्यान में रखते हुए मिश्र बन्धुओं द्वारा स्वीकृत एवं परम्परा से अनुमोदित सं० १६६६ के लगभग चिंतामणि के जन्म संवत स्वीकार किया जाना चाहिए। शोध प्रबन्ध में इस पर युक्ति पूर्ण विवेचन का प्रयास किया गया है।

इसी प्रकार जन्म भूमि। निवास स्थान, वंश परम्परादि, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम तथा नीलकंठ को सहोदर भ्रातृत्व सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। तथा पिता का नाम, आस्पद एवं गोत्र, विद्याध्ययन एवं गुरु, जीवनचर्या, धार्मिक विश्वास, सिद्धान्त और विचार धारा के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर आए है कि चिंतामणि को एक उदार एवं समन्वय वादी सद्गृहस्थ कहना अधिक युक्त संगत होगा जो पंचदेवोपासक है। वैष्णव भक्ति का ही इस युग में प्रवाह था ही।

चिंतामणि का कृतित्वः चिंतामणि ने कुल कितने ग्रन्थों की रचना की यह निश्चित और निर्विवाद रूप से कहना कठिन है। खोज रिपोर्ट एवं विभिन्न विद्वानों की सूचनाओं के अनुसार चिंतामणि के निम्नलिखित ग्रन्थ बतलाए जाते हैं:

१- रस विलास
२- भाषा पिंगल
३- श्रृंगार मंजरी
४- कवि कुलकल्प तरू
५- कृष्ण चरित्र
६- काव्य विवेक
७- काव्य प्रकाश
८- रामायण
९- रामाश्व मेघ
१०- कविन विचार
११- गीत गोविन्द सटीक
१२- बारह खड़ी
१३- चौदासी

इनमें से कुछ ग्रन्थ या तो अनुपलब्ध है या अपूर्ण रूप में प्राप्त है और कुछ ग्रन्थों की प्रमाणिकता के विषय में प्रश्नवाचक चिन्ह लगे हुए है। शेष ग्रन्थ हमारे आलोच्य कवि की कृतियाँ है। सुविधा के लिए इन ग्रन्थों के परिचय निम्नांकित रूप में प्रस्तुत की गई है:-

(क) चिन्ता मणि के उपलब्ध पूर्ण ग्रन्थः भाषा पिंगल, श्रृंगार मंजरी, कवि कुल कल्प तरू।

(ख) चिंतामणि के उपलब्ध अर्दित ग्रन्थः   रस विलास, कृष्ण चरित।

(ग) ग्रन्थों के अतिरिक्त उपलब्ध छन्दः   कवित्त विचार, काव्य विवेक, रामायण।

(घ) चिंतामणि के संदिग्ध ग्रन्थः   रामाश्वमेध, कर्मविपाक, बारह खड़ी और चौतीसी

आश्रयदाताः — आचार्य चिंतामणि रीतिकालीन उन गिने चुने कवियों में से है जिन्हें बड़े से बड़े बादशाहों और रजवाड़ों से लेकर सामन्तों, दीवानों मनसबदारों तक का स्नेह और संरक्षण प्राप्त था। उन्होंनें अपने रस विलास ग्रन्थ में अनेक आश्रय दाताओं की प्रशस्तियाँ की है जिनमें उनके दान और पराक्रम का उत्तम एवं अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। उक्त ग्रन्थ में शाहजहाँ दाराशिकोह, रुद्रशाह, जाफर खान, जैनदी मुहम्मद इन पाँच व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त उनकी अन्य कृतियों में छत्र अकबर शाह, रुद्र शाह सोलंकी, रहम कुला, शाहशुजा, शाह मकरन्द, इत्यादि के आश्रय में रहने का उल्लेख है।

चिंतामणि की जीवन दृष्टि एवं विचार धाराः   चिंतामणि की जीवन दृष्टि आध्यात्मिक है। उनका व्यक्तित्व संतुलित एवं चिंतनशील रहा है और उनका जीवनानुभव व्यापक एवं वास्तविक रहा है। चिंतामणि का भक्ति सिद्धान्त वस्तुतः भगवत प्रेम मूलक और भगवान के अनुग्रह पर आश्रित है यद्यपि इनकी रचनाओं में यथा स्थान दास्य भाव के भी छन्द मिलते है जिनमें भगवान की महिमा और अपनी लघिमा का स्पष्ट उल्लेख है तथापि तत्वात्मक दृष्टि से इनका पुष्टि मार्गानुयायी होना ही अधिक विश्वसनीय मालूम होता है।

<u>चिंतामणि का अभिव्यक्ति पक्षः-</u> चिन्तामणि के अभिव्यक्ति पक्ष में बिम्ब विधान, कार्यविधी कल्पना, भावविधी कल्पना, कल्पना व्यापार पुनरुत्पादक कल्पना, अलंकार योजना भाषिक सौन्दर्य का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

काव्य में आनन्द दायक तत्व भाव है जो अपने उत्कर्ष में आस्वादनीय बनकर रस की संज्ञा प्राप्त करता है। जब हम रस के सामान्य तत्वों पर विचार करते हैं तो प्रधान रूप से आलम्बन और आश्रय का महत्व दृष्टिगत होता है।

जहाँतक चिंतामणि का प्रश्न है उनकी रस योजना के आलम्बन प्रायः दोप्रकार के दिखाई पड़ते है एक सामान्य प्राणि जिनका जीवन लौकिकता से ओत-प्रोत है और दूसरे वे है जिनमें लौकिता के साथदिव्यता भी विद्यमान है। उदाहरणार्थ कहीं सामान्य लौकिक नायकः नायिक के प्रणय व्यापार की चर्चा से लौकिक श्रृंगार की निष्पत्ति दिखाई देती है तो कहीं राधा कृष्ण का दाम्पत्य अलौकिक धरातल का संस्पर्श करता है।

इस भाव योजना की दृष्टि से क्रमशः श्रृंगार,भक्ति , वात्सल्य और वीर रसों का संक्षिप्त समीक्षात्मक विवेचन किया गया है। अन्य रसों के अधिक उदाहरण न प्राप्त होने के कारण उनका मात्र उल्लेख आचार्य सं० में किया गया है।

कृष्ण चरित्र, एक चरित काव्यः- चिंतामणि का एक मात्र प्राप्त काव्य ग्रन्थ कृष्ण चरित्र है इस ग्रन्थ से अब तक हिन्दी साहित्य संसार अपरिचित रहा है। कृष्ण चरित्र बारह सर्गों में विभक्त एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य है।उपलब्ध प्रति के अनुसार इसकी रचना ७५८ छन्दों में हुई थी किन्तु मूल प्रति के कुछ पृष्ठांशों के नष्ट हो जाने के कारण अब केवल ७२३ छन्द प्राप्य हैं। जैसा नाम से स्पष्ट है कि इस काव्य का वर्ण्य विषय कृष्ण का चरित्र है। श्रीमद् भागवत् , स्कन्दपुराण, हरिवंश पुराण एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण से यथारुचि सामग्री का संचयन किया गया है। चरित काव्य के निकष तत्वों के आधार पर कृष्ण चरित्र को एक चरित काव्य घोषित किया गया है।

चिंतामणि का आचार्यत्व:

काव्य चिंतन प्रकरण: काव्य चिंतन में काव्य की परिभाषा , काव्य भेद, काव्य प्रयोजन, काव्य पुरुष, रीति, वृत्ति, शय्या, पाक एवं काव्य सम्पदा का विवेचन किया गया है। रसवादी आचार्यों में वामन सम्मत श्लेषादि गुणों का खण्डन कर दिया है और माधुर्यादि तीन गुणों में ही १० गुणों का अन्तर्भाव किया है ऐसी दशा में श्लेषादि गुणों का उल्लेख या तो अनुवाद के प्रवाह में किया गया है अथवा प्रमादवश। रीति और वृत्ति को चिंतामणि ने क्रमशः मानव स्वभाव और मानव वृत्ति के साथ जोड़ा है। दोनों में मूल अन्तर यह है कि मानव स्वभाव अपेक्षाकृत बहिरंग होता है और मानव वृत्तियाँ आन्तरिक। विश्वनाथ ने "रीतियोंऽवयव संस्थान विशेषवत्" कह कर

जिस "पद संघटना रीतिः" का उल्लेख किया है वह काव्य पुरुष के रूपक में अधिक संगत है लेकिन चिन्तामणि ने अपनी सधी समीक्षा के द्वारा रीति और वृत्ति में भेदक रेखा खींचने में सफलता पाई है। रूपक के निर्वाह में चिंतामणि की कठिनाई विश्वनाथ के अनुकरण के कारण हुई है।

<u>गुण प्रकरण:</u> इस प्रकरण में गुणों के स्वरूप एवं उनके भेदापभेद का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत में वर्णित गुणों एवं उनके अन्तर्भाव तथा प्रभाव की समीक्षा के साथ साथ चिन्तामणि ने अपनी निजी स्थापनाओं के विवेचन को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। चिन्तामणि की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने काव्य प्रकाश को आधार बनाते हुए भी वामन के अनुकूल दोषों के लक्षण और उनके उदाहरणों का विस्तृत विवेचन किया है और छन्दों की सीमा में भी खंडन-मंडन की शास्त्रीय प्रक्रिया का निर्वाह किया है। इससे गुण के प्रायः पूर्ण और शुद्ध रूपक का परिचय सरलता से हो जाता है दूसरी बात यह है कि इनके उदाहरण लक्षण की कसौटी पर अत्यन्त खरे उतरे हैं। लक्षणानुकूलता के निर्वाह के साथ रीति कालीन रंगीनी और सरलता से युक्त ये उदाहरण मुक्तक चिंतामणि के कवि रूप को प्रकाशित करने में पूर्ण समर्थ है।

जहाँ तक मौलिकता का प्रश्न है वहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि चिंतामणि की दृष्टि मूलरूप से परम्परा को हिन्दी कवियों तक पहुंचाने में रही

है किन्तु यत्र तत्र उनकी मौलिकता एवं अभिनवता स्पष्ट झलकती है।

<u>अलंकार:</u> चिंतामणि के अलंकार निरूपण के प्रसंग में आचार्य मम्मट, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित के ग्रन्थों की प्रतिच्छाया देखते है तो एक सुखद संतोष सा प्राप्त होता है उल्लेखनीय यह है कि स्थान स्थान पर तत्तद् आचार्यों का नामोल्लेख करके चिंतामणि ने अपनी स्पष्ट कृतज्ञता ज्ञापित करने का प्रयास किया है। साथही आधार भूत ग्रन्थों के उल्लेख से ग्रन्थ की प्रामाणिकता भी सिद्ध हो गई है।

कवि कुल कल्प तरु के द्वितीय प्रकरण में ७ शब्दालंकारों की ३० छन्दों मे सोदाहरण विवेचना की गई है। तृतीय प्रकरण में ६७ अर्थालंकारों के भेदोप भेद सहित निरूपण में १२० छन्दों का उपयोग किया गया है।

विवेचन के क्रम में आचार्य चिंतामणि ने कहाँ तक संस्कृत आचार्यों का शुद्ध एवं सफल अनुवाद किया है, अथवा अनुवाद या छायानुवाद है उसे कहाँ तक मौलिकता या विशिष्टता ज्ञापित होती है।? क्या संक्षिप्तता या लाघव की प्रवृत्ति के कारण लक्षण अस्पष्ट, दोष पूर्ण अथवा अधूरे तो नहीं हो गए हैं इत्यादि सन्दर्भों में चिन्तामणि के अलंकारों का आलोचनात्मक अध्ययन करने-का प्रस्तुत करने विनम्र प्रयास किया गया है।

रीति काल के अनेक आचार्यों की तुलना में चिंतामणि का महत्व इस लिए बढ़ जाता है कि इन्होंने किसी एक ग्रन्थ का अनुवाद का प्रयास न करके अपनी

शक्ति और सीमा के अनुरूप एक शोधार्थी की भूमिका अपनाई है। उन्होंने अनेक महत्व पूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थों जैसे साहित्य दर्पण, काव्य प्रकाश, कुवलयानन्द इत्यादि ग्रन्थों से सामग्री संचयन करके जो कुछ प्रस्तुत किया है वह आद्यन्त मौलिक भले न हो किन्तु चिन्तामणि की प्रखर चिन्तनशीलता और सार ग्राहिणी प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए कम महत्व पूर्ण नहीं है। हम तो इसे मौलिकता ही कहना चाहेंगे।

<u>दोष प्रकरण:-</u> प्रस्तुत प्रकरण मे दोष की परिभाषा, दोषों के प्रकारण, शब्दगत दोष, वाक्य गत दोष अर्थगत दोष, रसगत दोष, दोषों के स्वरूप एवं कतिपय दोषों के लक्षण तथा विवेचन को अध्ययन का बनाया गया है। काव्य प्रकाश को आधार मानकर चिंतामणि ने दोष की विवेचना की है किन्तु गम्भीर विषय का विवेचन नहीं किया गया है। अनेक स्थलों पर उदाहरणों का अभाव ग्रन्थ को अस्पष्ट बना रहा है। तथापि हिन्दी के प्रथम दोष विवेचक के रूप में चिंतामणि ने जो कुछ भी लिखा है वह प्रशंसनीय है। रीति कालीन वातावरण में रचे हुए इनके उदाहरण अत्यन्त सुन्दर हैं। इस दोष के लिए निर्मित इनके उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अतः मौलिकता के अभाव में भी यह प्रयास सफल है।

ध्वनी प्रकरण :- कवि कुल कल्प तरु के पंचम प्रकरण के तीन भाग हैं। प्रथम भाग है। प्रथम भाग में शब्दार्थ निरूपण है। द्वितीय भाग में ४४ पृष्ठों में ध्वनि के अन्य भेदोपभेद का और शेष २०८ पृष्ठों में तथा तीसरे भाग में रस ध्वनि का निरूपण है। इस प्रकार इन्होंने मम्मट के समान संलक्ष्य क्रम व्यंग्य का रूप रस ध्वनी की चर्चा के ध्वनि के भेदों के बीच न करके उनको सर्वतंत्र महत्व दिया है इससे रस ध्वनि के निरूपण में एक व्यवस्था आ गई है और उसका महत्व भी स्पष्ट रूप से लक्षित हुआ है।

एक प्रश्न यह भी उठता है कि चिंतामणि को ध्वनिवादी आचार्य की कोटि में रखा जाय अथवा रसवादी। इस संबन्ध में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ध्वनिवादी आचार्यों ने भी अन्ततः रस ध्वनि को ही उत्तम काव्य माना है अतः चिंतामणि का रसध्वनि वादी होना अनायास ही सिद्ध हो जाता है। मम्मट के ५१ भेदों के स्थान पर चिंतामणि ने ४४ भेदों की चर्चा की है किन्तु अन्तर केवल भेदों के विस्तार का है उनकी मौलिक स्थापनाओं में कोई मतभेद नहीं। परिशिष्ट(क) में सुविधा के लिए ध्वनि के वर्गीकरण का वंश वृक्ष द्वारा प्रस्तुत कर दिया गया है।

शब्द शक्ति प्रकरण :- कविकुल कल्प तरु के पंचम प्रकरण में चिंतामणि ने प्रारम्भ में काव्य प्रकाश को आधार मान कर शब्द शक्ति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना आदि की सप्रभेद व्याख्या प्रस्तुत की गई है। किन्तु यह प्रसंग अत्यन्त संक्षिप्त है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शब्द शक्ति विवेचन में चिंतामणि ने मुख्यतः मम्मट और कहीं कहीं विश्वनाथ का सहारा लिया है किन्तु यह कह देना अनुचित न होगा कि इन्होंने कुछ बातों को छोड़ दिया है और कुछ बातों को स्पष्ट करने में सफल नहीं हुए है । अभिधा का उल्लेख नहीं किया है । लक्षणा के भेदोपभेद की चर्चा भी नहीं की है । अभिधा मूल व्यंजना और लक्षणा मूला व्यंजना का स्वरूप भी स्पष्ट नहीं है । कुल मिला कर इस प्रकरण में किसी नव मौलिकता के दर्शन नहीं होते ।

नायक-नायिका भेद - इस प्रकरण में आचार्य चिंतामणि के रस विलास , श्रृंगार मंजरी और कवि कुल कल्प तरू ग्रन्थों के नायक नायिका भेद का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है । सुविधा के लिये परिशिष्ट में तीनों ग्रन्थों का अलग अलग वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है । लक्षणों की प्रमाणिकता के लिये संस्कृत के मूल ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है । पूरे प्रकरण में कवि कुल कल्प तरू को आधार मान कर अध्ययन प्रस्तुत किया गया ।

रस प्रकरण :- रस एवं रसांग निरूपण सम्बन्धी चिंतामणि के तीन ग्रन्थ प्राप्त होते हैं - कवि कुल कल्प तरू, रस विलास एवं श्रृंगार मंजरी। इनमें से कवि कुल कल्प तरू निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है इस ग्रन्थ में ११३३ छन्द है जिनमें से ५५० छन्दों में रस विषय सामग्री का विवेचन है। ३०५ छन्दों में मुख्य रूप से रस का उल्लेख है तथा २३५ छन्दों में नायक नायिका भेद को स्थान मिला है।

रस सम्बन्धी सामान्य कृतियों के संक्षिप्त परिचय के पश्चात रस निष्पत्ति, रस के असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य का स्वरूप, रस का आनन्द पुण्यात्मा की विशिष्ट उपलब्धि, साधारणीकरण, भाव एवं स्थायी भाव, स्थायी भावों की संख्या, विभाव एवं उनके भेद, अनुभावों के प्रकार, संचारी भाव, नायिकाओं के अन्तर्गत अलंकार एवं रसों के परिपाक का विस्तार के साथ विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन के प्रभाव को प्रभावी बनाने के लिए संस्कृत आचार्यों से तुलनात्मक समीक्षा भी की गई है। साथ ही साथ यह भी दर्शाया गया है कि कवि ने किन किन स्थानों से सार संकलन करके कुशल शोधार्थों के भूमिका निभायी है।

<u>पिंगल प्रकरण:</u> – पिंगल प्रकरण में छन्द के स्वरूप निर्धारण तथा वर्णिक और मात्रिक छन्दों के भेदोपभेद के साथ समीक्षा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तथा उदाहरणोंदोहरण के क्रम में प्रभाव के मूल स्रोतों का भी रेखांकन किया गया है।

छन्द शास्त्र के क्षेत्र में चिंतामणि का यह कृत्य यद्यपि अधिकांशतः प्राकृत पैंगलम् का अनुकरण है तथापि इसकी अपनी उपयोगिता एवं महत्ता है। जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता है। चिंतामणि ने प्राकृत भाषा में उल्लिखित नियमों और उदाहरणों को हिन्दी में प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया

है उसे छन्द विषयक के ज्ञान को सरल और सुबोध्य बनाने का सफल प्रयत्न कह सकते हैं। वस्तुतः चिंतामणि छन्द के हिन्दी लक्षणों की उस परम्परा के प्रतिनिधि और सूत्रधार हैं, जिसने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से अपरिचित व्यक्तियों के छन्द के ज्ञानार्जन का मार्ग प्रशस्त किया है।

<u>चिंतामणि की उपलब्धियाँ एवं सीमाएँ:-</u> विषय के समापन के पूर्व चिंतामणि के उपलब्धियों का सिंहावलोकन एवं उनकी सीमाओं का आकलन आवश्यक प्रतीत है। हमने अध्ययन की सुविधा के लिए उनके कवि कर्म और आचार्यत्व दोनों को पृथक् पृथक् विवेचित करने का प्रयास किया है।

रीति कालीन परिवेश एवं आचार्यत्व के प्रति गहरी आसक्ति के कारण चिंतामणि की अधिकांश रचनाएँ श्रृंगार रस की है जिनमें रूप वर्णन और पूर्व राग आदि से लेकर सुरत और सुरतान्त दशा का चित्रण किया गया है। वर्ण्य की दृष्टि से रीति काल के सभी कवियों ने प्रायः इन्हीं प्रसंगों को लिया है। अतः ये सन्दर्भ बारम्बार आवृत्ति के कारण अपनी मौलिकता खो बैठे हैं किन्तु इन्हीं विषयों को लेकर जब कोई आचार्य कवि किन्हीं मौलिक परिस्थितियों तथा दशाओं का उल्लेख करता है तो जाने पहचाने प्रसंगों में भी एक चमत्कार पूर्ण नवीनता पाठक को आकृष्ट करने लगती है। कहीं शब्दों के सन्निवेश की मनोहारिता, कहीं उक्ति की भंगिमा,

कहीं अर्थ का गाम्भीर्य, कहीं रस पेशलता सब मिलाकर कवि की महिमा को प्रतिष्ठित करने में सहायक होते है। इन विशेषताओं के उदाहरण हम चिन्तामणि की समीक्षा में दे आए है अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति न करते हुए केवल उतना ही कहना आवश्यक समझते है कि यद्यपि कवि कर्म की दृष्टि से चिन्तामणि की रचनाएँ सर्वत्र विलक्षणता और नूतनता के आकर्षण से परिपूर्ण नही है तथापि जहाँ उनकी मानसिक वृत्तियाँ रमी हैं, वहाँ उन्होंने निः सन्देह उत्तमोत्तम काव्य की सृष्टि की है किन्तु उनकी रचनाओं का बहुत बड़ा अंश प्रेरित कवि कर्म के रूप में है जहाँ पूर्व निर्धारित परिस्थितियों और भाव दशाओं को केवल छन्दोबद्ध किया गया है ऐसे स्थलों में उनकी मौलिकता का अन्वेषण करना संगत नही प्रतीत होता।

मै रीतिकाल के किसी कवि से किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा का भाव न रखते हुए भी यह कहने में संकोच न करूँगा कि चिंतामणि के अधिकांश रचनाएँ सहृदयों के हृदय आवर्जन करने में पूर्ण समर्थ है इनके विस्तार भी है और घनत्व भी इसलिए इन्हें एक सफल कवि कहना उचित होगा।

आचार्य चिन्तामणि ने शास्त्रीय चिंतन के क्षेत्र में पग पग पर कुछ न कुछ नवीनता अथवा मौलिकता लाने का प्रयास किया है। काव्य की परिभाषा में ही उन्होंने ने एक ओर काव्य के स्थान पर "कवित्त" का प्रयोग किया तो दूसरी

और अलंकृत रचना को काव्य का महत्व पूर्ण अंग मान लिया।

काव्य पुरुष की कल्पना यद्यपि प्रतापरुद्र यशोभूषण के प्रभाव से की है किन्तु जहाँ विद्यानाथ ने वंगय को काव्य की आत्मा माना है वहाँ चिंतामणि ने रस ध्वनि। रीति और वृत्ति का अन्तर कम महत्वपूर्ण नहीं है।

गुण प्रकरण में आवश्यक के संग्रह और अनावश्य के त्याग द्वारा चिंतामणि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। माधुर्य गुण की चर्चा में 'यहई उक्त कवित्त' का उदाहरण में उल्लेख इस बात का साक्षी है कि ये माधुर्य गुण को काव्य का सर्वस्वमानते हैं। उदारता में अर्थ चारुत्व और व्यक्ति में सालंकारता का निरूपण ओज के वैचित्र्य में अलंकारों का सम्मिवेश गुण के क्षेत्र में चिंतामणि की मौलिक देन है।

आचार्य चिंतामणि प्रायः सभी अलंकारों में कुछ न कुछ नया पन लाने का प्रयास किया है किन्तु उल्लेख अलंकारों की आलोचना चिंतामणि की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसी प्रकार अप्रस्तुत प्रशंसा में भी मम्मट का आश्रय लेते हुए उन्होंने सामान्य प्रस्ताव में सामान्य कथन न कह कर सदृश के प्रस्ताव में सदृश कथन की बात कही है जिससे विशेष के कथन में विशेष एवं सामान्य के कथन में सामान्य दोनों का समावेश हो सकता है। पर्यायोक्ति अलंकार के विवेचन में मम्मट अप्पय दीक्षित एवं विद्यानाथ सब का समाहार कर लिया है।

मरण संचारी के सम्बन्ध में चिंतामणि का विचार है कि वीर रस के अतिरिक्त शृंगारादि अन्य रसों में इसका वर्णन नहीं करना चाहिए इस विचार की स्थापना चिंतामणि की मौलिकता का पर्याप्त प्रमाण है। विप्रलम्भ शृंगार में विप्रलम्भ की प्रसिद्ध दश काम दशाओं के अतिरिक्त बारह काम दशाओं का उल्लेख करके उन्होंने विषय को यथा सम्भव व्यापकता प्रदान की है। इसी प्रकार नायिकाओं के यौवनालंकार की चर्चा में उन्होंने अनेक आचार्यों के मतों का अंकन किया और उनकी २८ संख्या स्वीकार कर ली है किन्तु जहाँ जब वे इन सारी चेष्टाओं को अनुभाव मानकर विश्वनाथ का खण्डन कर देते हैं तो उनकी मौलिकता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

चिंतामणि के काव्य का मूल स्वर शृंगार है तथा शृंगार के सम्यक् परिपाक में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। कलात्मकता की दृष्टि से इनका काव्य परवर्ती कवियों के समान नहीं है तथा इनकी अभिव्यक्ति की सादगी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। अतः डा० नगेन्द्र के मत से सहमत होते हुए हम यह कहना चाहेंगे कि "कविवर न तो इनमें देव का सा आवेग आ पाया है और न [illegible] चित्रमयता ही। कल्पना की ऊँची उड़ान भी ये नहीं भर पाए हैं। केवल मतिराम के समान सीधी सादी शब्दावली में अपनी सच्ची अनुभूति को व्यक्त किया है। यही कारण है कि इनके काव्य में बिहारी की सी अलंकारों के [illegible]

स्वाभाविकता देखने को मिलती है जिससे इनको रचनाओं को मतिराम से उत्कृष्ट कहने में कोई संकोच नहीं होता"।

भाषा शैली की दृष्टि से भी इनकी रचनाएँ अत्यन्त परिष्कृत कही जा सकती है। केशव के पश्चात सम्भवतः ये ही प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने भाषा को नियमानुसार व्यवहृत किया है। इतर भाषाओं की शब्दावली का सही प्रयोग इनके काव्य में मिलता है। भावात्मक शब्द ही नहीं ध्वन्यात्मक शब्दों का भी उत्कृष्ट रूप इनकी रचनाओं में सामान्य सुलभ है। कुल मिलाकर चिंतामणि का काव्य उपादेय है।

अन्त में इतना निवेदन अप्रासंगिक न होगा कि चिंतामणि उस प्रतिष्ठा को नहीं प्राप्त कर सके जो उनका उचित प्राप्य था इसे दुर्निवार कालगति मानें अथवा सहृदय जनों की उपेक्षा अथवा ग्रन्थों की अनुपलब्धि किन्तु यह सच तो नहीं भुलाया जा सकता कि चिंतामणि का कृतित्व एक धूल धूसरित माटी का मणि है जिसका अधिक अभी दबा पड़ा है।

प्रस्तुत शोधार्थी ने इस बात का प्रयास किया है कि कम से कम उस धूल को झाड़ पोंछ कर मणि को स्वच्छ कर दे जिससे सहृदयों की दृष्टि का कुछ और आकर्षण हो सके। उसे ऐसी आस्था है कि यदि विद्वानों की दृष्टि इनकी ओर उठ गयी तो निश्चय ही हिन्दी साहित्य अपने एक [illegible] [illegible] का सही महत्त्व आंक सकेगा।

चिंतामणि का साहित्य व्यापक, पूर्ण एवं परिनिष्ठित है अनुसंधान कर्ता का विश्वास है साहित्य शास्त्र के पठन पाठन में इसका समुचित उपयोग होना चाहिए। क्योंकि अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा इसमें व्यापकता है और अनेक आकर ग्रन्थों के सारसंकलन का प्रयास है।

हम तथ्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे कि चिंतामणि का काव्य विशेषतः कृष्ण चरित्र जब विद्वजनों के अध्ययन का विषय बनेगा तो उनका कवित्व भी आदर और सम्मान का भाजन बनेगा। कुल मिलाकर चिंतामणि वास्तव में चिंतामणि है आवश्यकता है उनकी रचनाओं के उपयोग की यदि इस दिशा में प्रस्तुत प्रयास कुछ भी सार्थक हो सका तो मैं अपने को धन्य समझूंगा।

चिन्तामणि : कवि और आचार्य

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

की

डी० फिल्० (हिन्दी) के लिए प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

⊙

प्रस्तुतकर्ता

विद्याधर मिश्र

एम० ए० (हिन्दी)

⊙

निर्देशक

डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह

प्राध्यापक : हिन्दी विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

⊙

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

महाशिवरात्रि, सम्वत् २०३३ बुधवार, १६ फरवरी, १९७७

विषय - सूची

××××××××××××

खण्ड 1

चिन्तामणि का जीवन वृत्त तथा व्यक्तित्व :-

खण्ड 2

चिन्तामणि का कृतित्व :-

चिन्तामणि की जीवन दृष्टि एवं विचार धारा :-

अलंकार प्रकरण :–

दोष प्रकरण :–

ध्वनि प्रकरण :–

शब्द शक्ति प्रकरण :–

नायक नायिका भेद प्रकरण :–

नायक भेद – रस विलास, शृंगार मंजरी, तथा कवि कुल कल्प तरु के आधार पर नायक भेद, शृंगार रस के आलम्बन के रूप में नायिकाओं के गुण, नायिका भेद – (क) जाति के आधार पर (ख) संबन्ध के आधार पर, (ग) अवस्था के आधार पर (घ) गुण के आधार पर, नायक नायिका विषयक सामग्री का पर्यालोचन । पृष्ठ 318 – 350

रस प्रकरण :–

रस का स्वरूप एवं निष्पत्ति, रस के असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य का स्वरूप, रस का आनन्द पुण्यात्मा की विशिष्ट उपलब्धि, साधारणीकरण, भाव एवं स्थायी भाव, स्थायी भावों की संख्या, विभाव एवं उनके भेद, अनुभावों के प्रकार, संचारी भाव, संचारी भावों का परिगणन एवं समीक्षा, नायिकाओं के यौवना-अलंकार एवं शृंगार, चेष्टायें चिंतामणि की रस चेष्टायें, निरूपण – विप्रलम्भ शृंगार, काम की बारह दशायें । हास्य रस – स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, वर्ण और देवता, हास्य रस के भेद, करुण-रस – स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, वर्ण और देवता, रौद्र रस – स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, वर्ण और देवता, वीर रस – स्थायी भाव, आलम्बन, आश्रय, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, वर्ण और देवता, वीर रस के भेद, भयानक रस – स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, आश्रय, अनुभाव, संचारी भाव, वर्ण और देवता, वीभत्स रस – स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, व्यभिचारी भाव, वर्ण और देवता, अद्भुत रस – स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, आश्रय, अनुभाव, संचारी भाव, वर्ण और देवता, शान्त रस – स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी भाव, वर्ण और देवता, भाव, रसाभास तथा भावाभास, उपसंहार । पृष्ठ 343 – 428

पिंगल प्रकरण :–

छन्द की परिभाषा, मात्रिक छन्दों का लक्षण एवं विवेचन, गाथा, उग्गाहा, विग्गाहा, मोहिनी, सिंघनी, खंधा, रसिक, दोहा, रोला, गंधान,

उपसंहार

चिन्तामणि की उपलब्धियाँ :-

परिशिष्ट (क)

परिशिष्ट (ख)

× मन की बात ×

मानव के अन्तर्मन में आंदोलित होने वाले भावों का रूपायन हिन्दी साहित्य के रीति काल में कला के रूप में प्रतिष्ठित हुआ । भावों की सरसता, कल्पना की ऊँचाई, वास्तविक सौन्दर्य की अनुभूति एवं काव्य शास्त्र का विविधांग विवेचन इस काल के आचार्य कवियों में भरा पड़ा है ।

आचार्य चिन्तामणि हिन्दी रीति साहित्य के प्रथम आचार्य एवं संस्कृत साहित्य के प्रकांड पंडित थे इसमें कोई सन्देह नहीं । इसे हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि इतने प्रमुख आचार्य कवि की उपेक्षा हुई है । उनकी रचनाएँ पुस्तकालयों में पुरानी पोथी के रूप में बंधी पड़ी हैं ।

विषय की प्रेरणा का भी अपना इतिहास है । जब मैं स्नातकोत्तर विद्यालय ज्ञानपुर (वाराणसी) से एम0 ए0 कर रहा था उन्हीं दिनों हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पूज्य पाद डा0 शिवावस्त त्रिवेदी जी के निकट सम्पर्क का सुअवसर मिला । एक दिन कक्षा में रीति काल की अप्रकाशित कृतियों और कृतिकारों के पन्नों से बोलते हुए उन्होंने कहा कि "रीति काव्य क्या है, मिट्टी के नीचे, अतीत की अतल गहराई में दबे पड़े प्राचीन संगमरमर के नगर हैं जिनके ऊपर आज मिट्टी की मोटी परतें, डीह और भीटे हैं जिनके जीवन्त विचार, ज्ञान कला और साहित्य अपनी अभिव्यक्ति पाने के लिए छट पटा रहे हैं । उनके उत्खनन से, पुरातत्व संबन्धी अनेक मणियों का उद्घाटन होगा और इतिहास के पुराने पन्ने पर नया प्रकाश पड़ेगा ।

अनुसंधित्सु के रूप में जब मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय पहुँचा तो 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं सूर के कृष्ण का तुलनात्मक विवेचन' पर शोध कार्य करने का आश्वासन मिला परन्तु किन्हीं कारणों से विषय हाथ न लग सका । पुनः मुझे 'यशवन्त सिंह कवि और आचार्य' विषय पर शोध कार्य करने के लिये दिया गया यह भी विषय हाथ से जाता रहा । निराश मन निजत्व में सिमट कर बराबर यही सोचता रहा कि शायद मैं छोटी संस्था से आया हूँ और विश्व विद्यालय की ऊँची चहारदिवारी के चौराहे पर दिग्भ्रमित राही की तरह भटक रहा हूँ । इस प्रकार विषय की स्वीकृति के लिए 18 महीने विषय के इर्दगिर्द

घूमता रहा। इन्हीं दिनों सौभाग्य से श्रध्देय डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह जी से सम्पर्क का अवसर मिला। शोध के विषय की अभिरुचि पूछने पर मेरे अन्तर्मन में रह-रह कर पूज्य पाद डा० शिवादत्त द्विवेदी का क्वार्टर व्याख्यान कुरेदता रहा '... ..... उनके उत्खनन से पुरातत्व संबन्धी अनेक मणियों का उद्घाटन होगा'। मैंने श्रध्देय डा० सिंह से रीतिकाल के पहले मणि (चिंतामणि) पर शोध कार्य के लिए निवेदन किया। उन्होंने विषय की गरिमा को समझ और अपने निर्देशन में शोध छात्र के रूप में स्वीकार किया जिसके परिणाम स्वरूप शोध को विषय का रूप दे सका।

यहाँ शोध की उपलब्धियों का विनम्र निवेदन से परिचय देना भी असंगत न होगा। आशा है कि विद्वज्जन इसे प्रस्तुत लेखक की आत्मश्लाघा अथवा आत्म प्रशस्ति के रूप में नहीं वरन् आत्म निवेदन के रूप में ही स्वीकारेंगे।

प्रत्येक प्रकरण में किसी न किसी मौलिक स्थापना का प्रयास किया गया है। अनपेक्षित विस्तार से बचने के लिए लम्बी भूमिका देने का प्रयत्न नहीं किया गया है। साथ ही साथ इस बात की भी चेष्टा की गई है कि शास्त्रीय चिंतन का ही स्वर अधिक मुखरित हो।

प्रथम प्रकरण में आचार्य चिंतामणि के जीवन वृत्त के सन्दर्भ में अब तक प्रकाशित, अप्रकाशित तथा कतिपय नवीन सामग्री का संचयन कर उनके जीवन वृत्त को क्रम बध्द रूप में विवेचित किया गया है। जन्म भूमि, निवास स्थान, वंश परम्परादि के साथ ही चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ के सहोदर भ्रातृत्व को सिध्द करने के लिए कुछ मौलिक स्थापनायें भी की गयी हैं।

दूसरे प्रकरण में कवि के कृतित्व के कई ऐसे आधारों को भी अध्ययन का विषय बनाया गया है जो तत्कालीन काव्य रचना प्रक्रिया के मूल भूत उत्प्रेरक तत्व थे। चिंतामणि के ग्रन्थों की प्रामाणिकता का भी प्रश्न उठाया गया है तथा कुछ के आगे प्रश्न वाचक चिह्न(?) रस विलास की प्रामाणिकता को सिध्द करने के लिए फारसी के ग्रन्थ तारीखे मुहम्मदी की सामग्री का उपयोग सम्भवतः सर्व प्रथम प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है। इसके साथ-साथ कवि के मनोवैज्ञानिक विकास के आधार पर उनकी कृतियों का काल निर्धारण भी हुआ है।

तीसरे प्रकरण में चिंतामणि की जीवन दृष्टि, विचार धारा एवं दर्शन के विवेचन को ही आधार मान कर विवेचना की गई है।

चौथे प्रकरण में चिंतामणि का एक मात्र प्राप्त काव्य ग्रन्थ कृष्ण चरित्र का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ से अब तक हिन्दी साहित्य संसार अपरिचित रहा है। कथ्य का विस्तार जान बूझ कर विस्तृत किया गया है। साथ ही साथ कवि की अन्तः प्रेरणा के मूल बिन्दुओं का रेखांकन भी हुआ है। प्रकरण के अन्त में चरित्र काव्य के निकष तत्वों पर आधृत विवेचन के द्वारा कृष्ण चरित्र को एक चरित काव्य घोषित किया गया है। यह प्रयास इस कार्य में अपनी अभिनवता भाषित करेगा ऐसा विश्वास है।

आचार्यत्व :—

प्रस्तुत प्रबंध में आचार्य चिंतामणि की आचार्य प्रतिभा का समीक्षात्मक मूल्यांकन संस्कृत काव्य शास्त्र के निकष तत्वों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। काव्य शास्त्र के विविधांगों जैसे — काव्य चिन्तन, गुण, अलंकार, दोष, ध्वनि, शब्द शक्ति, नायक - नायिका भेद, रस तथा पिंगल आदि के विषय में आचार्य चिंतामणि के क्या विचार थे उनमें उनकी मौलिकता, नवीनता, विशेषता, लोक-सम्पादन दृष्टि तथा उनके विचार संस्कृत और हिन्दी के काव्य शास्त्रियों से कहाँ तक मेल खाते हैं इन सब तथ्यों की समीक्षात्मक समीक्षा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

काव्य चिन्तन :—

प्रस्तुत प्रकरण में काव्य प्रयोजन, काव्य पुरुष, रीति वृत्ति धारणा, शब्द एवं काव्य लक्षण का विवेचन किया गया है। विश्वनाथ ने "रीतयोऽवयव संस्थान विशेषवत्" कह कर जिस 'पद-संघटना रीतिः' का उल्लेख किया है वह काव्य पुरुष के रूपक में अधिक संगत है लेकिन चिंतामणि ने अपनी सधी समीक्षा के द्वारा रीति और वृत्ति में भेदक रेखा खींचने में सफलता पाई है। चिंतामणि क काव्य सामग्री संचयन निश्चय ही महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय है। रूपक के निर्वाह में चिन्तामणि को कठिनाई विश्व विश्वनाथ के अनुकरण के कारण हुई है।

गुण प्रकरण :—

इस प्रकरण में गुण के स्वरूप एवं उनके वर्गीकरण की चर्चा की गई है प्रस्तुत लेखक ने संस्कृत में वर्णित गुणों एवं उनके अन्तर्भाव तथा प्रभाव की समीक्षा

के साथ-साथ निजी स्थापनाओं से विषय विवेचन को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । उदारता में अर्थ चारुत्व और अभिव्यक्ति में सालंकारता का निरूपण किया गया है । ओज के वैचित्र्य में अलंकार का सन्निवेश करके कवि ने उल्लेखनीय प्रयास किया है ।

अलंकार :-

प्रस्तुत प्रकरण में आचार्य चिंतामणि के अलंकारों का वर्गीकरण प्रस्तुत है । आचार्य चिन्तामणि द्वारा प्रयुक्त छन्दों के स्रोतों का संधान विवेच्य है । उल्लेख्य है कि इस प्रकरण में आचार्य चिंतामणि ने कहाँ तक संस्कृत-लक्षणों का शुध्द एवं सफल अनुवाद किया है, अथवा अनुवाद या छायानुवाद किया है। उसमें कहाँ तक मौलिकता या विशेषता प्रगट हुई है । क्या संक्षिप्तता अथवा लाघव की प्रवृत्ति के कारण लक्षण अस्पष्ट, दोष पूर्ण अथवा अधूरे तो नहीं हो गये हैं इत्यादि सन्दर्भों में चिंतामणि के अलंकारों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

दोष प्रकरण :-

इस प्रकरण में दोष के स्वरूप एवं उनके वर्गीकरण तथा दोष परिहार की चर्चा प्रस्तुत की गई है चिंतामणि ने अपने लक्षणों के प्रस्तुतीकरण में किन-किन संस्कृत कवियों का प्रभाव ग्रहण किया है इसे भी दर्शाया है ।

ध्वनि एवं शब्द शक्ति प्रकरण :-

इस प्रकरण में ध्वनि के स्वरूप, ध्वनि के भेद का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है । ध्वनि के भेद को स्पष्ट करने के लिए चार्ट भी दिया गया है। जहाँ तक चिंतामणिकी मौलिकता का प्रश्न है मम्मट के 51 भेदों के स्थान पर केवल 44 भेदों की चर्चा की गई है किन्तु अन्तर केवल भेदों के विस्तार का है । स्वनिर्मित उदाहरण तथा साथ में जो गद्यात्मक वृत्तियाँ दी गई हैं उनसे उनका आचार्य कर्म और भी उपादेय बन गया है ।

नायक-नायिका भेद :-

इस प्रकरण में रस विलास, शृंगार मंजरी एवं कवि कुल कल्प तरु ग्रन्थों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है सुविधा के लिए परिशिष्ट में तीनों ग्रन्थों का अलग-अलग वर्गीकरण भी दिया गया है । लक्षणों के प्रभाव की प्रामाणिकता

के लिए संस्कृत के मूल ग्रन्थों का उल्लेख विवेच्य है । ध्यातव्य है कि पूरे प्रकरण को कवि कुल कल्प तरु को ही आधार मानकर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

रस प्रकरण :-

इस प्रकरण में रस संबन्धी सामान्य कृतियों के संक्षिप्त परिचय के बाद, रस निष्पत्ति, साधारणीकरण, भाव विभाव अनुभाव, नायिकाओं के सन्दर्भ अलंकार एवं रसों के परिपाक का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । उल्लेख्य है कि संस्कृत काव्य की शास्त्रीय ग्रन्थों से तुलनात्मक समीक्षा भी प्रस्तुत की गई गई है । साथ ही साथ आचार्य चिन्तामणि ने किन-किन स्थानों पर काव्य शास्त्रीय परम्परा से हट कर भी स्थापना की है और किन-किन स्थानों से सार संकलन कर कुशल शोधार्थी की भूमिका निभाई है तथा मौलिकता उजागर की है तथा किन-किन स्थानों पर अपनी स्वतंत्र प्रतिभा का परिचय दिया है इसका सर्तकता से उल्लेख किया गया है ।

पिंगल प्रकरण :-

प्रस्तुत प्रकरण में छन्द स्वरूप निर्धारण के पश्चात् वर्णिक और मात्रिक छन्दों के भेदोपभेद की परिचर्चा प्रस्तुत की गई है । उल्लेख्य है कि लक्षणोदाहरण के क्रम में आचार्य चिन्तामणि के प्रभाव बिन्दुओं का भी रेखांकन किया गया है । अध्ययन को प्रभावी बनाने के लिए कवि की प्रेरणा एवं आधारभूत ग्रन्थों का भी उल्लेख है । साथ ही छन्द प्रस्तार के कतिपय छन्द चित्र भी दिये गये हैं ।

पाठ निरीक्षण (निर्धारण) :-

कतिपय पाण्डुलिपियों के जर्जर हो जाने के कारण एवं स्थान-स्थान पर कीटदष्ट हो जाने से अपेक्षित पाठ ही प्रस्तावित किये गये हैं । यह कार्य प्रस्तुत शोध की महती उपलब्धि है जिससे पाठ निर्णय की अभिनव एवं उपयोगी पद्धति का समारम्भ सम्भव है ।

चिंतामणि की मौलिक उपलब्धियाँ एवं सीमायें :-

प्रस्तुत प्रकरण में आचार्य चिंतामणि की मौलिक उद्भावनाओं का रेखांकन किया गया है कवित्व एवं आचार्यत्व की संगम भूमि पर अधिष्ठित कवि की प्रतिभा

उपादेय होगी ऐसा विश्वास है ।

परिशिष्ट (क) में अध्ययन की सुविधा के लिए कतिपय वंश वृक्ष, छन्द चित्र एवं शाहजहाँ कालीन भारत का मानचित्र भी दिया गया है । शोध प्रबन्ध को इस प्रत्याशा के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है कि इसके द्वारा शास्त्रीय चिंतन के क्षेत्र में तथा सामान्यतः काव्यानन्द के मूल्यांकन में एक अभिनव प्रयास सफल होगा । शोध कार्य सामग्री के संकलन में जो खट्टी मीठी अनुभूतियाँ हुई वे आज भी कसक रही हैं भले ही आज कार्य सम्पन्न हो गया है । परन्तु अपने भोगे हुए अतीत को जब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो आत्मा विगलित हो जाती है ।

सामग्री संकलन के लिए मुझे काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, सम्पूर्णानन्द विश्व विद्यालय, लखनऊ विश्व विद्यालय, एशियाटिक पुस्तकालय कलकत्ता, जमनियाँ, उत्तर प्रदेशीय प्राच्य इतिहास परिषद, लखनऊ, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दिल्ली, दिल्ली विश्व विद्यालय दिल्ली, राजकीय पुस्तकालय दतिया, अनूप संस्कृत पुस्तकालय संस्कृत पुस्तकालय जयपुर एवं रज़ा पुस्तकाल रामपुर की सारस्वती यात्रा बिना आर्थिक सहायता के कैसे सम्भव हुई कह नहीं सकता ।

हस्तलिखित ग्रन्थों के अध्ययन एवं प्रतिलिपि प्राप्ति के क्रम में श्री अगर चन्द नाहटा, कैप्टन शूर वीर सिंह, डा0 महेन्द्र कुमार, डा0 किशोरी लाल गुप्त, पं0 विश्व नाथ प्रसाद मिश्र, डा0 भगीरथ मिश्र, साहित्यान्वेषक श्री उदय शंकर दुबे 'शील' का हृदय से ऋण स्वीकार करता हूँ जिनकी सहज अनुकम्पा से हस्तलिखि ग्रन्थ प्राप्त हुए । राजकीय रज़ा पुस्तकालय, रामपुर के निर्देशक श्री इम्तियाज अली अर्शी से जो सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए मैं उनका अहसानमंद हूँ । इसी क्रम में श्री इन्दुधर द्विवेदी (भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण दिल्ली) ने कृष्ण चरित्र की प्रतिलिपि कराने में जिस लगन एवं रुचि से डा0 महेन्द्र कुमार से परिचय करा कर टंकित प्रति भेजी उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ ।

मैं उन सभी विद्वानों का ऋण स्वीकार करता हूँ जिनसे अथवा जिनके ग्रन्थों से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में दिशा निर्देश मिला है और मैंने लाभ उठाया है विशेषतः मैं डा0 सत्य कुमार चन्देल का ऋणी हूँ क्यों कि उनका चिंतामणि विषयक शोध मेरे पथ निर्देशन में सहायक रहा है । यद्यपि मेरे शोध की दिशा और शैली उनसे सर्वथा भिन्न है तथापि उनको अग्रज होने का गौरव प्राप्त है इसे हृदय से

स्वीकार करता हूँ ।

इसी क्रम में नायक नायिका भेद के विद्वान लेखक डा० छैल विहारी गुप्त राकेश मुख्त का स्टडीज इन नायक नायिका भेद उक्त प्रसंग लिखने में प्रकाश - स्तम्भ रहा है । इसी प्रकार आचार्यत्व की अवधारणा में डा० विजय पाल सिंह का ग्रन्थ केशव का आचार्यत्व उपयोगी और मार्ग दर्शक रहा है । डा० सत्यदेव चौधरी का हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य ग्रन्थ पग-पग पर यात्रा का सहयोगी रहा मैं इन सब का कृतज्ञ हूँ ।

शोध प्रबन्ध के सूत्रधार एवं कुशल निर्देशक गुरुवर डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह का मैं चिर ऋणी हूँ क्योंकि मुझे न केवल उनकी प्रेरणा और प्रतिभा से पथ प्रदर्शन मिला है अपितु उनके वात्सल्य का अधिकारी बन गया हूँ । साहित्य के क्षेत्र में, विकास की दिशा में उनका स्नेह सम्बल बना रहेगा ऐसा विश्वास है।

अपने विश्व विद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० रघुवंश के प्रति श्रध्दानत हूँ, हिन्दी विभाग के ही डा० मोहन अवस्थी एवं डा० राजेन्द्र वर्मा के स्नेहिल प्रोत्साहन एवं पथ प्रदर्शन को मैं साभार स्वीकार करता हूँ । विश्व विद्यालय के हिन्दी परिवार का मैं अंग बन सका इसका श्रेय उन प्राध्यापकों को है जिनका द्वार मेरे लिए सदा उन्मुक्त रहा है मैं उन सब का "रिनियाँ" रहूँ इसी में सुख है ।

अपने परम्परागत गुरु डा० कन्हैया शंकर उपाध्याय (प्राध्यापक, इलाहाबाद वि० वि०) का ऋणी हूँ जिनकी प्रेरणा सम्बल के रूप में कार्य करती रही।

शोध प्रबन्ध की कर्म भूमि रामपुर ही रही, इस दिशा में मैं अपने गुरुवर डा० शिवादत्त द्विवेदी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर विद्यालय, रामपुर का आजीवन ऋणी हूँ जिन्होंने ज्ञान के क्षेत्र में बढ़ते रहने की प्रेरणा एवं संघर्ष से जूझकर कुछ अर्जित करने की दिशा दी । ग्रन्थ स्वामियों के निराशाजनक पत्र से ऊबकर जब मैं शोध कार्य के प्रथम चरण में ही विराम लेने का संकल्प लिया था तो उनका पुनः पुनः प्रेरणा पत्र "प्रारभ्यचोत्तमजना न परित्यजन्ति" मिला जिससे प्रोत्साहित होकर मैंने उनके ही सानिध्य में शोध कार्य पूर्ण करने की इच्छा से रामपुर आ पहुँचा लगभग एक सत्र रामपुर में व्यतीत हुआ । इस प्रवास में श्रध्देय डा० शिवादत्त द्विवेदी जी ने हर विन्दुओं पर

सदस्य बन कर मैंने जो लाभ उठाया वह मेरी एक अमूल्य धरोहर है मुझे यह स्वीकार करने में प्रसन्नता हो रही है कि यदि पग-पग पर मुझे उनका प्रोत्साहन न मिलता तो सम्भवतः आज भी विषय का यह रूप न बन पाता । ममतामयी माता श्रीमती चन्द्रमुखी द्विवेदी की वात्सल्य पूरित प्रेरणा जीवन भर सजो रखने की वस्तु है परिस्थितियों से आहत गतिरोध के क्षणों में इन दम्पति का जो स्नेह रहा है उन्हें व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं और व्यक्त करके उन्हें हल्का भी नहीं करना चाहता । प्रियवर चन्द्रधर द्विवेदी एवं गंगाधर द्विवेदी का भाउक हृदय मेरे प्रति असीम स्नेह से भरा रहा मैं अग्रज के अधिकार से इन दोनों भाइयों के मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ ।

चिंतामणि की पिंगल विषयक अंग को समझ सुलझाने में डा० चन्द्र प्रकाश सक्सेना कुमुद से पर्याप्त सहायता मिली एतदर्थ उनका चिर आभारी हूँ । डा० छोटे लाल शर्मा 'नागेन्द्र' संवेदनशील हृदय एवं प्रेरणा प्रद उत्साह अविस्मरणीय है ।

अपने मित्रों का आभार स्वीकार करू अथवा धन्यवाद दूँ यह निश्चय करना कठिन हो रहा है किन्तु इस अवसर पर उनका निश्छल हृदय से स्मरण अपना कर्त्तव्य मानता हूँ । सर्वश्री मन मोहन शुक्ल, बाबुल नाथ, सूर्य प्रकाश अग्निहोत्री एवं कृष्णानन्द पाण्डे की प्रेरणायें अविस्मरणीय हैं । पाण्डुलिपि को टंकित करने में कहानीकार महेश राही की अंगुलियों ने बहुत श्रम उठाया इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं । टंकित प्रति को शुद्ध करने में परिवेश के सम्पादक कुमार सम्भव तथा मेरी मित्र मंडली ने पर्याप्त श्रम किया है यदि वे औपचारिकता को बुरा न माने तो उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद ।

अन्त में भगवान आशुतोष सदाशिव के चरणों में प्रस्तुत कृति प्रस्तुत करते हुए प्रणाम निवेदन करता हूँ ।

महाशिव रात्रि
संवत् 2033

विद्याधर मिश्र

संकेत सूची

का० प्र० — काव्य प्रकाश : मम्मट

प्र० रु० भू० — प्रताप रुद्र यशोभूषण : विद्यानाथ

सा० द० — साहित्य दर्पण : विश्वनाथ

द० रु० — दश रूपक : धनंजय

र० मं० — रस मंजरी : भानुदत्त

क० क० त० — कवि कुल कल्प तरु : चिन्तामणि

चि० पि० — चिन्तामणि कृत पिंगल

शृं० मं० — शृंगार मंजरी

=000=

खण्ड 1

1: चिन्तामणि का व्यक्तित्व

जीवन वृत्त तथा व्यक्तित्व

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य काल के प्रकाश स्तम्भ के रूप में आचार्य चिंतामणि का एक महत्वपूर्ण स्थान है । आचार्य मम्मट के आदर्शों को लेकर चलने वाले प्रथम आचार्य होने के कारण चिन्तामणि एक शास्त्र कवि एवं प्रवर्तक आचार्य के रूप में स्वीकार किये जाते हैं । स्वच्छ चिंतन एवं निर्व्याज अभिव्यक्ति के मणि-कांचन संयोग के फलस्वरूप इनका आचार्यत्व परवर्ती आचार्यों के लिए पथ प्रदर्शक एवं प्रेरणा स्रोत रहा है ।

भारतीय जीवन दृष्टि मूलतः अन्तर्मुखी एवं अध्यात्मपरक है इसलिए कुछ अपवादों को छोड़कर कवियों एवं साहित्यकारों ने आत्मविज्ञापन से बचने का प्रयत्न किया है । यही कारण है कि प्रायः मनीषियों और महापुरुषों को अपने संबन्ध में कुछ भी लिखने में संकोच हुआ है ऐसी स्थिति में उनकी शालीनता और बहिरंग निरपेक्ष दृष्टि के कारण हम उनके जन्म आदि के प्रामाणिक इतिहास से अपरिचित रह गए हैं और इतिहास के बिखरे सूत्रों को संजोकर भी उनके जीवन पट को बुनने में असमर्थ ही रहे हैं ।

आचार्य चिन्तामणि ने भी अपने जन्म कुल गोत्र कुटुम्ब आदि के विषय में कुछ भी न लिख कर हमें अतीत की अतल गहराइयों में गोता लगाने के लिए छोड़ दिया है । कवि की रचनाओं में कुछ आश्रयदाताओं के उल्लेख के अतिरिक्त अन्तःसाक्ष्य के रूप में प्रायः कुछ भी उपलब्ध नहीं है अतः बहिः साक्ष्य एवं जनश्रुतियों का आश्रय लेकर इसके जीवन-वृत्त की एक सम्भावना मूलक पुनर्रचना प्रस्तुत करने की चेष्टा की जा रही है ।

<u>जन्मः—</u>

सुनिश्चित एवं प्रामाणिक सामग्री के अभाव में चिंतामणि के जन्म के संबन्ध में विद्वानों ने अनेक प्रकार की मान्यताएँ स्थापित की हैं —

क - ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने इनका समय सं० 1729 वि० स्वीकार किया है जिसे भ्रमवश जन्म काल मान लिया गया है ।

ख - मिश्र बन्धुओं ने इनका जन्म सं० 1666 स्वीकार कर लिया है ~~और यही प्रायः~~

ग - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मिश्र बन्धुओं के आधार पर बिना किसी विवेचन के सं0 1666 स्वीकार कर लिया है और यही प्रायः सर्व मान्य हो गया है ।

घ - डा0 सत्यदेव चौधरी ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य' में परम्परा प्राप्त सं0 1666 का ही उल्लेख किया है किन्तु 'हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास' षष्ठ भाग में सं0 1690 - 95 मानने का आग्रह किया है ।

ङ - डा0 सत्यकुमार बन्देल ने अपने अप्रकाशित शोध प्रबन्ध में सं0 1660 सिद्ध किया है ।[1]

इस प्रकार चिंतामणि के जन्म काल के संबन्ध में मुख्यतः सं0 1666, सं0 1690 95 तथा सं0 1729 ये तीन विचारणीय हैं ।

सं0 1666 के संबन्ध में मिश्र बन्धुओं का कहना है कि 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा होने वाली हस्तलिखित पुस्तकों की खोज में सं0 1698 का रचा हुआ जटाशंकरकृत 'अमरेश विलास' नाम का ग्रन्थ प्राप्त हुआ । किंवदन्ति यह कहती थी कि जटाशंकर भूषण के सब से छोटे भाई थे अतएव पहले के विचार को छोड़कर हमने भूषण का जन्म सं0 लगभग सं0 1692 के स्थान पर लगभग 1670 मान लिया और चार-चार वर्षों का अन्तर मानकर चिन्तामणि, मतिराम तथा जटाशंकर के क्रमशः सं0 1666, सं0 1674 और 1678 अनुमान किए । अन्य विचारों से भूषण का जन्म सं0 1692 के लगभग बैठता था सो इसे पीछे हटाने में हमने जहाँ तक कम हो सका उतना ही हटाया । इसीलिये जटाशंकर का रचना काल 20 ही वर्ष की अवस्था में मानकर उनका जन्म सं0 1678 कहा और उनके तीनों बड़े भाइयों का एक दूसरे चार-चार वर्ष और पीछे हटा दिया[2]

स्पष्ट है कि सं0 1666 का निर्धारण आनुमानिक है जिसे 'अमरेश विलास' के आधार पर जोड़ घटा लिया है चूंकि चिंतामणि के एवं उनके अन्य भाइयों के

1: चिंतामणि और उनका काव्य - डा0 सत्य कुमार बन्देल

2: महाकवि भूषण और मतिराम समय और संबन्ध - लेखक मिश्रबन्धु - माधुरी पत्रिका जनवरी-जुलाई 1924 पृष्ठ 437

आश्रय दाताओं और ग्रंथों के काल से इस काल का तालमेल बैठ जाता है अतः इस अनुमान के सत्य के निकटतम होने की सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अतएव आचार्य राम चन्द्र शुक्ल[1] डा० भगीरथ मिश्र[2] प्रभृति विद्वानों ने बिना किसी विवाद के सं० 1666 को ही प्रामाणिक मान लिया है ।

2. सं०1690 - 95 को स्वीकार करने वाले विद्वान हैं —

डा० सत्य देव चौधरी:—

डा० चौधरी ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य' में तो परम्परा से प्राप्त सं०1666 वि० को ही स्वीकार किया है[3] किन्तु कालान्तर में हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास के अन्तर्गत इनका जन्म सं० 1690 और सं० 1695 के बीच स्वीकार किया है । इनका तर्क है कि 'कवि कुल कल्प तरु' का रचना काल सं० 1725 के आस पास होगा । 'शाहजहाँ का शासन काल सं०1684 से 1715 है अतः उनसे पुरस्कार प्राप्ति के समय तक चिंतामणि का इस ग्रन्थ का निर्माण नहीं हुआ होगा यदि शुक्ल जी के अनुसार इनका जन्म सं०1666 के लगभग माना जाय तो इस ग्रन्थ के निर्माण के समय इनकी आयु लगभग 60 वर्ष रही होगी पर हमारे विचार में कवि कुल कल्प तरु जैसे शास्त्रीय तथा शृंगार रस पूर्ण उदाहरण से युक्त ग्रन्थ के निर्माण के समय ग्रन्थकार की आयु 30-35 वर्ष होनी चाहिए । इस दृष्टि से इनका जन्म सं० 1690-95 मानना चाहिए'[4]

जहाँ तक कवि कुल कल्प तरु के निर्माण काल का प्रश्न है उसके संदर्भ में डा० चौधरी से सहमत होना सम्भव है और उचित भी किन्तु जहाँ तक चिंतामणि के जन्म सम्वत् का प्रश्न है इस संदर्भ में उनका तर्क एकदम लचर है कवि कुल कल्प तरु के शृंगार रस पूर्ण उदाहरणों को देखकर डा० चौधरी ने चिंतामणि की उस तरुण अवस्था की रचना स्वीकार किया है किन्तु हमारे विचार में कवि कुल कल्प तरु जैसे प्रांजल शास्त्रीय ग्रन्थ का निर्माण कवि की परिपक्व अवस्था का ही संकेत देता है । अतः लगभग 60 वर्ष की उम्र में इस ग्रन्थ का लिखा जाना नितान्त उचित है । हमारी तो यह धारणा है कि उक्त ग्रन्थ कवि की जीवन साधना का अन्तिम फल है । जहाँ तक उदाहरणों का प्रश्न है उसमें उन्होंने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों से अधि-

---

संदर्भ अगले पृष्ठ पर देखें -

अनेक उदाहरण ग्रहण किए हैं। शृंगारमंजरी, कृष्ण चरित्र, रसविलास, भाषापिंगल आदि के शताधिक छन्द अन्य तक में देखे जा सकते हैं। कौन जानता है कि काव्य-प्रकाश, काव्यविवेक, रामायण, रसमंजरी, कवित्त विचार आदि के कितने छन्द कवि कुल कल्प तरु सम्मिलित हों। अतः शृंगार रस पूर्ण उदाहरणों की रचना युवावस्था में हुई हो और उनका उपयोग परिणत वय में किया गया हो यह असम्भव नहीं है एक बात और भी है कि हम किसी भी कवि को अनिवार्यतः वृद्धावस्था के निकट आने पर विरक्त ही क्यों मान लें ? कृष्णचरित्र इस बात का साक्षी है कि कवि वैष्णव भक्त है और माधुर्य भाव की भक्ति का अनुगामी है ऐसी दशा में वृद्धावस्था में भी राधा-कृष्ण विषयक शृंगारी रचनाओं के निर्माण में कोई अनौचित्य नहीं दिखाई देता अतः उन सं० 1690-95 के स्थान पर सं० 1666 वि० स्वीकार करना अधिक संगत जान पड़ता है।

डा० सत्य कुमार चन्देल ने 'रस विलास' को उनकी प्रथम कृति माना है और उसका रचना काल 1692-93 के बीच ठहराया है उन्होंने भी ऐसे प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना के लिए कम से कम 30-35 वर्ष की अवस्था की अनिवार्यता का उल्लेख किया है जिसके आधार पर चिन्तामणि का जन्म 1660 के आस पास माना है[5] यह आस पास सं० 1666 भी हो सकता है।

<u>3: सं० 1729:</u>—

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने सरोज ग्रन्थ में चिन्तामणि के नाम के आगे 1729 लिख दिया है[6]। उसके क्रमशः विद्वानों ने जन्म सम्वत् का उल्लेख मान लिया है।

1: हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं० 2014 - पृष्ठ 224

2: हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास - पृष्ठ 61

3: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - पृष्ठ 33 डा० सत्य देव चौधरी

4: हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - सं० डा० नगेन्द्र - द्वितीय संस्करण 2030 पृष्ठ 238

5: चिन्तामणि और उनका काव्य - डा० सत्य कुमार चन्देल द्वितीय अध्याय पृ० 28

6: शिव सिंह सरोज -सम्पादक डा० किशोरी लाल गुप्त प्रथम सं० 1790 पृ० 692

डा० सत्यदेव चौधरी का कथन है कि शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्म सं० 1729 माना है पर यह समय यथार्थ प्रतीत नहीं होता क्योंकि सं० 1723 में तो शाहजहाँ की मृत्यु हो चुकी थी[1]। हमारा विचार है कि 1729 जन्म सं० न होकर उनकी उपस्थिति का सूचक है क्योंकि यदि हम 1725 तक कवि कुल कल्प तरु का निर्माण-काल मानते हैं तो सं० 1729 तक कवि का वर्तमान होना सहज सम्भावित है किन्तु डा० चन्देल जी का यह कथन अपनी विसंगतियों के कारण एक प्रलाप बनकर रह गया है कि 'ठाकुर शिव सिंह सेंगर' ने चिन्तामणि रचित रुद्र शाह सोलंकी विषयक छन्द उद्धृत कर अप्रत्यक्ष रूप से इन्हें इनका आश्रित कवि मानते हुए यद्यपि इनका जन्म सं० 1729 वि० निश्चित कर दिया है फिर भी विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता[2]।'

अतः सं० 1729 को केवल भ्रमवश ही जन्म सं० मान लिया गया है और सेंगर जी के नाम से उसे जोड़ दिया गया है उक्त सं० को जन्म सं० मानना किसी दृष्टि से उचित नहीं है ।

ऐसी दशा में किसी अकाट्य प्रमाण के न होते हुए भी अनेक दृष्टि से विचार करने पर तथा चिन्तामणि के भाइयों के भी जीवन वृत्त को ध्यान में रखते हुए मिश्र बन्धुओं द्वारा स्वीकृत एवं परम्परा से अनुमोदित सं० 1666 के लगभग चिन्तामणि का जन्म स्वीकार किया जाना चाहिए ।

1: हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास - सम्पादक डा० नगेन्द्र - द्वितीय संस्करण 2030 पृष्ठ-238

2: चिन्तामणि कवि और उनका काव्य - डा० सत्य कुमार चन्देल पृष्ठ 26, 27

चिन्तामणि की जन्म भूमि तथा निवास स्थानः—

आरम्भ में शिव सिंह सेंगर[1] के मत पर चिंतामणि की जन्म-भूमि को सभी लोग एक मत होकर त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) मानते रहे । उन्हीं के आधार पर भूषण, मतिराम और नीलकंठ की चिन्तामणि से भ्रातृता भी स्वीकार कर ली गई थी अतः जब भूषण ने अपने संबंध में त्रिविक्रमपुर में निवास करने का उल्लेख किया तो चिन्तामणि का भी तिकवाँपुर का निवासी होना स्वतः समर्थित हो गया[2]।

संयोग से माधुरी पत्रिका में श्रीमिश्र बन्धुओं का 'महाकवि' भूषण और मतिराम भ्रम और संकेत'[3] शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें गार्सा द तासी[4] के आधार पर लिखा गया कि "चिन्तामणि कवित्त विचार का कर्ता कोड़ा जहानाबाद का रहने वाला था । इसके भाई भूषण और मतिराम थे जो अच्छे शायर थे ।"[5] तभी से विद्वानों ने चिंतामणि की जन्म भूमि कोड़ा जहानाबाद जिला फतेहपुर को स्वीकार करना आरम्भ किया ।

डा० सत्य कुमार चन्देल ने कोड़ा जहानाबाद जाकर छान बीन की उन्हें "कुछ वयोवृद्ध व्यक्तियों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि चिन्तामणि नाम के कवि यहाँ बहुत समय पूर्व हुए थे और उनका मकान कोड़ा में था किन्तु अब उस स्थान को

1: शिव सिंह सरोज - पृष्ठ 692 सम्पादक डा० किशोरी लाल गुप्त

2: द्विज कनौज कुल कश्यपी रतिनाथ को कुमार ।
   बसत त्रिविक्रमपुर सदा जमुना कंठ सुढार ॥ भूषण विश्व नाथ प्रसाद मिश्र

3: माधुरी पत्रिका - सन 1924 - फरवरी - जुलाई पृष्ठ 437

4: राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार मुंशी देवी प्रसाद के एक पत्र के आधार पर
   जिसमें सर्व आजाद [illegible] पंक्तियों का अनुवाद भेजा गया था ।

5: तजकिरए सर्व आजाद हिन्द — कुतुबखाना आसफिया, हैदराबाद

लोगों ने कृषि भूमि बना लिया है वस्तुतः इस स्थान (कोड़ा के प्राचीन मकान आदि) को देखने पर सहज ही विश्वास हो जाता है कि यहाँ पर भी राजसी ठाट - बाट के लोग रहा करते थे । उपर्युक्त ग्राम तथा लोगों को अपने पूर्वजों से परम्परागत रूप में प्राप्त हुए हैं'[1]।

डा0 चन्देल को एक अन्य तथ्य प्राप्त हुआ कि 'फतेहपुर जिले के वर्तमान बिन्दकी तहसील के मजिस्ट्रेट गंगा प्रसाद जी के पूर्वजों ने चिन्तामणि को कोई ग्राम पुरस्कार में दिया था'[2]।

अतः मूल निवास स्थान कोड़ा जहानाबाद होना चाहिए क्यों कि 'कानपुर फतेहपुर जिले तो अंग्रेजी हुकूमत की देन हैं मुगल सरकार में यह क्षेत्र कोड़ा जहानाबाद नाम से प्रसिद्ध था इसी क्षेत्र में तिकवाँपुर पड़ता था ।'[3] डा0 गुप्त के उपर्युक्त कथन के बाद जन्मभूमि की चर्चा फिर तिकवाँपुर से आकर जुड़ जाती है क्योंकि तिकवाँपुर कोड़ा जहानाबाद के क्षेत्र में पड़ता है ।

डा0 महेन्द्र कुमार ने मतिराम के जीवन वृत्त का संधान करते हुए उनका जन्म स्थान बनपुर निश्चित किया ।[4] मतिराम और चिन्तामणि की भ्रातृता के कारण चिन्तामणि का भी संबन्ध 'बनपुर' से भी जुड़ जाता है । उनका कथन है कि 'मुझे खोज में 'बनपुर' नाम का एक छोटा सा गाँव मिला है जो अब भी जिला फतेहपुर की सीमा में अवस्थित है । रीति काल के तीन प्रसिद्ध कवि भूषण, कालीदास त्रिवेदी और कवीन्द्र तो यहाँ के रहने वाले थे ही, मतिराम को भी यहाँ के लोग अपने यहाँ का कवि मानते हुए अत्यन्त गौरव के साथ कहा करते हैं—

1: चिन्तामणि और उनका काव्य - डा0 सत्य कुमार चन्देल - पृष्ठ 32

2: वही पृष्ठ 32

3: भूषण, मतिराम तथा उनके अन्य भाई - डा0 किशोरी लाल गुप्त - पृष्ठ 178

4: तिर पाठी बन पुर बसें - - - -।

मतिराम कवि और आचार्य - डा0 महेन्द्र कुमार - पृष्ठ 23

ऊँच गाँव अरवई बसै, और बसै तर गाँव ।

बीच नवमवाँ हम बसें जो कवि मुरो का गाँव ।।[1]

'वंश भास्कर' में सूर्य मल्ल ने बुन्देलों की भूमि में चिन्तामणि, भूषण और मतिराम के निवास की चर्चा की है यद्यपि काल के संबंध में सूर्य मल्ल निश्चित नहीं हैं।[2]

इस प्रकार चिन्तामणि की जन्म भूमि अथवा निवास स्थान विषयक चर्चा का समाधान तिकवाँपुर, कोड़ा जहानाबाद तथा बनपुर को केन्द्र बनाकर किया जाना चाहिए । वस्तुतः यह प्रश्न इतना जटिल नहीं है कि इसका समाधान सम्भव न हो । भौगोलिक दृष्टि से कोड़ा जहानाबाद यद्यपि फतेहपुर जिले में है और तिकवाँपुर तथा बनपुर कानपुर में, किन्तु इन स्थानों की परस्पर दूरी बहुत अधिक नहीं है । डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार तिकवाँपुर के 'दक्षिणी किनारे पर बहता हुआ एक यमुना में जाकर एक गिरने वाला नाला है । उसके दूसरी पार 'वन बन' देवी एक मन्दिर है[2]। 'वन बन' देवी का मन्दिर बनपुर में है कहते हैं कि बनपुर में 'जंगलों के बीच-बीच में कुछ अहीरों के घर थे । इसे हमीरपुर के राजा हमीरदेव ने उजाड़ दिया था । हमीरपुर जमुना के उस पार स्थित है । कहा जाता है कि हमीरदेव बनपुर के जंगल में शिकार खेलने आये थे तो देखा कि गाँव एक अहीर शराब के नशे में धुत पड़ा था राजा ने उससे जंगल से बाहर जाने का रास्ता पूछा तो उसने पैर से संकेत कर दिया जिससे क्रोधित होकर हमीर देव ने उस गाँव में आग लगवा दी" ।

उपर्युक्त जनश्रुति में इतना स्पष्ट तो है कि राजा हमीर ने 'बनपुर' गाँव उजड़वा दिया था ।

1: क - मतिराम कवि और आचार्य - डा० महेन्द्र कुमार पृष्ठ 23 २-८-३०

ख - डा० महेन्द्र को 'बनपुर निवासी' पं० विश्वनाथ दीक्षित से प्राप्त तथ्य

2: इनहीं दिनन कछु पहिले वा इतर

बुन्देलन भूमें व्रजभाषा कवि त्रिय तीन

बैठो भ्रात भूषण और मतिराम तीजो

चिंतामणि विदित एक कविता प्रवीन

माधुरी -(वर्ष 2 खण्ड 2 सं० 6) पृ० 736

3: शृंगार मंजरी - भूमिका पृ० 14 - डा० भगीरथ मिश्र

हम तो ऐसा मानते हैं कि चिन्तामणि का जन्म तिकवाँपुर में ही हुआ था । जहाँ तक 'वनपुर' का संबंध है उस विषय में इतना ही कहना है कि ब्राह्मणों में अब भी किसी ग्राम विशेष के आधार पर अपने कुल की चर्चा करने का क्रम है अतः चिन्तामणि के पूर्वज वनपुर के त्रिपाठी रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं । वन भुइयाँ का एक वन देवी की पूजा के लिए चिन्तामणि के पिता का नित्य वनपुर जाना भी सिद्ध करता है कि उक्त देवी उनकी कुल देवी थीं । जिनके आशीर्वाद से चिन्तामणि आदि चार पुत्रों की उत्पत्ति हुई । यह किंवदन्ती तिकवाँपुर में प्रसिद्ध है[1] और सेंगर जी ने भी अंकित किया है ।[2] मतिराम के वंशधर अब भी टिकमापुर में रहते हैं ।[3]

अब तिकवाँपुर से संबंध एक प्रश्न रह जाता है वह यह है कि मतिराम के पन्ती[4] । बिक्रम सतसई के टीकाकार बिहारी लाल के कथनानुसार राजा हमीर ने भूषण मतिराम और चिंतामणि को त्रिविक्रमपुर में सम्मानित किया और इन्होंने अपने अपने भवन बनाये अतः डा० कृष्ण दिवाकर का विचार है कि इनका निवास स्थान कहीं अन्यत्र था और यह लोग अपने-अपने घर बनाकर यहाँ बस गये[5]। इस संदर्भ में यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि जब हमीर देव ने त्रिविक्रमपुर को मध्य देश के मणि के रूप में विकसित किया तो इन कवियों के आवास की सुन्दर व्यवस्था करदी हो इसमें क्या आश्चर्य है इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह लोग कहीं बाहर से आकर बसे थे क्या यहाँ के निवासी राज्याश्रय पाकर अपने भवन का निर्माण नहीं कर सकते, वस्तुतः बिहारी लाल की दोहा पंक्तियों का ठीक अर्थ नहीं लिया गया है ।

1। शृंगार मंजरी - भूमिका - पृष्ठ 14,15 - संपादक - डा० भगीरथ मिश्र

2। शिव सिंह सरोज - पृष्ठ - डा० किशोरी लाल गुप्त

3। शृंगार मंजरी - संपादक डा० भगीरथ मिश्र - भूमिका पृष्ठ 15

4। पूर्वी जिलों में वाराणसी के पश्चिमी भाग इलाहाबाद तथा कानपुर क्षेत्र में पन्ती का प्रयोग प्रपौत्र अर्थ में होता है ।

5। बसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिन्दी के तीर ।
विरच्यौ भूप हमीर जहँ मध्य देश को हीर ।।
भूषन चिंतामनि तहाँ कवि भूषन मतिराम ।
नृप हमीर सनमान तें कीन्हें निज निज धाम ।।

रस चन्द्रिका - पृष्ठ 28 - बिहारी लाल ।

इन पंक्तियों का स्पष्ट अर्थ है कि यमुना के तट पर वीर हमीर का बसाया हुआ मध्य देश के मणि अथवा सार तत्व के रूप में त्रिविक्रमपुर नगर बसा हुआ है। यहाँ भूषण, चिन्तामणि एवं मतिराम ने नृप हमीर से सम्मानित होकर धन प्रतिष्ठा प्राप्त करके अपने-अपने निवास स्थान बना लिए। इन पंक्तियों में बिहारी लाल ने ऐसा कोई शब्द नहीं दिया जिससे इन कवियों का बाहर से आना सिद्ध हो।[1] जब नगर को नये ढंग से बसाया जा रहा हो और वहाँ का शासक सम्मान दे रहा हो तो क्या स्थानीय लोग अपने लिए नया आवास गृह नहीं बना सकते अथवा पुराने भवन का नव निर्माण नहीं कर सकते? यदि ये लोग कहीं से आकर बसे होते तो बिहारी लाल इसका भी उल्लेख उसी प्रकार कर सकते थे जिस प्रकार अपने विक्रम की सभा में आने का ह उल्लेख किया है कि अनेक प्रकार से सम्मान देकर राजा स्वयं जाकर ले आए और इसलिए बिहारी लाल विक्रम की सभा में आये।

अतः प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक उन विद्वानों के मत से मत मिलाने में अपने को असमर्थ पाता है जिन्होंने दूसरे स्थान से तिकवाँपुर में लाकर बसाये जाने की बात की है[2]।

अब एक महत्वपूर्ण प्रसंग है मीर गुलामअली बिलग्रामी के 'सर्वे आजाद' का तज़्किरा जिसमें कोड़ा जहानाबाद का रहने वाला बताया गया है इस विषय में डा0 किशोरी लाल गुप्त का संकेत यह है कि कोड़ाजहानाबाद की स्थिति जिले की स्थिति है अतः मीर गुलाम अली ने गाँव के नाम का उल्लेख न करके उस क्षेत्र के प्रधान स्थान का नाम दिया है।

1: विविध भाँति सनमान करि ल्याए चित महिपाल
आए विक्रम की सभा सुकवि बिहारी लाल
रस चन्द्रिका - 32 : बिहारी लाल

2क-मतिरामग्रन्थावलि - सं0 पं0 कृष्ण बिहारी मिश्र पृष्ठ 121
ख- महाकवि मतिराम - डा0 त्रिभुवन सिंह (सं0 2015) पृष्ठ 114
ग- मतिराम कवि और आचार्य - डा0 महेन्द्र पृष्ठ - 29
घ- चिन्तामणि और उनका काव्य - डा0 सत्य कुमार चन्देल पृष्ठ 32

चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और नील कंठ का सहोदर भ्रातृत्वः--

श्री शिव सिंह सेंगर द्वारा उल्लिखित जनश्रुति के अनुसार 'वन की भुइयाँ देवी' जी की कृपा से एक ही पिता के चार पुत्र हुए थे जिनके नाम क्रमशः चिंतामणि भूषण, मतिराम, जटाशंकर या नीलकंठ थे ।[1] प्रायः इसी तथ्य को बहुमत से विद्वानों ने स्वीकार किया है किन्तु कुछ विद्वानों ने इनके सहोदर भाई होने में सन्देह प्रगट किया है । संदेह प्रकट करने वालों में पं0 भगीरथ प्रसाद दीक्षित तथा डा0 महेन्द्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । दीक्षित ने भूषण और चिंतामणि को सहोदर भाई के रूप में अस्वीकार करते हुए सेंगर जी की धारणा को भ्रान्ति-युक्त माना है किन्तु सेंगर जी के ही आधार पर लिखा है कि भूषण का जन्म शिव सिंह सरोज के अनुसार सं0 1738 है और मिश्र बन्धुओं के अनुसार चिंतामणि का जन्म सं0 1666 हुआ था । इस प्रकार दोनों भाइयों के जन्म काल में 70 वर्षों का अन्तर होता है जो सहोदर भाइयों में सम्भव नहीं है । किन्तु पं0 माया शंकर याज्ञिक ने दो ऐसे आधार ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो क्रमशः शिव सिंह सरोज से 43 वर्ष तथा 132 वर्ष पूर्व बने थे । पहला आधार है बूंदी निवासी श्री सूर्य मल्ल की कृत 'वंश भास्कर' तथा दूसरा है मीर गुलाम अली बिलग्रामी का ग्रन्थ तज़किरए-सर्व आज़ाद ।

सूर्यमल्ल ने वंश भास्कर में लिखा है कि--

इनही दिनन कछु पहिले या इतर
बुंदेलन भू मैं ब्रजभाषा कवि विप्रतीन
जठो भ्रात भूषन रु मध्य मतिराम तीजो
चिन्तामणि विदित भए पै कविता प्रवीन[3]

इस अंश में न केवल भूषण, मतिराम, और चिंतामणि के सहोदर भाई होने की बात कही गई है अपितु भूषण को बड़ा भाई मतिराम को मझला और चिंतामणि

1: शिव सिंह सरोज सम्पादक डा0 किशोरी लाल गुप्त पृष्ठ 692

2: माधुरी पत्रिका 9 जुलाई सन् 1924 पृष्ठ 736

3: माधुरी पत्रिका - याज्ञिकजी का लेख (2:2:6)

को छोटा भाई स्वीकार किया गया है । यह कहना कठिन है कि वंश भास्कर का यह उल्लेख किसी ठोस प्रमाण पर आधारित है अथवा जनश्रुति पर किन्तु इसे किंवदंती कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता ।

तजकिरः के लेखक मीर गुलाम अली मीर जलील बिलग्रामी के भांजे थे । इन्हीं मीर जलील के एक दूसरे भांजे सय्यद गुलाम अली रसलीन थे । अतः मीर गुलाम अली और रसलीन दोनों परस्पर भाई थे । तजकिरा की रचना रसलीन की मृत्यु के तीन वर्ष बाद 1163 हिजरी अर्थात् सं0 1807 विक्रमी में हुई थी । मीर गुलाम अली के मामू जलील बिलग्रामी हिन्दी के सुकवि और रहम सुल्ला के मित्र थे जो उस समय मुगल सरकार की ओर से आजमऊ और बैसवाड़े में नियुक्त थे । "रहमतुल्ला स्वयं हिन्दी काव्य के मर्मज्ञ थे और उन्होंने किसी समय चिंतामणि को पुरस्कृत किया था ।"[1] इस सारी घटना का उल्लेख तजकिरे में हुआ है कि मतिराम और भूषण चिन्तामणि के भाई थे — "चिन्तामणि कवित्त विचार का कर्ता कोई जहानाबाद का रहने वाला था । इसके दो भाई भूषण और मतिराम थे जो अच्छे शायर थे ।" इस सामग्री का पहली बार उपयोग याज्ञिक बन्धुओं ने 'मतिराम और भूषण' लेख में किया।[2] उन्होंने यह अंश राजपूताना के प्रसिद्ध इतिहास मर्मज्ञ मुंशी देवी प्रसाद के एक पत्र से उद्धृत किया है[3] इसके अतिरिक्त मतिराम ग्रन्थावली की भूमिका में पं0 कृष्ण बिहारी मिश्र ने भ्रातृत्व संबन्धी एक और प्रमाण दिया है । मतिराम के पंती(प्रपौत्र) बिहारी लाल ने चरखारी नरेश विक्रम शाहि कृत विक्रम सतसई की टीका रस चन्द्रिका में जिसका रचना काल सं0 1872 है अपना वंश-परिचय इस प्रकार दिया है जिसमें कहा गया है कि —

बसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिंदी के तीर ।
बिरच्यौ भूप हमीर जनु मध्य देश को हीर ॥28
भूषन चिंतामनि तहाँ कवि भूषन मतिराम ।
नृप हमीर सनमानतें कीनो निजनिज धाम ॥29

1: तज़किरए-सर्व आज़ाद — मीर गुलाम अली प्रकाशन
2: माधुरी पत्रिका वर्ष 2 खण्ड 2 संख्या 6
3: देखिए - भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई - पृष्ठ 183-184-डा0 किशोरी लाल

हैं पंती मतिराम के सुकवि बिहारी लाल ।
जगन्नाथ नाती विदित, सीतल सुत सुभ चाल ॥30
कस्यप बंस कनौजिया विदित त्रिपाठी गोत्त ।
कविराजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत ॥31
विविध भांति सनमान करि ल्याए चित्त मोहिवाल ।
आये विक्रम की सभा सुकवि बिहारी लाल ॥32

इसके अनुसार राजा हमीर ने यमुना के तट पर त्रिविक्रमपुर नामक एक नगर को बसाया था जो मध्यदेश का सर्वश्रेष्ठ नगर था । राजा हमीर ने भूषण चिन्तामणि तथा मतिराम का सम्मान किया जिसके कारण इन्होंने अपने घर बनाये । स्पष्ट है कि तीनों ने पृथक-पृथक अपने घर बनाये । बिहारी लाल के संकेत से यद्यपि तीनों का सहोदरत्व स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं होता फिर भी मतिराम के चिंतामणि और भूषण का उल्लेख किसी न किसी संबन्ध का निश्चित रूप से संकेत करता है ।

पं० विश्व नाथ प्रसाद मिश्र ने पं० जवाहर लाल चतुर्वेदी मथुरा से प्राप्त एक बही (सं० 1869) के उल्लेख के आधार पर मतिराम और उनके पिता आदि का उल्लेख किया है । बिहारी लाल के चचेरे भाई शिव सहाय त्रिपाठी ने चौबे की बही में अपना वंश परिचय अपने हाथों लिखा है —

" शिव सहाय श्री भाई बिहारी लाल तथा शिव गुलाम तथा राम दीन । वैजनाथ के बेटा हुए, बिहारी लाल व शिव गुलाम । जगन्नाथ के नाती मतिराम के पंती रतिनाथ के परपन्ती । शिव सहाय के बेटा मथा दत्त, रामदीन के बेटा हुए प्रयाग दत्त व नन्द किशोर, बिहारी लाल के बेटा काशी दत्त, शिव गुलाम के बेटा शिव राखन । तिवारी मुरारपुर के मुकाम तिकवापुर पर गौरवल क अकबरपु म० मुरारपुर पट्टी मुरादपुर । सं० 1869 भादों सु० 8 ।"[1]

---

1. भूषण द्वितीय संस्करण — पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृष्ठ 82-83

इस लेख के आधार पर शिव सहाय की पूर्व वंश परम्परा यों बनती है —
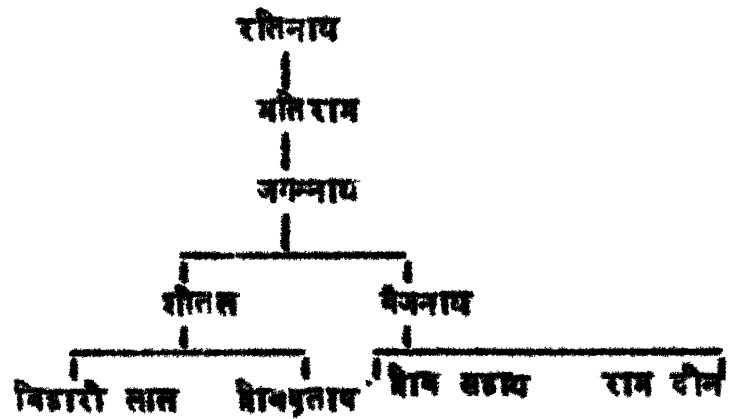
शिव सहाय के चचेरे भाई बिहारी लाल ने रस चन्द्रिका में जो अपनी वंश परम्परा (मतिराम - जगन्नाथ - शीतल - बिहारी लाल दिया है वह शिव सहाय द्वारा दी गई मथुरा वाली बही वंश परिचय से पूर्णतया मिलती है। अन्तर यह है कि बिहारी लाल ने वंशावली अपने तक ही सीमित रखी और शिव सहाय ने पूरे कुटुम्ब का ध्यान दिया।[1]

डा० महेन्द्र कुमार ने अपने ग्रन्थ मतिराम कवि और आचार्य में मथुरा वाली बही के विवरण को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए राम दीन का एक खंडित छन्द उद्धृत किया है[2] उनके कथनानुसार यह छन्द उन्हें तिकवांपुर निवासी पं० शिव प्रसाद तिवारी के पौत्र चन्द्र बलि तिवारी से प्राप्त हुआ था। इस पर टिप्पणी करते हुए डा० किशोरी लाल गुप्त ने लिखा है कि "डा० महेन्द्र कुमार कहने यह जा रहे हैं कि भूषण और मतिराम न तो एक गोत्र के थे और न सगे भाई थे पर उनके द्वारा उद्धृत कवित्त ही उनके प्रतिपादन का उपहास कर रहा है।[3] × × × कवित्त के एक एक

1। भूषण द्वितीय संस्करण पृष्ठ ८२-८३ डा० किशोरी लाल गुप्त द्वारा लिखित भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई पृष्ठ - १८६- ८७ पर उद्धृत।

2। भूषन, सुकवि चिन्तामनि ..
मतिराम जू को बनाती धूमट ...
परमारथ भी लीन्हों नाती जगन्नाथ को...
जगत कह जानत है...
जगत जगत वैद विद्या प्रवीन है।
शीतल औ बैज नाथ जाको तन मन धान
--------- देवता अतीव है। (कृपया शेष टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखें

चरण में एक-एक पीढ़ी का वर्णन है इससे भी ज्ञात होता है कि ये तीनों एक ही पीढ़ी के थे, अतः भाई थे । यदि ये सगे भाई न होते तो जगन्नाथ के बाप के रूप में केवल मतिराम का उल्लेख हुआ होता । अतः इस सारी सामग्री का आलोचना करने से भूषण और मतिराम का भ्रातृत्व निर्विवाद और असंदिग्ध हो जाता है[1] ।"[2]

जहाँ तक जटाशंकर उपनाम नीलकंठ की भ्रातृता का प्रश्न है उस संबन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि परम्परा जटाशंकर उपनाम नीलकंठ को त्रिपाठी बन्धुओं में सम्मिलित करती आई है । कवित्त रत्नाकर के रचयिता मातादीन मिश्र ने तथा शिव सिंह सेंगर जी ने इन्हें स्पष्ट रूप से सगा भाई माना है ।[3] मिश्र बन्धुओं ने सर्व प्रथम प्रमाणों के अभाव में जटाशंकर के सगे भाई होने पर सन्देह व्यक्त किया है और यहीं से दो वर्ग हो गए हैं किन्तु जब तक कोई विरोधी प्रमाण उपस्थित नहीं होता तब तक इन्हें त्रिपाठी बन्धुओं की भ्रातृता से वंचित करना उचित नहीं प्रतीत होता । नीलकंठ का भूषण और मतिराम के समान ही बूँदी हाड़ा वंश (छत्रसाल भावसिंह आदि) से संबन्ध इस बात का संकेत देता है कि ये सहोदर भाई थे और क्रमशः किसी न किसी रूप में एक ही राजवंश से संबन्ध जुड़ते रहे । भूषण चिंतामणि और नीलकंठ का छत्रसाल से संबन्ध रहा है और मतिराम का छत्रसाल के पुत्र भाव सिंह से । भ्रातृता के संबन्ध में यह तथ्य उपेक्षणीय नहीं है ।

विदित बिहारी लाल कविवर विश्वनाथ

तिनको अनुज द्विज नाम राम दीन है ।।

मतिराम कवि और आचार्य — डा० महेन्द्र पृष्ठ छन्द सार संग्रह पंचम पृष्ठ पर उद्धृत 29

1: मतिराम कवि और आचार्य — डा० महेन्द्र पृष्ठ 27

2: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई — डा० किशोरी लाल गुप्त पृष्ठ 189-90

3: वही पृष्ठ-692

पिता का नाम:—

परम्परा से चिन्तामणि के पिता का नाम रतिनाथ अथवा रत्नाकर स्वीकार किया गया है किन्तु डा० महेन्द्र एवं डा० सत्य कुमार चन्देल आदि ने भूषण एवं मतिराम के साथ चिन्तामणि की भ्रातृता को अस्वीकार करने के कारण रत्नाकर को भूषण का पिता मान कर उनके चिन्तामणि के पिता होने को अस्वीकार कर दिया है, किन्तु जैसा हम पहले स्थापित कर चुके हैं भूषण एवं मतिराम तथा नीलकंठ चिंतामणि के भाई थे अतः भूषण और मतिराम आदि के जो पिता हैं वे ही चिन्तामणि के भी पिता हैं। यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है।

यहाँ विचारणीय यह है कि दो भिन्न भिन्न दोहों में रत्नाकर और रतिनाथ ये दो नाम प्राप्त होते हैं। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने रत्नाकर त्रिपाठी को इनका पिता सिद्ध किया है।[1] इसके विपरीत पं० विश्वनाथ मिश्र ने इनका नाम रतिनाथ और उपनाम रत्नाकर निश्चित किया है क्यों कि चौबे वाली बही से प्राप्त सूचना के अनुसार जब मतिराम के पिता का नाम रतिनाथ है तो चिन्तामणि के पिता का भी नाम रतिनाथ से ही होना चाहिए। ऐसी स्थिति में रत्नाकर नाम की संगति या तो उपनाम मान कर लगाई जा सकती है या लोक प्रचलित नाम्य पं० विश्वनाथ मिश्र का विचार इस प्रकार है—"हस्तलेखों में पाठ भेद ही भिन्न-भिन्न हैं और यह भी असम्भव नहीं है कि 'रतिनाथ' का स्थानापन्न 'रत्नाकर' पद हो सके या इसका विपर्यय, अतः दोनों के सम्बन्ध यह कल्पना की जा सकती है कि एक नाम है और दूसरा उपनाम"[2]

ऐसी स्थिति में डा० शिव सिंह सेंगर पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० किशोरी लाल गुप्त आदि विद्वानों के मत में मत मिलाते हुए यह कहा जा सकता है कि चिन्तामणि के पिता का नाम रतिनाथ था।

आस्पद एवं गोत्र:—

चिंतामणि वर्ण से ब्राह्मण एवं त्रिपाठी हैं। इस विषय में सभी एक मत हैं, हाँ उनके गोत्र के संबन्ध में कुछ मत भेद प्राप्त होता है। मतिराम को भूषण का सहोदर भ्राता स्वीकार किया गया है। डा० महेन्द्र ने बड़े तर्क के साथ मतिराम को वत्स गोत्रिय सिद्ध करने का प्रयास किया है।[3] हालांकि इन्होंने भूषण चिंतामणि आदि

1: शिव सिंह सरोज सम्पादक डा० कृष्ण दिवाकर पृष्ठ 375
2: भूषण — आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र -द्वितीय संस्करण- पृष्ठ 96
3: मतिराम कवि और आचार्य — डा० महेन्द्र पृष्ठ 28

से मतिराम से भ्रातृता नहीं स्वीकार की है किन्तु जिस 'पन्ती' शब्द के आधार पर उन्होंने बिहारी लाल को कश्यप गोत्रीय तथा मतिराम को वत्स गोत्रीय सिद्ध किया है उस 'पन्ती' का पुत्र का पौत्र अर्थ भी होता है ।

अतः हमारे विचार में चिंतामणि का भी काश्यप गोत्र ही स्वीकार किया जाना चाहिए । इससे पं० विश्वनाथ मिश्र द्वारा उल्लिखित रत्नाकर या रतिनाथ (काश्यप गोत्र) की संगति बैठ जाती है ।

<u>विद्या अध्ययन एवं गुरु:-</u>

चिन्तामणि ने संस्कृत साहित्य में पर्याप्त अधिकार प्राप्त किया था और साहित्य शास्त्र के प्रायः सभी प्रसिद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया था । यह बात इसलिए प्रमाणित होती है कि इन्होंने दशरूपक, काव्य प्रकाश, श्रृंगार मंजरी आदि अनेक ग्रंथों का अपनी रचनाओं में उपयोग किया है । तजकिरा-ए-सर्व आजाद के अनुसार - "चिन्तामणि इल्म संस्कृत में भी अपने जमाने के लोगों से आगे थे ।"[1]

इनके शिक्षा गुरु कौन थे इसका उल्लेख इनके ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता किन्तु इन्होंने विद्याध्ययन सम्भवतः काशी जाकर किया होगा इस प्रकार का अनुमान इनके निम्नलिखित दोहे के आधार पर किया जा सकता है -

पुहुमी सी बारानसी ता में पंडित सार ।
बहुरि पंडितन में समुझि सार सुब्रह्म विचार ।।[2]

स्पष्ट है कि पंडितों की नगरी काशी के प्रति कवि के मन में निष्ठा है और काशी में किसी ऐसे पंडित के आश्रय में विद्याध्ययन कवि ने किया है जो ब्रह्म ज्ञानी है किन्तु नाम का उल्लेख न होने से सब कुछ अधूरा और अपरिचित ही रह जाता है।

1:

1: मतिराम कवि और आचार्य - डा० महेन्द्र पृष्ठ 28

2 क० कै० त० 2/306

जीवनचर्या:-

चिन्तामणि के जीवन-वृत्त के संबन्ध में किसी प्रकार की कोई सामग्री प्राप्त नहीं है अतः उनके जीवन के विषय में कुछ भी कहना कठिन है । हाँ, उनके ग्रन्थों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उनका जीवन रीतिकालीन जीवन परम्परा के अनुरूप ही रहा होगा ।

धार्मिक विश्वास एवं सिद्धान्तः-

चिन्तामणि के ग्रन्थों के स्वाध्याय के उपरान्त प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि चिन्तामणि एक प्रामाणिक सनातनी सद्गृहस्थ थे । इस उपकल्पना का आधार यह है कि चिन्तामणि के ग्रन्थों में निर्विरोध रूप से गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु, राम, कृष्ण आदि का अत्यन्त महिमायुक्तापूर्ण एवं पूज्य भाव सम्पन्न वर्णन किया है । डा० सत्य कुमार चन्देल ने इन्हें वैष्णव माना है ।[1] और उसका आधार कृष्ण-चरित्र को स्वीकार किया है किन्तु जिस निष्ठा से इन्होंने सभी देवी देवताओं का वर्णन किया है उससे समन्वयवादी सनातनी गृहस्थ मानना अधिक संगत होगा ।

विचार धारा:-

यद्यपि चिन्तामणि को रीति-कालीन पृष्ठभूमि में जीवन व्यतीत करना पड़ा है तथापि उन्होंने एक सनातनी गृहस्थ के सभी विचारों को प्रायः आत्मसात् करने का प्रयत्न किया है यही कारण है कि इनकी रचनाओं में अहिंसा सत्य आदि धार्मिक तत्वों संसार के प्रति नश्वरता आदि वैचारिक धारणाओं और लोकाचारों का यथास्थान समुचित निर्वाह दिखाई देता है यदि इनके कृष्ण चरित्र को देखकर इन्हें कृष्णोपासक कहा जाय तो रामायण में वर्णित राम के आधार पर क्या रामोपासक नहीं कहा जा सकता ? इसी तरह कृष्ण चरित्र के आरम्भिक वक्ता श्रोता शिव और मुनि लोग हैं तथा राधा कृष्ण की प्राप्ति के लिए शिवोपासना करती है तो ऐसी दशा में उन्हें शैव कहने में क्या आपत्ति होगी ?

इसीलिए हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि चिन्तामणि को एक उदारता वादी एवं समन्वयवादी सद्गृहस्थ कहना अधिक युक्त संगत होगा जो पंचदेवोपासक हैं । वैष्णव भक्ति का तो उस युग में प्रवाह था ही ।

---

1. चिन्तामणि और उनका काव्य — डा० सत्य कुमार चन्देल पृष्ठ 35

खण्ड 2

1: चिन्तामणि का कृतित्व

<u>कृतित्वः—</u>

<u>ग्रन्थों का सामान्य परिचयः—</u>

चिंतामणि ने कुल कितने ग्रन्थों की रचना की है इसे निश्चित और निर्विवाद रूप में कहना अत्यन्त कठिन है । उनके कवि कुल कल्प तरु में दो ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे शृंगार मंजरी[1] और पिंगल[2] नामक ग्रन्थों की रचना चिंतामणि के द्वारा हुई है ऐसा निर्णय हो जाता है । इसके अतिरिक्त कवित्त विचार को भी चिन्तामणि की रचना स्वीकार करना चाहिये क्योंकि उनके समसामयिक इतिहासकार मीर गुलाम अली बिलग्रामी ने उसका उल्लेख किया है[3]। ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने चिन्तामणि कृत पांच ग्रन्थालय में होना भी स्वीकार किया है उनमें पिंगल और कवि कुल कल्प तरु के अतिरिक्त काव्य प्रकाश, काव्य प्रकाश, काव्य विवेक और रामायण का उल्लेख है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपने खोज रिपोर्ट में गीत गोविन्द सटीक और संगीत चिंतामणि नामक दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है ।[4] वैसे सभा के पुस्तकालय की सूची में रामायण, बारह खड़ी, चौतीसी और कर्मविपाक ये चार ग्रन्थ बतलाये गये हैं । कृष्ण चरित्र एक विशाल काव्य ग्रन्थ पं0 देवी प्रसाद शुक्ल बकुआ नगर तहसील के पास विद्यमान था किन्तु उसे उनसे मांग कर डा0 कृष्ण दिवाकर (पूना) ले गये जिन्होंने अनेक प्रयत्न के बाद भी ग्रन्थ की हवा तक न लगने दी उसकी दूसरी प्रति कैप्टन शूर वीर सिंह(टेहरी) के पास से होती हुई डा0 महेन्द्र कुमार (दिल्ली) द्वारा मुझे प्राप्त हुई जिसकी टंकित प्रति मेरे पास है ।

1: दूषित मतुंक की खान यथा शृंगार मंजरी
क0क0त06/184

2: मेरे पिंगल ग्रन्थ ते समुझो छन्द विचार
क0क0त01/6

3: तजकिरा-ए सर्व आजाद — लेखक मीर गुलाम अली बिलग्रामी

4: शिवसिंह सरोज - सम्पादक - डा0 किशोरी लाल गुप्त
संस्करण 1970 पृ0692

बीकानेर पुस्तकालय की सूची का निर्माण करते हुये श्री अगर चन्द नाहटाजी ने रस विलास ग्रन्थ का परिचय दिया है उक्त पुस्तक अत्यन्त अपठनीय लिपि में है। इसकी प्रति लेखक को श्री अगर चन्द नाहटा जी के सौजन्य से प्राप्त हुई।

श्रृंगार मंजरी का सम्पादन डा0 भगीरथ मिश्र ने किया है और सुन्दर भूमिका आदि लिख कर उक्त ग्रन्थ को सर्व सुलभ बना दिया है। कवि कुल नामक सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ लीथो टाइप में मुंशी नवल किशोर प्रेस लखनऊ से सन् 1875 में प्रकाशित हुआ था जिसकी दो जर्जर प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हैं। कवि कुल कल्प तरू और भाषा पिंगल (हस्तलिखित) की प्रतियाँ हमें वहीं से उपलब्ध हुई हैं। रामाश्वमेध नामक एक हस्तलिखित अन्य ग्रन्थ जो कि चिन्तामणि रचित कहा जाता है काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में खंडित रूप में उपलब्ध है जिसका संकलन मैंने वहीं से किया है।

इस प्रकार चिंतामणि कृत क निम्नलिखित ग्रन्थ बताये जाते हैं:—

1: रस विलास

2: भाषा पिंगल

3: श्रृंगार मंजरी

4: कवि कुल कल्प तरू

5: कृष्ण चरित्र

6· कवित्त विचार

7: काव्य विवेक

8: काव्य प्रकाश

9: रामायण

10: रामाश्वमेध

11: गीत गोविन्दसटीक

12: बारह खड़ी

13: चौतीसी

इन ग्रन्थों में से कुछ ग्रन्थ या तो अनुपलब्ध हैं या अपूर्ण रूप में प्राप्त हैं और कुछ ग्रन्थों की प्रामाणिकता के विषय में प्रश्न वाचक चिन्ह लगे हुये हैं।

शेष ग्रन्थ हमारे आलोच्य कवि की कृतियाँ हैं । सुविधा के लिए इन ग्रन्थों की परिचर्चा निम्नांकित रूप में प्रस्तुत की जा रही है –

1: चिंतामणि के पूर्ण ग्रन्थ

2: आंशिक खंडित ग्रन्थ

3: ग्रन्थों के आंशिक उपलब्ध छन्द

4: संदिग्ध ग्रन्थ

<u>चिंतामणि के पूर्ण ग्रन्थः—</u>

<u>भाषा पिंगल का वर्ण्य विषयः—</u>

भाषा पिंगल छन्द-शास्त्र पर लिखा गया है । प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल छन्दों की संख्या 394 है । प्रस्तुत ग्रन्थारम्भ गणेश पार्वती एवं शिव की वंदना से होता है । तदनन्तर आश्रय दाताओं का प्रशस्तिगान किया जाता है । सातवें छन्द से यह संकेत मिलता है कि ग्रन्थ की रचना भोंसला राजा शाह के आदेश से की गई है इसके बाद कवि ने लघु और गुरु मात्राओं को स्पष्ट किया है तथा प्रस्तार के वर्णन उपरान्त कवि ने वर्णिक और मात्रिक छन्दों के लक्षणोदाहरण दिये हैं । छन्दों के नामकरण में कहीं कहीं भिन्नता मिलती है और छन्द के अन्त में जो पुष्पिका मिलती है उससे स्पष्ट पता चलता है कि ग्रन्थ पूर्ण है ।

<u>भाषा पिंगल की प्रामाणिकताः—</u>

भाषा पिंगल ग्रन्थ चिन्तामणि की कृति है इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कवि ने अधिकृत रूप तरह में भाषा पिंगल का उल्लेख किया है "मेरे पिंगल ग्रन्थ में समुझो छन्द विचार"[1] ग्रन्थ की पुष्पिका वैसी ही है जैसी कि चिन्तामणि के अन्य ग्रन्थों में मिलती है इसके अतिरिक्त भाषा शैली आदि दृष्टि से भी देखा जाय तो निःसंदेह यह ग्रन्थ चिन्तामणि का ही ठहरता है ।

<u>भाषा पिंगल का रचना कालः—</u>

यद्यपि यह ग्रन्थ छन्द विचार (छन्दोविचार) छन्दोविचार पिंगल, भाषा पिंगल आदि अनेक नामों से प्राप्त होता है किन्तु अन्तः साक्ष्य के आधार पर इसका

1: क०क०त० 1/7

वास्तविक नाम भाषा पिंगल ही है[1]। जहाँ तक छन्द विचार का प्रश्न है उसे ग्रन्थ का नाम न मान कर ग्रन्थ के वर्ण्य विषय का सूचक मानना चाहिये।

इस ग्रन्थ की रचना शाह मकरन्द (छत्रपति शिवा जी के पिता शाहा जी) के प्रेरणा से हुई थी।

सूरज वंशी भूमिपति लसत साहि मकरन्दु।
महाराज दिग पाल जिमि माल समुद्र सुत चन्दु।।[2]

यहाँ "माल समुद्र सुत चन्द" का अर्थ मालो जी के पुत्र शाहा जी करना होगा क्यों कि जैसे समुद्र का पुत्र चन्द्रमा है वैसे ही मालो जी रूपी समुद्र के पुत्र शाहा जी रूपी चन्द्रमा हैं। इतना ही नहीं आगे के छन्दों में 'साहि महाराज' 'साहिनर नाह' जैसे उल्लेख भी कथन की पुष्टि करते हैं।

शिवसिंह सरोज ने लिखा है कि मतिरामजी बहुत दिनों तक नागपुर के सूर्यवंशी भोंसला राजा मकरन्दशाह के यहाँ रहे और उन्हीं के आज्ञानुसार इन्होंने पिंगल ग्रन्थ की रचना की।[3] किन्तु डा० दिवाकर ने अपनी छानबीन के बाद यह निश्चय किया कि पं० भगीरथ दीक्षित की यह मान्यता असंगत है कि मकरन्दशाह नागपुर के भोंसला थे। पं० कृष्ण बिहारी मिश्र जी ने नागपुर के भोंसला की बात अस्वीकार करके भी 'साहिमकरन्द' का अर्थ शिवा जी के पितामह मालो जी को माना है[4] किन्तु कृष्ण दिवाकर जी ने सिद्ध किया है कि मकरन्द वास्तव में एक पदवी थी क्योंकि भूषण ने मालोजी को 'माल मकरन्द' और शिवा जी को 'शिवकरण मकरन्द' लिखा है[5] फिर शाहाजी को साहि मकरन्द क्यों न मान लिया जाय।

शाहा जी के आश्रित जयराम पिण्ड्ये ने राधामाधव विलास चम्पू में इस की

---

1. मतिरामजी कवि को हुकुम दियो साहि मकरन्द।
   करो सकल लक्षण सहित भाषा पिंगल छन्द।।
   हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा
2. मेरे पिंगल ग्रन्थ मे समुझो छन्द विचार।
   रीति सुभाषा कवित की बरनत बुधि अनुसार।। छ०सा०पि० 1/6
3. शिवसिंह सरोज - सम्पादक डा० किशोरी लाल गुप्त संस्करण 1970 पृष्ठ 692
4. मतिराम ग्रन्थावलि- पं० कृष्ण बिहारी मिश्र पृष्ठ 223
5. भूषण ग्रन्थावली - संपादक मिश्र बन्धु पृष्ठ 2 छन्द 49

को शाहि मकरन्द लिखा है –

देखियत नैननि होड़ दैनि बोलतु है ।

सुनो शाहि मकरन्द कन्त कस रन को[1]।।

वेद कवि के (सन् 1650) के संगीत मकरन्द में भी मकरन्द शाह और शाहिमकरन्द का उल्लेख है[2] भाषा पिंगल के अन्त में दानधारी नामक छन्द के उदाहरण में –

मह मकरन्द नन्द मरदा निकन्द सो है[3]

डा० कृष्ण दिवाकर जी के अनुसार महोबा की प्रति में स्पष्ट रूप से साह मकरन्द नन्द मरदा निकन्द सो है' ऐसा पाठ मिलता है । दोनों प्रकार से आश्रयदाता मालो जी के पुत्र शाहा जी हैं, यही मानना चाहिये[4]।

ऐसी दशा में शाहा जी की मृत्यु 23 जनवरी सन् 1664 में हुई थी[5]। अतः इस ग्रन्थ की रचना संवत 1770–71 के पूर्व हो जानी चाहिए । पं० भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने नार नवल पटियाला से प्राप्त पिंगल की एक प्रति के आधार पर लिखे –

"कहत अंक मनि दीप है वाणि बराबर लेहु" पंक्ति प्राप्त होती है, रचना काल निकालने का प्रयास किया है और इसका काल संवत् 1797 में माना है जब वे शाहमकरन्द को नागपुर के भोसला मानने के पक्ष में थे ।[6] जब उन्होंने शाहिमकरन्द को शिवाजी का पितामह (भूषण विमर्श द्वितीय वृत्ति सन् 150) तब उन्होंने संवत्

---

1. राधा माधव मिलाप चम्पू — जय राम पिड्ये
2. संगीत मकरन्द – दान भगति प्रकरण - लेखक - कृष्ण डा० कृष्ण दिवाकर के द्वारा भोसला राज दरबार के हिन्दी कवि पृष्ठ 38 पर उद्धृत
3. भाषा पिंगल — चिन्तामणि
4. चिन्तामणि कृत भाषा पिंगल हस्त-लिखित प्रति सरस्वती महल तंजौर नं० 10724 भोसला राज दरबार के हिन्दी कवि लेखक डा० कृष्ण दिवाकर पृष्ठ 38 पर उद्धृत
5. शिव कालीन पत्र सार संग्रह - खंड तीन सम्पादक डा० ना० जोशी - सन् 1937 पृष्ठ 184 डा० कृष्ण दिवाकर के आश्रय पर भोसला राज दरबार के हिन्दी कवि पृष्ठ 39
6. माधुरी पत्रिका सन् 1926 पृष्ठ 360

1779 मान लिया । चिंतामणि ने शाह जी का जिस प्रकार उल्लेख किया है उससे स्पष्ट है कि रचना के समय कवि का आश्रयदाता जीवित था[1]। डा० कृष्ण दिवाकर ने संकेत कोष[2] के आधार पर "कह कवि मनि अरु दीप है जानि बराबर लेहु" का अर्थ कवि=1 मनि=7 और दीप है=14=1714 संवत् लिया है और अनेक तर्कों के आधार पर इस ग्रन्थ का निर्माण काल संवत् 1714 सिद्ध करने का प्रयास किया है[3]। कहना न होगा जहाँ इस प्रकार का संख्याओं का सांकेतिक उल्लेख होता है वहाँ 'अंकानाम वामतो गतिः' का नियम भी स्वीकार किया जाता है ऐसी स्थिति में या तो सं० 1471 मानना पड़ेगा अथवा संख्या 2771 हो जायगी(दीप 7 और है दो)

वस्तुस्थिति यह है कि इस छन्द से रचना काल निकालने का प्रयास शुद्ध बौद्धिक व्यायाम है । चिन्तामणि यह कहना चाहते हैं कि - कवि चिन्तामणि और दीपक इन दोनों को समान ही समझना चाहिए । इनके गुणों का प्रकाश कवि पक्ष में काव्य शक्ति का प्रकाश दीपक पक्ष में बत्ती में पूरा प्रकाश तब होता है जब पूरा स्नेह हो (कवि पक्ष में आश्रय दाता का पूर्ण प्रेम हो और दीपक पक्ष में पूरा तेल भरा हो ।[4]

अतः उक्त दोहे से रचना काल निकालने का प्रयास संगत नहीं प्रतीत होता, हाँ तंजौर के पुस्तकालय में डा० कृष्ण दिवाकर जी को यह दोहा प्राप्त हुआ है -

संवत् सत्रहसै बरस बीती अब उनईस ।
माघे बदि कैलास को रच्यो ग्रन्थ अवनीस ।।[5]

1: पिंगल - चिंतामणि कृत छन्द - 6,7

2: संकेत कोष, श्री० रा० रूपमती (प्रथम संस्करण) पृष्ठ 114

3: भोंसला राज दरबार के हिन्दी कवि - लेखक - डा० कृष्ण दिवाकर पृष्ठ 41
कहत कवि मनि अरु दीप है जानि बराबरि लेहु

4: गुन प्रकाश तब करत जब पावत पूरन नेहु
भाषा पिंगल चिन्तामणि कृत छन्द 8

5: चिन्तामणि कृत छन्द विचार हस्तलिखित प्रति तंजौर टी०एस०एम० नं० बी-5 368

इससे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का समाप्ति काल सं0 1719 वैशाख वदी पंचमी शनिवार हो जाता है यह समय शाहजी की मृत्यु से लगभग डेढ़, दो वर्ष है अतः इसे ही इस ग्रन्थ का रचना काल इसे ही माना जाना चाहिए। डा0 कृष्ण दिवाकर जी के इस तर्क से सहमत नहीं हुआ जा सकता है कि सं0 1714 से आरम्भ करके सं0 1719 में ग्रन्थ की समाप्ति हुई। दरबार में बहुत दिन तक रहना और बात है किन्तु इस छोटे से ग्रन्थ की रचना में पाँच वर्ष लगा देना आचार्य चिन्तामणि की प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है। विशेषः जब 'कह कवि मनि अरु दीप है' से संवत् निकालने के प्रयास को ही अस्वीकार कर दिया गया है तब सं0 1714 से आरम्भ करने वाली बात स्वतः अप्रामाणिक हो जाती है। सं0 1719 में -- 'रच्यो ग्रन्थ' का संकेत रचना की समाप्ति का निश्चायक है। क्योंकि सं0 1719 से आगे इसके रचना काल को नहीं बढ़ाया जा सकता। पिंगल की रचना के पौर्वापर्य पर यदि विचार करें तो यह ग्रन्थ निश्चय ही कवि कुल कल्प तरु से पहले की रचना सिद्ध होती है क्योंकि कवि कुल कल्प तरु की उपक्रमणिका में चिन्तामणि ने स्वयं लिखा है--

> मेरे पिंगल ग्रन्थ ते समुझो छन्द विचार।
> रीति सुभाषा कवित की बरनत बुधि अनुसार'[1]।।

इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना कवि कुल कल्प तरु से पहले हुई है इस ग्रन्थ की प्रशंसा और लोकप्रियता बहुत अधिक रही है। प्राकृत पैंगलम् के आधार पर लिखित इस ग्रन्थ में छंदःशास्त्र का रहस्य समझाने का सुन्दर प्रयास किया गया है।

<u>शृंगार मंजरीः--</u>

<u>वर्ण्य विषयः--</u>

शृंगार मंजरी नायक-नायिका भेद पर लिखा हुआ ग्रन्थ है। सर्व प्रथम 17 छन्दों में बड़े साहि उर्फ अकबर साहि का वंश परिचय दिया गया है। इसके बाद नायिकाओं के धर्म के अनुसार स्वकीया, परकीया, सामान्या और मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा भेद किए गए हैं। मुग्धा नायिका के ज्ञात यौवना, अज्ञात यौवना व नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा इन चार भेदों में वर्गीकृत है। मध्या के प्रकाश और प्रच्छन्न भेद करने के अनन्तर प्रगल्भा रीति प्रीति मति और रत्यानन्द परवशा भेद किये गए हैं।

---

1. क0क0त0 1/6

मान के अनुसार मध्या और प्रौढ़ा तीन-तीन भेद धीरा, अधीरा और धीरा धीरा किए गए हैं। परकीया के कन्यका और परोढ़ा के अनन्तर इनके भेदोपभेद का वर्णन प्रस्तुत किया है। सामान्या नायिका के तीन भेद हुए हैं — स्वतंत्रा, नियमिता और कल्पितानुरागा। इसके बाद अवस्था के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद किये गये हैं- स्वाधीन पतिका, वासक, सज्जा, विरहोत्कंठिता, प्रोषित पतिका और अभिसारिका। तदनन्तर उत्तमादि भेद के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद — उत्तमा, मध्यमा और अधमा। नायिकाओं के वर्गीकरण के पश्चात् कवि सखियों का वर्णन करता है उपालम्भ शिक्षा, हास-परिहास, विनोद वन विहार, जलकेलि, फूलकेलि, मधुपान, कंचनकेलि, बसन्त केलि आदि का वर्णन है। इसके पश्चात कवि दूतियों का वर्णन करता है। दूती के अन्तर्गत धात्री, सखी, दासी, शिल्पिनी, स्वयं दूतिका, जोगिनी, माला संबन्धिनी नटी शंखिता दूती आदि का वर्णन है। कवि ने नायिका के चार भेद अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट के वर्णन के बाद सात्विक भावों वर्णन किया है। तदनन्तर वात्स्यायन के काम सूत्र के आधार पर पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रिणी और शंखिनी भेद किये गए हैं। चिन्तामणि ने अन्य अकबरशाह कृत संस्कृत शृंगार मंजरी के लक्षणों का ही अनुवाद किया है। उदाहरण अपनी ओर से दिया है।

उदाहरण कवित्व पूर्ण सरस एवं सटीक हैं। उदाहरणों में स्थान-स्थान पर शाह अकबर शाहि का उल्लेख, जहाँ एक ओर ग्रन्थ की प्रामाणिकता का प्रमाण प्रस्तुत करता है वहीं दूसरी ओर अपने आश्रयदाता के रूप और गुण आदि के प्रति कवि की वास्तविक अनुरक्ति का परिचायक है।

<u>शृंगार मंजरी की प्रामाणिकता:-</u>

शृंगार मंजरी की प्रामाणिकता के लिए निःसन्देह कहा जा सकता है कि वह चिन्तामणि ही की कृति है। क्योंकि प्रमाण की पुष्टता के लिए कवि ने कवि कुल कल्प तरु के नायक-नायिका भेद के प्रकरण में लिखा है — "अथ प्रोषित भर्तृका को लक्षण यथा शृंगार मंजरी"[1] शृंगार मंजरी और कवि कुल कल्प तरु के हूबहू छन्द मिलते हैं। इससे ग्रन्थ की प्रामाणिकता के लिए और बल मिलता है। दोनों ग्रन्थों के कुछ समान छन्द निम्नलिखित हैं —

1: क०क०त० 6/184

राखति जो नहिं सामुहैं नैन,

सो बैन कहा पिय सों मिलि भाखै ।

बाँह गहे झिझकौरि भजै,

हटि कै पकरैं दृग नीरनि नाखै ।

चोल नवोढ़ बधू बस कीबे को,

सो अपने मन मैं अभिलाखै ।

एक छिनी भोरि सो थिर कै,

जल बिन्दु पुरैनि के पात मैं राखै ।

(शृंगार मंजरी छन्द संख्या 33)

राखति जो नहि सामुहे नैन,

सुबैन कहा पिय सों मिलि भाखै ।

बाँह गहे झिझिकारि भजै,

पकरे करसों दृग नीरनि नाखै ।

एक छिनी थिरके थिर क्यों,

जल बिन्दु पुरैनि के पात मै राखै ।

चोल नवोढ़ा बधू बस की बे को,

सो अपने मन मैं अभिलाखै ।

(कवि कुल कल्प तरु- 5/90)

दोनों ग्रन्थों में रसानन्द वरसा का समान उदाहरण :-

प्रीतम को रति रंग सनै,

झूमनो रस की बरसा उमई है ।

ऐसी भुजा भरि बैठि रही मनु,

द्वै तनु की करि एक लई है ।

सुन्दरि मोहन के मुख सों,

मुख लाइ अनन्द में लीन भई है ।

ऊँचे उरोज लगाइ हिये मनो,

कंचन बीच मिलाइ गई है

(शृंगार मंजरी छन्द संख्या 51)

प्रीतम को रस रंग सनै,

सुमनो रस को बरसा उनई है ।

ऐसे भुजा भरि भेंटि रही,

जनु ह्वै तनकी कोर एक लई है ।

सुन्दरि मोहन के मुख सों,

मुख लाइ अनन्द में लीन भई है ।

ऊँचे उरोज लगाई हिये,

जनु कंचन बेल बिलाइ गई है ।

(कवि कुल कल्प तरु 6/107)

शृंगार मंजरी के मध्या धीरा और कवि कुल कल्प तरु के मध्या धीरता के उदाहरणों की समानता:—

कुंकुम लेप सों कीन्हौं सबै तनु लाल हो दीपति पुंज उज्यारे
दुःख हरे हम ही चकोरन के फूले ये लोचन कौल बिचारे
बाहिर आये ते नारिन की भूली नीबिन के हौ बनावा निहारे
आनु प्रभात दिखाई दई तुम लीजिए मित्र प्रनाम हमारे

(शृंगार मंजरी छन्द संख्या 56)

कुंकुम लेप सों कीन्हौं सबै तनु लाल हो दीपति पुंज उज्यारे ।
दुःख हरे हम ही चकोरन के फूले ए लोचन कौल बिचारे ।।
बाहिर आवते नारिन की खुली नीबिन के हवे बंधावन हारे ।
आज प्रभात दिखाई दई तुम लीजिये मित्र ये प्रान हमारे ।।

(कवि कुल कल्प तरु 6/175)

इसी प्रकार इसके अतिरिक्त निम्नलिखित छन्द कवि कुल कल्प तरु और शृंगार मंजरी में समान रूप से मिलते हैं—

शृंगार मंजरी	कवि कुल कल्प तरु
58	6/73
331	6/217
187	6/162
189	6/165
212	6/170
257	6/176

260	6/180
287	6/191
302	6/201
310	6/206
311	6/207
328	6/213
331	6/217

कवि कुल कल्प तरु और शृंगार मंजरी के छन्दों की समानता के अतिरिक्त भाषा, शैली एवं शिल्पगत साम्य दिखायी पड़ती है अतः निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि शृंगार मंजरी आचार्य चिन्तामणि की रचना है ।

शृंगार मंजरी:-

डा0 भगीरथ मिश्र ने हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास लिखते समय सर्वप्रथम दतिया पुस्तकालय में शृंगार मंजरी की हस्तलिखित प्रति देखी और उसे प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया । अकबर शाहि कृत मूल तेलगु ग्रन्थ की संस्कृत छाया शृंगार मंजरी का ब्रजभाषा रूपान्तर चिन्तामणि ने किया है । तुलनात्मक परीक्षण से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा में अनुवाद करते समय चिन्तामणि ने शृंगार मंजरी के लक्षण और उनके व्याख्यात्मक चर्चा भाग को तो ज्यों का त्यों ले लिया है किन्तु उदाहरण चिन्तामणि की मौलिक रचनाएँ हैं । इसीलिए संस्कृत शृंगार मंजरी से अंशतः प्रभावित होते हुए भी इस ग्रन्थ का कवि कर्म महत्वपूर्ण कहा जायेगा । इसकी चर्चा के गद्य भाग सत्रहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा के नमूने प्रस्तुत करते हैं लक्षणों के निरूपण में भी चिंतामणि ने पर्याप्त स्वच्छन्दता बरती है इसीलिए शृंगार मंजरी का भाषान्तर होते हुए भी चिन्तामणि की इसे मौलिक कृति कहना अनुचित न होगा ।

शृंगार मंजरी का रचना काल:-

कवि कुल कल्प तरु में दो ऐसे उल्लेख हैं जिनके आधार पर शृंगार मंजरी उससे पूर्ववर्ती रचना निर्धारित होती है । पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

शोभित नायिका को लक्षण शृंगार मंजरी यथा
बड़े साहिब अपने ग्रन्थन मांह निर्णय कीन्हों कवि बुधि नाह

(सं0 1648)

ऐसी दशा में सन्त अकबर शाह की आयु और शृंगार मंजरी की रचना का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध समाप्त हो जाता है और इस ग्रन्थ की रचना सं0 1720-21 के बाद कभी भी मानी जा सकती है । अतः डा0 सत्य देव चौधरी का संवत् 1720 के कुछ आगे बढ़कर ही इसकी रचना हुई होगी ऐसा अनुमान निराधार नहीं है डा0 कृष्ण दिवाकर ने सं0 1725 (सन् 1668) है जाने के कारण सन् 1666 को रचना काल माना है जो प्रायः अधिक युक्त संगत होता है क्योंकि अबुल हसन सं0 1724 (सन् 1664) में शासनारूढ़ हुए थे । ग्रन्थ में उनका उल्लेख जिस प्रकार से किया गया है उससे उनका महत्व स्पष्ट है अतः सं0 1719 या सं 1722 के बदले सं0 1725 मानना अधिक तर्क संगत है ।

कवि कुल कल्प तरु:--

वर्ण्य विषय:--

अब तक प्राप्त ग्रन्थों में यह ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है । इसमें कुल नौ प्रकरण हैं । प्रथम प्रकरण का प्रारम्भ मंगला चरन से किया गया है इसके पश्चात् काव्य भेद, काव्य लक्षण, काव्य स्वरूप और गुण का वर्णन किया है । माधुर्य गुण को काव्य के मूल तत्व में स्वीकार किया गया है । उदारता में अर्थ चारुत्व और ध्वनि में सालंकारता का निरूपण है । एक गुण का दूसरे गुण में अन्तर्भाव भी दिखाया गया है । प्रौढ़ि के भेदोप भेद करने के पश्चात् गुणों के दस भेद का सविस्तार क वर्णन किया है ।

1: क0क0त0 5/184 तथा 5/186

2: हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास - डा0 भगीरथ मिश्र पृष्ठ 72

3: वही

4: शृंगार मंजरी की भूमिका सम्पादक डा0 भगीरथ मिश्र पृष्ठ 19

5: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा0 सत्यदेव चौधरी पृष्ठ 36

6: कैमिनस हिन्दी [illegible] - [illegible] पृष्ठ 273,74,~~289-90~~

7: वही 289-90

8: सन्त अकबर शाह कृत संस्कृत शृंगार मंजरी - सम्पादक डा0 वी0 राघवन पृष्ठ 5

9: गोलकुण्डा राज दरबार के हिन्दी कवि - डा0 कृष्ण दिवाकर पृष्ठ 6

10: संत अकबर साहि कृत शृंगार मंजरी · सं0 डा. वी. राघवन भूमिका पृ0 7

द्वितीय प्रकरण में को दो भागों में विभक्त किया गया है । जिसमें प्रथम भाग में शब्दालंकारों एवं द्वितीय भाग में अर्थालंकारों का निरूपण किया गया है । अलंकार प्रकरण में कवि ने काव्य प्रकाश, साहित्य दर्पण, कुवलयानन्द से सहायता ली है उल्लेखनीय यह है कि प्रताप रुद्र यशोभूषण (विद्यानाथ) का सम्भवतः रीतिकालीन ग्रन्थ में इनका पहला प्रयोग है । उत्प्रेक्षा के 27 भेदों की चर्चा इन्होंने विद्यानाथ के ही आधार पर की है । इस प्रकार यह प्रकरण शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के लक्षणोदाहरण को लेकर 358 छन्दों में समाप्त हुआ है ।

चतुर्थ प्रकरण में काव्यगत दोषों का वर्णन किया गया है । इस प्रकरण के अन्तर्गत शब्दगत दोष, अर्थगत दोष और रसगत दोषों के निरूपण के साथ दोष परिहार के उपायों का भी वर्णन किया गया है । रीतिकालीन वातावरण में ढले हुए इनके लक्षण एवं उदाहरण अत्यन्त सुन्दर और सशक्त हैं ।

पंचम प्रकरण दो भागों में विभक्त है । प्रथम भाग में शब्दार्थ निरूपण और द्वितीय भाग में ध्वनि निरूपण है । शब्द शक्ति विवेचन में चिन्तामणि ने मुख्यतः मम्मट से कहीं कहीं साहित्य दर्पण से सहायता ली गई है ।

काव्य के तीन प्रकार – उत्तम, मध्यम और अधम का उल्लेख मिलता है । तदनन्तर उत्तम, मध्यम, अधम भेद की चर्चा की गई है । इसके बाद अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य, अर्थान्तर संक्रमित वाच्य तथा शब्द शक्ति मूल प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार ध्वनि का वर्णन किया गया है । अर्थ शक्त्युद्भव एवं असंलक्ष्यक्रम को 12 भेदों में विभक्त किया गया है ।

छठें प्रकरण में नायिका भेद का विस्तृत विवेचन किया गया है । सर्व प्रथम कवि ने जाति के अनुसार– दिव्या, अदिव्या, दिव्यादिव्या भेद किये । उल्लेखनीय है कि चिन्तामणि का यह विभाजन नख शिख वर्णन की दृष्टि से किया गया है देवांगनाओं की नख शिख शोभा वर्णित होती है जबकि मानवी की शिख नख । भूमि पर अवतरित देव नारी के लिए दोनों से वर्णन किया जा सकता है । भारत के नाट्य शास्त्र में केवल दिव्या का उल्लेख किया गया है ।

~~पिछले पृष्ठ की शेष टिप्पणी~~

[illegible]

पुनः नायक से सम्बन्ध के आधार पर नायिकाओं के तीन भेद किये हैं — स्वकीया, परकीया और सामान्या । चिन्तामणि ने सम्भवतः भानुमिश्र की रस मंजरी से सहायता ली है । स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेद किये गए हैं । मुग्धा के पुनः छभेद अविदित यौवना, अविदित कामा, विदित मनोभवा, नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा और कोमल कोपा । तदनन्तर मध्या के चार भेद किए गए हैं—

आरूढ़ यौवना, आरूढ़ मदना, विचित्र सुरता और प्रगल्भ वचना । प्रौढ़ा के भी चिन्तामणि ने चार भेद किए — यौवन प्रगल्भा, मदनमत्ता, रतिप्रीतिमति और रत्यानन्द परवशा ।

मान के आधार पर नायिकाओं के स्वकीया, परकीया और सामान्या तीन-तीन धीरा, अधीरा और धीरा-धीरा बतलाए गए हैं । अवस्था के अनुसार नायिका के आठ भेद — स्वाधीन पतिका, वासक सज्जा, विरहोत्कंठिता, विप्रलब्धा, खंडिता, प्रोषितभर्तृका तथा अभिसारिका के भेदों का भी विवेचन हुआ है ।

सप्तम प्रकरण के प्रारम्भ में नायक के धीरोदात्त, धीर ललित, धीर प्रशान्त एवं धीरोद्धत भेदों का वर्णन किया है तदनन्तर अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, और शठ भेद निरूपित हैं ।

अष्टम प्रकरण में विभाव, अनुभाव के भेदोपभेद का वर्णन है । नवम प्रकरण में शृंगार रस के निरूपण, विरह की दश दशाओं तथा वीर रस के भेदों के अतिरिक्त अन्य रसों के वर्णन के साथ ग्रन्थ को समाप्त कर दिया है ।

<u>कवि कुल कल्प तरू की प्रामाणिकता:—</u>

प्रस्तुत ग्रन्थ अनिवार्य रूप से सभी विद्वानों के द्वारा चिन्तामणि की प्रामाणिक कृति के रूप में स्वीकार कर लिया गया है । इस ग्रन्थ में चिंतामणि के रस विलास, छन्द विचार, शृंगार मंजरी, कृष्ण चरित्र और काव्य विवेक के छन्द प्राप्त होते हैं । शृंगार मंजरी और छन्द विचार को ही बहिरंग साक्ष्य के आधार पर भी चिन्तामणि की कृति स्वीकार किया गया है । ऐसी स्थिति में इसकी प्रामाणिकता पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है । आवश्यक सन्दर्भ उपर्युक्त ग्रन्थों की प्रामाणिकता के प्रसंग में दिये जा चुके हैं । अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति अपेक्षित नहीं है ।

<u>कवि कुल कल्प तरू का रचना काल:--</u>

कवि कुल कल्प तरू का रचना काल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सं0 1707 है । डा0 भगीरथ मिश्र ने दतिया के राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित ग्रन्थ के उल्लेख के आधार पर भी इसका रचना काल सं0 1707 ही दिया है ।[1] डा0 किशोरी लाल गुप्त का निर्णय है कि केवल इसी एक ग्रन्थ का रचना काल सं0 1707 ज्ञात है[2] किन्तु उन्होंने कवि कुल कल्प तरू में शृंगार मंजरी के उल्लेख के आधार पर यह निर्णय लिया है कि शृंगार मंजरी कवि कुल कल्प तरू (रचना काल सं0 1707) के पहले की रचना है क्योंकि उसका उल्लेख कवि कुल कल्प तरू में हुआ है । प्रोषित भर्तृका को स्थान शृंगार मंजरी में था ।[3] उक्त दोनों कथन स्वतः परस्पर विरुद्ध हैं क्योंकि जब स्वयं डा0 मिश्र ने शृंगार मंजरी को सं: 1717 के आस-पास की रचना स्वीकार किया है फिर सं0 1707 की अवधारणा स्वयं समाप्त हो जाती है ।

हमने शृंगार मंजरी का रचना काल अधिक से अधिक सं0 1720-21 के आस पास स्वीकार किया है । डा0 सत्य देव चौधरी ने सं0 1722 माना है[4]। अतः सं0 1722 के काल खण्ड को शृंगार मंजरी के लिए समर्पित कर देने के बाद ही इसकी रचना हुई होगी यह प्रायः निश्चित सा है । डा0 सत्य कुमार चन्देल ने लिखा है कि यह सं0 1735 - 36 के आस-पास समाप्त हुआ होगा किन्तु हमारा ऐसा विश्वास है कि इस ग्रन्थ की रचना शृंगार मंजरी के बाद और कवि के जीवन के अन्त अन्तिम समय के आस-पास लगभग सं0 1721-28 के बीच हुई होगी क्योंकि यह ग्रन्थ इतना प्रौढ़ और परिपक्व है कि इसकी रचना जीवन व्यापी शास्त्रीय मनन चिन्तन का ही प्रतिफल हो सकती है ।

दूसरा तर्क यह है कि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना के बाद किसी ऐसे आश्रयदाता के यहाँ आने का अवसर नहीं प्राप्त किया जिसे इस बहुमूल्य ग्रन्थ का

1: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई -- डा0 किशोरी लाल गुप्त पृष्ठ 8

2: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई -- डा0 किशोरी लाल गुप्त पृष्ठ 8

3: क0क0त0 6/184

4: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य -- डा0 सत्य देव चौधरी पृष्ठ 56

समर्थन करके कवि पर्याप्त धन और सम्मान पा सकता । यह स्थिति वृद्धावस्था की ही हो सकती है सेंगर जी द्वारा सं0 1729 स्थिति काल मान लिये जाने पर सं0 1728 से आगे इसके रचना काल को नहीं ले जाया जा सकता ।

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने अपनी कृति से एक छन्द उद्धृत किया है जिसमें राजा रुद्रशाह सोलंकी की प्रशंसा है ।[1] ये वही रुद्र शाह सोलंकी नहीं हैं जिन्होंने भूषण को कवि भूषण की उपाधि दी थी और जिन्हें भूषण ने चित्रकूटाधिपति कहा है डा० सत्यकुमार चन्देल ने वर्तमान कृतियों में उक्त छन्द के न मिलने के कारण उक्त छन्द को तो अप्रामाणिक माना ही है सोलंकी के आश्रय में चिन्तामणि की जाने की बात को भी नकार दिया है ।[2] यहाँ निवेदन यह करना है कि ~~वर्तमान~~ कि वर्तमान कृतियों में उक्त छन्द के न प्राप्त होने से यह कैसे मान लिया जाय कि उक्त छन्द सेंगर जी के कृति में भी नहीं था । ऐसी स्थिति में यदि हम रुद्र शाह सोलंकी से चिन्तामणि का संबन्ध मान लेते हैं तो भी रचना काल लगभग यहीं (सं0 1728) जाकर ठहरता है क्योंकि "इन सोलंकियों का राज्य सं0 1728 के लगभग महाराज छत्रसाल ने छीन लिया था"[3]

1: साहेब सुलंकी शिव राज बाबू रूद्र शाह ।
तासों नर रहत कहत हलक हैं ।।
काढ़ी करवाल ठाढ़ी कटत कुवल दल ।
शोणित सकुच छीर पर छलकत हैं ।।
चिंतामनि भनत भभत भूतगन गाँव ।
बैठ कूब गीदर और गीध गलकत हैं ।।
कारे और कंचन सो मोती दमकत ।
मानो कारे लाल बदर में तारे कलकत हैं ।।
शिव सिंह सरोज — सम्पादक डा0 किशोरी लाल गुप्त : सन् 1970 का संस्करण पृष्ठ 159-60

2: चिन्तामणि और उनका काव्य - डा0 सत्य कुमार चन्देल : पृष्ठ 79

3: भोंसला राज दरबार हिन्दी कवि — डा0 कृष्ण दिवाकर पृष्ठ 104

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कवि कुल कल्प तरु की रचना का समय सं० 1724 से पूर्व या उसके आस पास हो सकता है । ऐसी स्थिति में डा० सत्यदेव चौधरी[1] और डा० कृष्ण दिवाकर[2] द्वारा निर्धारित क्रमशः सं० 1724 और सं० 1727 की भी संगति बैठ जाती है । नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (1923/81 जी) में रचनाकाल सं० 1751 दिया हुआ है –

संवत सत्रह से जहाँ ऊपर इक्यावन वदि चैत
बुध दिन कवि कुल कल्प तरु चौपि रचित जग चैत

किन्तु इस दोहे में पाठ की गड़बड़ी है[3] तथा अन्य ग्रन्थों के काल से इसकी काल संगति नहीं बैठती । वैसे यदि सं० 1751 भी मानें तो कवि की आयु उस समय लगभग 85 वर्ष की सिद्ध होती है । इससे हमारी उस उपकल्पना को बल ही मिलता है कि यह रचना चिन्तामणि की अन्तिम परिपक्व रचना है, तथापि सं० 1751 को सहसा स्वीकार कर लेना कठिन प्रतीत होता है ।

<u>चिन्तामणि के अधिक खंडित ग्रन्थः–</u>

<u>रस विलास –</u>

<u>वर्ण्य विषय :–</u>

प्रस्तुत ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में संगृहीत है । देशी कागज पर लिखा गया यह ग्रन्थ लिपिकारों की असावधानी के कारण पर्याप्त अशुद्ध है । प्रत्येक छन्द के अन्त में वैसी ही पुष्पिका प्राप्त होती है जैसी चिन्तामणि के अन्य ग्रन्थों में । अन्तिम परिच्छेद की पुष्पिका न प्राप्त होने से ग्रन्थ खंडित प्रतीत है ।

1: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य – डा० सत्यदेव चौधरी – पृष्ठ 36
2: भोंसला राजदरबार के हिन्दी कवि – डा० कृष्ण दिवाकर – पृष्ठ 48
3: भूषण, मतिराम तथा उनके अन्य भाई – डा० किशोरी लाल गुप्त – पृष्ठ 8

ग्रंथ में सम्पूर्ण छन्दों की संख्या 410 है जिनमें से 5 सोरठे, 7 हरिगीतिकायें, 8 छप्पय, 82 घनाक्षरियाँ, 119 सवैये तथा 189 दोहे समाहित हैं परिच्छेदों की संख्या 8 है। नायक-नायिका निरूपण में नायक के धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त, धीरोद्धत इन चार भेदों के साथ शृंगारी नायक के अनुकूल दक्षिण, शठ और धृष्ट भेदों का भी वर्णन किया गया है। यहाँ पति, उपपति के भेद करने के साथ ही साथ प्रोषित के प्रोषित उपपति एवं वैशिक प्रोषित ये दो उपभेद तथा नायक के सहायकों — पीठमर्द, विट, चेट, विदूषक का भी निरूपण किया गया है। तृतीय परिच्छेद में वात्स्यायन के काम सूत्र के अनुसार — स्वकीया, परकीया और सामान्या के ये तीन भेद किये गये हैं। यह परिच्छेद भरत के नाट्य शास्त्र एवं धनंजय के दशरूपक को आधार मान कर लिखा गया है।

नायिकाओं के स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए कवित्व पूर्ण ढंग से उदाहरण भी दिये गए हैं। स्वकीया प्रेम के वर्णन में कवि का मन रम गया है। अवस्था के अनुसार नायिकाओं के सात भेद — स्वाधीन पतिका, वासकसज्जा, उत्का, खंडिता कलहांतरिता, विप्रलब्धा एवं अभिसारिका किये गए हैं। इनके लक्षणों के निर्माण में कवि ने शृंगार तरंगिणी से पर्याप्त सहायता ली है।

चतुर्थ परिच्छेद के अन्तर्गत उद्दीपन विभाव में रम्यदेश, वापी, तड़ाग, नगर, महल, शैल, वन, (वसन्तादि षड्ऋतु) आदि का वर्णन किया गया है। इसमें बारहमासा को भी स्थान मिला है। पंचम परिच्छेद में अनुभावों का तथा षष्ठ परिछेद में संचारी भावों का निरूपण दशरूपक एवं साहित्य दर्पण के आधार पर किया गया है। अष्टम परिच्छेद में सभी रसों के लक्षण प्रस्तुत करने के पश्चात् नख शिख वर्णन मिलता है। कवि ने ग्रन्थ का अन्त आश्रयदाताओं की विरुदावली के साथ किया है।

<u>रस विलास की प्रामाणिकता:—</u>

आचार्य चिन्तामणि का रस विलास एक प्रामाणिक ग्रन्थ है क्योंकि परिच्छेदों के अन्त में दी गई पुष्पिका कवि के अन्य ग्रन्थों की पुष्पिकाओं से मिलती है। इसके अतिरिक्त कविकुल कल्पतरु और रस विलास के कई छन्द अ-
पद एवं वाक्यांश भी मिलते हैं।

<u>समान छन्द —</u>

उदाहरण में साम्य भाव:-

अंग सुकुमार अति सुन्दर सुदार बने
जैसे कुच भार चारु लंकु लचकत है

(रस विलास 3/20 कवि कुल कल्प
तरु- 6/98)

कालि जो जानियो सो करियो पिय आजु जो
बोलि हो तो उठि कै हो

(रस विलास 3/17)

जो कछु कीजियो सो कालिह करो पिय चाय
परो कछु आज करो जिन

(कवि कुल कल्प तरु 6/93)

इन समान छन्दों, समान पदों, वाक्यों, भावनाओं, उदाहरणों समान भाषा एवं शैली को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि रस-विलास का रचयिता कवि कुल कल्प तरु कार चिंतामणि ही थे ।

रस विलास का रचना काल :-

कवि ने इस ग्रन्थ के रचना काल का कोई उल्लेख नहीं किया है, हाँ आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में रचे गये कई छन्द मिलते हैं –

शाहजहाँ:-

शाह जहाँगीर जू साहि मनि साहि जहाँ ।
जासों जंग जोरि कंह कौन ठहरात है ।।
साहि जहाँ जू के हाथी अरिदल के प्रमाथी ।
गिरिन के साथी सोरु पारत अलक में ।।

दाराशिकोह :-

साहि जहाँ जू के नन्द दारा साहि चतुरंग ।
देन लागि कीतिये को धारा धर धार हैं ।।
तारे सम तारे मुकुताहल पचारे मानो ।
नव दारा साहि जू के वारे वारे चन्द ।।

हृदय शाह :—

हृदयशाह नरिन्द दानि हिरदै अनन्द भरो ।
कुन्दान मैं गरबी गयन्द झूमत हैं ।।
प्रेम साहि जू को नन्द महाराज इदै साहि ।
हिरो जग हारो वीर संगर को आकरो ।।

जैनदी मुहम्मद :—

जोरावर वीर बलि जैनदी मुहम्मद जू,
खैंचि के कमान गरबी सगाहरयो ।
लोचन हैं लाल लाल जैनदी मुहम्मद जूए
अब कहऊ कहा कहा खीहि खीहि लीजिए

जाफर खान :—

जीर किरवान कर नवाब जाफर खान[1]
कीन्हों धमासान अरि सैना क्यों चलति है

पूर्वोक्त विषयक अवतरणों को देखते हुए यह पता चलता है कि रस विलास की रचना, शाहजहाँ, दाराशिकोह, हृदय शाह, जाफर खान, जैनदी मुहम्मद के समय में हुई थी । शाहजहाँ का शासन काल सं० 1684 वि० से सं० 1714 वि० तक माना जाता है[2] और दाराशिकोह की मृत्यु सं० 1716 में हुई थी ।[3] प्रेम शाह के पुत्र हृदय शाह सं० 1735 में परलोक सिधारे ।[4] ऐतिहासिक तथ्य के अनुसार शाहजहाँ ने जाफर खान की नियुक्ति कश्मीर और काबुल के शासक

1: रस विलास - हस्तलिखित प्रति — अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर
2: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग 4 (सन् 1957 का संस्करण पृष्ठ 618)
3: दारा शिकोह - डा० कालिका रंजन कानूनगो (सन् 1958 का संस्करण पृ० 153
4: औरंगजेब — यदुनाथ सरकार - भाग 3 (सन् 1916 का अंग्रेजी संस्करण — पृष्ठ 76)

के पक्ष में भी थी और इनकी मृत्यु सं0 1717 वि0 में हुई थी ।[1] जैनदी मुहम्मद मनसबदार के पद पर सं0 1690 में नियुक्त हुआ था ।[2] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का रचना काल सं0 1651 से सं0 1714 वि0 के बीच ही ठहरता है । शाहजहाँ के दरबारी कवियों में चिन्तामणि का नाम आता है[3] किन्तु चिन्तामणि शाहजहाँ के दरबार में कब से कब तक रहे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता । ठोस प्रमाण के अभाव में यह कहना कठिन है कि इस विलास की रचना किस काल में हुई होगी किन्तु जैसा पिंगल का रचना काल निर्णय कर आये हैं उससे स्पष्ट है कि सं0 1714 में चिन्तामणि शाहजी भोंसला के दरबार में थे । अतः सं0 1691 और सं0 1714 के बीच रचनाकाल स्वीकार किया जाना चाहिए । गोरे लाल तिवारी के अनुसार सं0 1651 वि0 में शाहजहाँ ने उदय शाह की सहायता के लिए जुझार सिंह पर चढ़ाई की थी[4] और उसके बाद युद्ध की एक लम्बी परम्परा दिखाई देती है इसलिए इस ग्रन्थ की रचना सं0 1690 और संवत् 1691 के आस पास हुई तो कोई आश्चर्य नहीं । डा0 कृष्ण दिवाकर ने सं0 1690 का ही अनुमान किया है ।[5]

कृष्ण चरित्र का वर्ण्य विषय :-

कृष्ण चरित्र बारह सर्गों में विभक्त एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य है । इसकी रचना 758 छन्दों में हुई थी किन्तु कुछ पृष्ठों के नष्ट हो जाने से अब केवल 723 छन्द प्राप्त हैं । काव्य का वर्ण्य विषय कृष्ण का चरित्र है । ब्रज में निवास करते हुए भी कृष्ण ने जो लीलायें की हैं उन्हें इस ग्रन्थ में कवि ने अपनी रुचि के अनुसार संक्षेप या विस्तार से प्रस्तुत किया है । श्रीमद् भागवत, स्कन्द पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्म वैवर्त एवं हरिवंश पुराण से भी यथा रुचि सामग्री का संचयन किया है ।

1: मआसिर उल उमरा — हिन्दी अनुवाद — यदुनाथ सरकार पृष्ठ 334

2: मुगल दरबार — प्रथम संस्करण भाग 3 पृ0 344

3: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया भाग 4 पृ0 211

4: बुन्देल खण्ड का इतिहास लेखक गोरे लाल तिवारी संवत् 1990 का संस्करण पृ0 109

5: भोंसला राज दरबार के हिन्दी कवि — लेखक डा0 कृष्ण दिवाकर पृ0 56

ग्रन्थ का आरम्भ वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण से होता है । इसके अनन्तर कृष्ण का जन्म, वसुदेव का कृष्ण को गोकुल ले जाना और नवजात कन्या को मथुरा लाना, कन्या को पत्थर पर पटकने के लिए प्रस्तुत होना, आकाशवाणी द्वारा यह सूचना मिलना कि तेरा शत्रु सुरक्षित है, वसुदेव और देवकी का कारागार से मुक्त होना, पूतना के स्तन का पान करना आदि कथाओं का संक्षिप्त वर्णन है ।

द्वितीय सर्ग का आरम्भ कृष्ण के बाल सौन्दर्य, बाल लीला और वात्सल्य निरूपण से होता है, मिट्टी खाने की शिकायत करना, मुँह खोलकर दिखाते समय समस्त ब्रह्माण्ड का दिखाई देना, माखन चुराते समय रज्जु से बाँधना, राक्षसों का संहार करना आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

तृतीय सर्ग में ब्रह्मा कृत कृष्ण के स्तुति का भागवत के आधार पर कृष्ण सौन्दर्य का वर्णन मिलता है । 47 छन्दों में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का प्रतिपादन तथा कृष्ण की महिमा का भाव पूर्ण उल्लेख है । ब्रह्मा ने कृष्ण के ईश्वरत्व का उल्लेख किया है और अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी है ।

चतुर्थ सर्ग में धेनुक वध की कथा है । चारु बालक कृष्ण का गोप और गोपिकाओं के साथ लीला करना, गोचारण के समय असुरों का संहार करना, सौन्दर्य मुग्ध होकर गोपियों का कृष्ण पर अनुरक्त होना तथा मुरली की मधुर ध्वनि के विस्तृत वर्णन के साथ समाप्त कर दिया जाता है ।

पंचम सर्ग में काली-मर्दन की कथा है । बलराम का गोपों के साथ गायें चराने जाना, विषैले जल पीने के कारण सभी गोपों का निष्प्राण होना, कृष्ण की अमृत वर्षिणी दृष्टि से सभी का जी जाना, कृष्ण का कालीदह में कूदकर कालिय नाग को नाथना, बलराम द्वारा प्रलम्बासुर का वध करना, वन में आग लगने पर आग को पी जाना तथा गोवर्धन धारण आदि की कथाओं का वर्णन किया गया है ।

छठें सर्ग में चीर हरण, राधा कृष्ण की अनुरक्ति, कृष्ण द्वारा गायें चराना तथा कृष्ण की भक्ति के साथ समाप्त कर दिया जाता है ।

अष्टम सर्ग में गोवर्धनोद्धारण की कथा है । इन्द्र के प्रकोप से ब्रज वासियों के हेतु गोवर्धन को कृष्ण द्वारा अंगुली पर उठाने जाने का विस्तृत विवेचन है । इसी स्थल पर कवि ने यशोदा की ममता एवं वात्सल्य से युक्त सहज भावनाओं

अष्टम सर्ग का प्रारम्भ राधा की जन्म कथा से होता है । राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन कवि ने रुचि लेकर किया है ।

नवम सर्ग का आरम्भ वसन्त पंचमी के दिन राधा के यमुना स्नान के प्रस्थान से होता है । राधा और कृष्ण ने वसन्त पंचमी के दिन रसाल पुंज के नीचे वन विहार किया । राधा और कृष्ण के बीच प्रेमालाप के वर्णन के साथ समाप्त कर दिया गया है ।

दशम सर्ग का आरम्भ वसन्त पंचमी की प्रथम निकुंज लीला के उपरान्त कृष्ण के वियोग से पीड़ित राधा की विरह व्यथा से होता है । किन्तु बाद में मिलनोपरान्त राधा और कृष्ण की विलास क्रीड़ाओं का खुल कर वर्णन इसी सर्ग में किया गया है ।

एकादश सर्ग में अभिसार एवं राधा माधव विहार का वर्णन है । विहार में सुरति का भी चित्रांकन किया गया है ।

द्वादश सर्ग में रतिश्रान्ता गोपिकाओं के रूप का वर्णन है । राधा और कृष्ण के अतिरिक्त अन्य गोपिकाओं के रमण के भी वर्णन मिलते हैं । कृष्ण की भक्ति के वर्णन के साथ सर्ग का अन्त कर दिया गया है ।

<u>कृष्ण चरित्र की प्रामाणिकता :-</u>

प्रस्तुत ग्रन्थ का उल्लेख कवि ने अपने किसी भी ग्रन्थ में नहीं किया है । इतिहासकारों ने भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं किया है । अन्य ग्रन्थों की भांति इसके भी कुछ छन्द कवि कुल कल्प तरु में मिलते हैं । उदाहरण स्वरूप कुछ छन्द नीचे दिये जा रहे हैं -

उमड़ि घुमड़ि घन अम्बर अडम्बर के,
कहा लगि घुमि घन घोर घटा घिरि है
चिंतामनि कहै चित चिन्ता लागि कोऊ की
कहाँ लौ बिचारो कौ बिचारो चन्द घिरि है ।
एक ही कहा है कोटि धराधर धरे रहौं,
ज्योंही कोटि विधि की उपाति फिरि फिरि है ।
गह जानि जानौ भारी परिमान गिरि है,

उघरि घुमरि अम्बर अम्बर सौं,
कहँ लग पूरी घन घटा घीर घिरि कै ।
चिंतामनि कहै चित चिंता जिनि करो कोऊ,
कहां लौ बिचारो धौं बिचारो इन्द्र, चिरि कै ।
एक ही कहा है कोटि धराधर धरे रहौ,
जौं लौं कोटि बिधि की उपज फिरि फिरि है ।
जानों जान बड़े परमान भारी गिरि है,
सो मेरे कर पर परमान है न गिरि है ।
(कवि कुल कल्प तरु 6/34)

श्री राधा के अंग स्वेद ज्यों स्वेद वासु,
गुलाब के फूल स्वेद सोरभनि सौं भिरी ।
चितहि चोरावत कोकिल कलबानो लगी,
कानन बिलोम प्रेम मद की मनौं चिरी ।
चिन्तामनि सो ही रसाल मोरे कुंजन मिलि,
आलिन मुंजन सो ही मनो मुनिया फिरी ।
बालपन बीच लरिकाई आई सिसिर मैं,
माघ सुदी पंचमी मैं ज्यौं बसंत की सिरी ।
(कृष्ण चरित्र 9/1)

राधा जू के संग स्वेद त्यौं स्वेद वासु,
गुलाबन के रंग स्वेद सोरभनि सौं भिरी ।
चितहि चुरावति कु कोकिल किलानी लगी,
कानन बिलोमि प्रेम मद की मनो चिरी ।
चिन्तामनि मोहो है रसाल मोरे कुंजनि मैं,
आलिन के पुंजन सुमानो मुनि आधिरी ।
बालन के बीच तरुनाई आई सिसिर मै,
माघ सुदी पंचमी मै ज्यौं बसन्त की सिरी ।
(कवि कुल कल्प तरु 6/80)

सांवरो सलोनो नित बढ़ी अभिलाष कोनु,
डोल आमरनु आज जमुना के तीर को ।

चिन्तामणि का वैयक्तिक जीवन में उदार वैष्णव होना प्रायः निश्चित सा प्रतीत होता है ।

अपनी कवि कर्म की सफलता के लिए चिंतामणि ने सगुण भक्ति की दोनों शाखाओं (राम भक्ति और कृष्ण भक्ति) में समान रूप से रचना करने का प्रयास किया । जिस प्रकार तुलसी ने राम की कथा लिखी और उसके बाद चिंतामणि के पूर्ववर्ती केशव ने रामचन्द्रिका की रचना की उसी तरह उन्होंने रामायण की रचना की होगी ।

रामायण अब सर्वथा अप्राप्त है अतः उसके काल के सम्बन्ध में कुछ भी कहना कठिन है । केवल शिव सिंह सरोज में दो छन्द उपलब्ध हैं जो निम्नांकित हैं –

जाके हेत जोगी जोग जुगुति अनेक करैं ।
जाकी महिमा न मन बचन के पथ की ।।
औरन की महा जाहि हेरि हर हारे जाहि ।
जानिबे को कहा विधि हू की बुधि मथकी ।।
ताहि ले खेलावै गोद अवध नरेश नारी ।
अवधि कहा है ताके आनद अकथ की ।।
जाके माया गुनन भुलाये सब जग ताहि ।
पलना में ललना झुलावे दसरथ की ।।

हंस के छौना स्वच्छ सोहित बिछौना बीच
होत गति मोतिन की जोति जोन्ह जामिनी
रूप केसी ताम सीता पूरन सुहाग भरी
चली जब मास ते मराल मन्द गामिनी
जोई इरबसी ओई मूरति प्रतच्छ लसी
चिंतामनि देखि हँसी संकर की भामिनी
मानो सर्व चन्द्र चन्द मध्य अरबिन्द
अरबिन्द मध्य बिदम बिदारी कढ़ी दामिनी[2]

1: तजकिरह-ए-सर्व आजाद – मीर गुलाम अली बिलग्रामी : प्रकाशन मुदवा मफीदे आम आगरा सन् 1296 हिजरी पृष्ठ 13, 14

2: शिव सिंह सरोज – सम्पादक डा॰ किशोरी लाल गुप्त – 158

राम कथा सम्बन्धी कुछ छन्द कवि कुल कल्प तरु में भी मिलते हैं आश्चर्य नहीं कि वे रामायण के ही छन्द हों। इतना होते हुए भी रामायण के विषय में तो अधिक कुछ कहना सम्भव नहीं कृष्ण चरित्र काल का निर्णय अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। जहाँ तक कृष्ण चरित्र का संबंध है प्रधान रूप से श्रीमद् भागवत के दशम स्कन्ध का अनुवाद है। साथ ही ब्रह्मवैवर्त और हरिवंश पुराण से भी सामग्री ली गई है। कवि की रागानुगा भक्ति ने माधुर्योपासना की दृष्टि से राधा के प्रसंग को भी पूर्ण अवकाश दिया है तथा राधा माधव के गान्धर्व विवाह एवं विलास लीला का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। डा० सत्य कुमार चन्देल ने दो उपकल्पनाएँ की हैं — पहली यह कि कृष्ण चरित्र की रचना पहले ही हो चुकी थी और बाद में कवि कुल कल्प तरु लिखते समय चिन्तामणि ने यथा स्थान उसके उदाहरणों का उपयोग कर लिया। दूसरी यह कि प्रासंगिक उदाहरणों के निर्माण के ब्याज से जब राधा कृष्ण विषयक अनेक छन्द बनाये गये तो कवि ने सोचा कि क्यों न इन छन्दों को प्रासंगिकता से जोड़ कर एक चरित्र काव्य लिख दिया जाय।[1] जो हो इन दोनों विकल्पों में से पहले विकल्प को ही स्वीकार कर लेने में कोई औचित्य नहीं दिखाई पड़ता। यही तर्क रामायण के संबंध में भी दिया जा सकता है किन्तु कवि कुल कल्प तरु में प्राप्त लगभग 40 छन्दों यह सिद्ध करते हैं कि रामायण की रचना भी कवि कुल कल्प तरु से पूर्व हुई होगी।

<u>ग्रन्थों के आंशिक उपलब्ध छन्द :-</u>

<u>कवित्त विचार :-</u>

चिन्तामणि का यह ग्रन्थ खण्डित रूप में प्राप्त हुआ है। इसमें साहित्य के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ के 57 पन्ने हैं। प्रत्येक पृष्ठ प 56 पंक्तियाँ हैं पन्ने 9" लम्बे तथा 6" चौड़े हैं।

---

1. चिन्तामणि और उनका काव्य — डा० सत्य कुमार चन्देल — पृष्ठ 83

इसमें निम्नलिखित विषयों का वर्णन मिलता है :—

गणपति वन्दना, कविता लक्षण, गुणवर्णन, शब्दालंकार, अर्थालंकार, कविता दोष विचार शब्द शक्ति, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव, नख शिख नायिका भेद अष्टम परिच्छेद में विभाव नव में अनुभाव दशम में विरह की दस अवस्थाओं का वर्णन है ।[1] खोज रिपोर्ट में इनके उद्धृत अंश निम्न से हैं[2]

श्री गणेशायनमः

पूजोंगी आई के गणाधिप जीवन पति,

गौरी के चरन चारू सिर पर धरि हौं ।

सत कविता के जे हैं सत कविता के मग,

इसि के प्रसाद एक हू तो पूरो परि हौं ।

'चिन्तामणि' चिन्तामणि काम तरू काम धेनु,

कृपा जिनकी है तातें सब पग धरिहौ ।

इरदी सुमति सिख सूनो दै समन सो कही,

नीके सबै रीचन के सकल काज करि हौं ।

दोहा

चिति यत निज भगति को ताही यत में देत ।

मनु सुख आदिहि यत के निज बरनन सजि लेत ।।

अन्त —

कैसे मिलिये पिय जने क्यों का कौन बनाइ ।

याहि विधि क्रिया बरनिये सब कवि जनन सुनाइ ।

क्यों निरखे मृग लोचनी, क्यों बोले सुकुमार ।

यों लोचन निस दृगनि हरि बोलत लोचन वारि ।।

लसत सुधा सी तब लखी अब आरति क्यो आनि ।

छिपी बिलासिन की गई, वह सुंदर के मुसकानि ।।

1: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई लेखक डा० किशोरी लाल गुप्त

2: खोज रिपोर्ट - 1920-21 नागरी प्रचारिणी सभा काशी

3: डा० सत्य कुमार चन्देल कृत चिन्तामणि और उनका काव्य पृ० 107

कवित्त विचार का रचना काल :-

मुंशी करम-कमर्द आजाद के अनुसार जब दीवान रहमतुल्ला ने चिन्तामणि को 'खिलत' और 'इनाम' से सम्मानित किया तो उन्होंने रहमतुल्ला की प्रशंसा में झूलना छन्द के वजन पर एक कवित्त विचार नामी किताब उक्त ग्रन्थ के अनुसार "यह कवित्त विचार नामी किताब में सुल्तान जैनुद्दीन मुहम्मद बिन शाह शुजा की तारीफ कवित्त के बाद लिखा हुआ है"।

हम पहले कह आये हैं कि जिस समय चिंतामणि रहमतुल्ला के दरबार में आए उसके बहुत पहले यह ग्रन्थ उनकी प्रतिष्ठा का साधन बना गया था। लोग इस ग्रन्थ की रचनाओं को कंठस्थ करने लगे थे।

शाहजहाँ के आश्रय में रहते हुए इन्होंने उनके पुत्र शाहशुजा और शाहशुजा के पुत्र जैनुद्दीन मुहम्मद से भरपूर धन और सम्मान प्राप्त किया था। अतः निर्विवाद कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ की रचना शाहजहाँ के शासन के उत्तर में और शाहशुजा (पुत्र शाहजहाँ) तथा सुल्तान जैनुद्दीन मुहम्मद पुत्र शाहशुजा की मृत्यु से पहले अवश्य हो गयी थी। तारीखे मुहम्मदी[1] के अनुसार रमजान हिजरी सन् 1070 में शाहशुजा और जैनुद्दीन दोनों मारे गये। यह समय संवत् 1717 का है। ऐसे राज्य विप्लव के समय किसी प्रकार के साहित्य निर्माण का प्रश्न नहीं उठता। सन् 1649 (संवत 1706) में शाहजहाँ के हाथ कंधार निकल गया हमारा अनुमान है कि उसी के आगे पीछे अर्थात् सं0 1700 से 1705 के बीच कवित्त विचार की रचना हुई होगी।

डा0 कृष्ण दिवाकर ने कवित्त विचार का रचना काल सन् 1650 के आस-पास माना है। कवीन्द्राचार्य सरस्वती के कवीन्द्र चन्द्रिका इस अभिनन्दन ग्रन्थ में तत्कालीन श्रेष्ठ तथा दिग्गज पंडितों में चिन्तामणि की गणना थी।[2] कवीन्द्र चन्द्रिका भी सन् 1650 के आस-पास की रचना है इससे भी हमारा अनुमान पुष्ट होता है और संवत् 1700 के आस-पास रचना सिद्ध करने में साक्ष्य मिलता है।

डा0 सत्य कुमार चन्देल ने लिखा है कि "छन्द विचार की रचना के बाद ही चिन्तामणि के मन में इसी टक्कर का कवित्त विचार लिखने का विचार

टिप्पणियाँ अगले पृष्ठ पर देखें

उत्पन्न हुआ होगा और इसी के फलस्वरूप उन्होंने संवत् 1716-18 के आस-पास इस ग्रन्थ को समाप्त किया होगा[3] किन्तु यह उनका शुद्ध काल्पनिक निर्णय है। नजीकरूप-सर्व आधार का आधार न मिलने के कारण ही इस प्रकार की भ्रान्त कल्पना की गई है।

अतः कवित्त विचार का रचना काल विक्रम संवत् की 18वीं शताब्दी का प्रथम दशक ही स्वीकार किया जाना चाहिए और जैसा कि हम लिख कर आये हैं उसके अनुसार यह रचना छन्द विचार से पहले की है।

काव्य विवेक :-

यह ग्रन्थ शिव सिंह सेंगर के पास था। खोज में अन्यत्र कहीं इसकी प्रतिलिपि नहीं मिलती। श्री शिव सिंह सेंगर जी ने केवल चार छन्द शिव सिंह सरोज में दिये हैं -

इक आजु मैं कुन्दन बेलि लखी मन मन्दिर की सुधि वृन्द भरैं।
कुरविन्द के पल्लव इन्दु तहाँ अरविन्दन ते मकरन्द भरैं।
उन वुन्दन ते मुक्तायन है फल सुन्दर द्वै पर आनि परैं।
लखि यौं करना द्युति वन्द कला नव नंद मिलाइव रूप धरैं।[4]

1: हस्तलिखित ग्रंथ (फारसी) रजा स्टेट पुस्तकालय, रामपुर

2: नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष 47 अंक तीन 3-4 कार्तिक - माघ सं० 1999 पृ० 271

3: चिन्तामणि और उनका काव्य - डा० सत्यकुमार चन्देल पृष्ठ 107

4: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई - डा० किशोरी लाल गुप्त - पृष्ठ 92-94

चिन्तामनि कच कुच भार लंक लंक लचकति ।
सोहै तन तनक तनक छवि बान की ।।
चपल विलास मद आलस बलित नैन ।
ललित बिलोकनि ललनि मृदु बान की ।।
नाक मुक्ताफल अधर रंग संग लीन्हीं ।
रुचि संध्याराग नखतन के प्रमान की ।।
बदन कमल पर झाँल ज्यों झलक लोल ।
अमल कपोलन झलक मुसकान कान की ।।

(3)

सूधी चितौनी चितै न सकै, औ सकै न तिरीछी चितौनी चितै ।
गुड़ियान की खेलिबो फीको लगै अरु काम कला को विलास हितै ।।
लरिकापन जोवन सन्धि मई दुहूँ बैस को भाव मिलै न हितै ।
छवि चुम्बक बीच को लोहो भयो मन, जाइ सकै न इतै न उतै ।।
राति रहे 'मनि लाल' कहूँ रसि, ज्यों दुख बाल वियोग लहे हैं ।
आये घरै अरुनोदय होत सरोमनिता छाँम बैन कहे हैं ।।
लाल भये दृग कोरन आनि कै यों असुवा नव बूँद रहे हैं ।
सोवन चाहि मनों सिथिलै छवि खंजन दाड़िम बीच गहे हैं ।।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से देखा जाय तो काव्य विवेक चिन्तामणि की रचना ठहरती है । काव्य में विवेक के दो छन्द कवि कुल कल्प तरु में मिलते हैं इन छन्दों की समानता से यह प्रमाणिक हो जाता है कि काव्य विवेक निश्चय चिन्तामणि की ही रचना है ।

काव्य प्रकाश :--

शिव सिंह सेंगर ने जिन पाँच ग्रन्थों का अपने पुस्तकालय में होने का उल्लेख किया है उनमें से एक काव्य प्रकाश भी है परन्तु ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने शिव सिंह सरोज में कोई भी छन्द उदाहरण के रूप में नहीं प्रस्तुत किया है । यह ग्रन्थ खोज में नहीं मिला है । ग्रन्थ के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि चिन्तामणि ने मम्मट कृत काव्य प्रकाश का हिन्दी रूपान्तर किया होगा । सामग्री के अभाव में इस सम्बन्ध में कहना कठिन प्रतीत है ।

1: क० क० त० 1/21   2: क० क० त० 1/25

चिन्तामणि के संदिग्ध ग्रन्थ :-

चिन्तामणि के नाम से रामाश्वमेध, कर्म विपाक, बारह खड़ी तथा छबैतीसी ये चार ग्रन्थ बतलाये जाते हैं किन्तु आलोचकों ने इन चारों ग्रन्थों को आलोच्य चिंतामणि त्रिपाठी की रचना नहीं माना है। इन उपर्युक्त ग्रन्थों पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर संक्षिप्त परिचर्चा प्रस्तुत है।

रामाश्वमेध ,-

प्रस्तुत ग्रन्थ की एक खंडित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा के याज्ञिक संग्रहालय में देखने को मिली। इस ग्रन्थ के केवल 5 पत्रक (3 से 7तक ही उपलब्ध हुए हैं। उपलब्ध अंश का आरम्भ इस प्रकार है -

सै वीर परिवारा
मन बच क्रम नृप आदर करहीं
अन्न सम घर पूर सुफिरहीं
लरै घने ते सिंह न साथा
गजन संग ते भिरे सुगाथा

आश्रय दाता की चर्चा में पहाड़ सिंह का उल्लेख इस प्रकार है -

पहार सिंह रवसून को दीनो राज बनाइ
आप हुकुम रति हुइ सदा करे राज सुख पाइ
सिंह पहार सुनाम महाराज मोडे अधिक काम रुप
छविधाम गुननि धान और भवित जो

× × ×

पहार सिंह नर नाथ चिंतामणि सों अस कहय
करो राम गुन गाथ भाषा मैं हय मेध की।

अन्त के साढ़े तीन दोहों में कवि ने अपने वंश का वर्णन इस प्रकार किया है -

ख्यात त्रिपाठी कश्यपी नाम मनेस सुनाम।
रहै मनोहा वास ते विद्या जुत तप धाम ।।71।।
तिनके सेना राम हुव जिहि की सुत समवन्त।
महा करन तीहि के भये विद्यागुन बलवन्त ।।72।।

के सुव राम सुता सुत ताके राम दयाल ।
हरी राम ताके भयो नीकम जाको वास ।।73।।
नीकम कौ सुत सुभ भयो गंगा राम सुनाम रहै[1]।

इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय यह है कि कवि के जीवन वृत्त एवं वंश आदि पर प्रकाश पड़ते पड़ते रह गया है । इस ग्रन्थ की उपलब्ध सामग्री को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसका रचयिता निश्चय ही एक समर्थ कवि था । उपलब्ध थोड़े से ही अंश में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग इस बात का साक्षी है कि इसका रचयिता केशव दास की रामचन्द्रिका के समान एक श्रेष्ठ ग्रन्थ की रचना करना चाहता था जैसा नाम से स्पष्ट है । ग्रन्थ का वर्ण्य विषय सम्भवतः उत्तर राम चरित से प्रभावित रहा होगा किन्तु रामाश्वमेध के रचयिता चिन्तामणि हमारे आलोच्य चिंतामणि हैं या दूसरे परवर्ती अन्य कवि इस सम्बन्ध में कोई निभ्रान्ति निर्णय देना कठिन है ।

जहाँ तक आश्रयदाता का प्रश्न है बुन्देलखण्ड के इतिहास में जिस पहाड़ सिंह की चर्चा है उनका किशोर से कोई संबन्ध नहीं है और किशोर के पहाड़सिंह के संबन्ध में डा० सत्य कुमार चन्देल ने शोध करके बताया कि ये चिन्तामणि के बहुत बाद सं०1875 के आस पास थे । स्पष्ट है कि ये चिन्तामणि के सम-सामयिक किसी स्थिति में नहीं हो सकते । अतः रामाश्वमेध को प्रसिद्ध चिन्तामणि की कृति नहीं माना जा सकता ।

एक बात विचारणीय है कि डा० चन्देल के अनुसार किशोर में हमीर नृप का बनवाया हुआ किला आज भी खंडहर के रूप में विद्यमान है[4]।स्मरणीय है कि यह हमीर नृप वही हैं जिन्होने तिकवाँपुर में चिन्तामणि के सभी भाइयों को सम्मान पूर्वक बसाया था हो सकता है कि उस समय नृप हमीर के वंशधर

1: रामाश्वमेध - हस्तलिखित काशी नागरी प्रचारिणी सभा

2: वही

3: बुन्देल खंड का इतिहास - गोरे लाल - पृष्ठ 109

4: चिन्तामणि और उनका काव्य - डा० सत्य कुमार चन्देल पृष्ठ 53

संबन्धी या निकटतम मित्र के रूप में कोई पहाड़सिंह रहे हों और उनके आश्रय में आलोच्य चिन्तामणि ने ही इस ग्रन्थ की रचना की हो किन्तु इतिहास के ठोस प्रमाण के अभाव में कुछ भी कहते नहीं बनता ।

अतः इसे एक सन्दिग्ध रचना मान कर छोड़ देना चाहते हैं ।

कर्म विपाक :—

कर्म विपाक गरुड़ पुराण का हिन्दी रूपान्तर है । इसके रचना काल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है । इसमें काव्य सौन्दर्य के लिए कोई अवकाश ही नहीं है । इसकी भाषा अवधी मिश्रित ब्रज भाषा है जो रामाश्वमेध से मिलती जुलती है । निश्चित प्रमाण के अभाव में इस ग्रन्थ को किसी अन्य कवि की रचना घोषित कर दि या गया है । खोज रिपोर्ट में भी इसे किसी परवर्ती चिंतामणि की कृति माना गया है । निश्चित आधार पर के अभाव में इ की अप्रामाणिकता को स्वीकार करना ही पड़ता है नमूने के तौर पर ग्रन्थ की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

कर्मनकीगति कठिन मुनीसा, सो हम सन कहिये मब ईसा
भूसुर सात्विक सुरपुरवासी, कर्मन पायो तनु अनु जासी
जैसे कर्म जौन गति होइ, हम सो कहिये सो निकमाई
जाते हमहू कर्म न जाने, कहिये आपनु धन्य करि माने
मौनिक कहा सुनो नर नाथा, कर्मन की सब कह्यो सुगाथा
धन्य धन्य रघुवर के भाई, परकें काव कछु असआई
× × ×
काटे कीट सुदेह तह चाटे चटक बनाइ ।
अवर आने रुधिर के बायस चोच न खाइ ।।[1]

1: कर्म विपाक हस्त लिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा

बारह खड़ी और चौतीसी :-

दोनों ग्रन्थों की पुष्पिकाओं में चिन्तामणि नाम का प्रयोग हुआ है चौतीसी के अन्त में जो पुष्पिका दी गई है वह इस प्रकार है "इति श्री चौतीसी संपूरन समापता सावन सुदी एकादशी को संवत 1847 पोथी लाल मनियार सिंह की" इसके आधार पर डा0 चन्देल ने कहा है कि इनका रचयिता चिंतामणि उपनाम धारी लाल मनियार सिंह हैं और चूंकि ~~हे~~ चिन्तामणि का रचना काल सं0 1693 से 1740 तक है और उनके 100 वर्ष बाद की यह रचना है इसलिये यह ~~आलोच्य~~ आलोच्य चिंतामणि की यह रचना नहीं है[1] यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि पुष्पिका को देखते हुए लाल मनियार सिंह पुस्तक के स्वामी प्रतीत होते हैं रचयिता नहीं और इसलिये इसमें दिया हुआ काल सं0 1847 रचना काल है या लिपि काल यह भी सन्देहास्पद हो जाता है बारह खड़ी और चौतीसी दोनों लगभग एक ही ग्रन्थ हैं । बारह खड़ी चौतीसी का एक संशोधित रूप है तुलना की दृष्टि से कुछ पंक्तियाँ निम्नांकित हैं -

कमल नयन कहु काल मधुपुरी न जाय
अपनो कर बैठारिये चरन कमल की छाय
कमल नयन कहु कहत ते काल मधुपुरी जान
नन्द नवल बृज राज बिनु क्यों करि रखो प्रान

(बारह खड़ी)

खरी खरी बिलखत रही नन्द राय दरबार ।
छियरी फटै है सखी बिछुरत नन्द कुमार ।।
घरी घरी बिलखत फिरै नन्द महर दरबार ।
छियो न फट्यो है सखी बिछुरत नन्द कुमार ।।

)चौतीसी)

अतः इन दोनों ग्रन्थों का रचयिता भी अनिश्चित रह जाता है और इसे एक संदिग्ध ग्रन्थ की कोटि में रखना पड़ता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त चारों ग्रन्थों के संबन्ध में अब भी प्रामाणिकता अप्रामाणिकता का निर्णय सन्देहास्पद स्थिति में है यद्यपि इन ग्रन्थों की

अप्रामाणिक मानकर भी हमारे आलोच्य कवि की महिमा में कोई अन्तर नहीं पड़ता जब तक सुनिश्चित प्रमाणों के द्वारा इसे चिन्तामणि त्रिपाठी की रचना सिद्ध कर देना सम्भव नहीं हो पाता तब तक हम भी परम्परानुसार इन्हें अप्रामाणिक मानने के लिये बाध्य हैं ।

आश्रय दाता :-

वीर गाथा काल की चारणी परम्परा की घनघोर प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भक्ति काल के कवियों ने केवल प्रभु का आश्रय लिया था । संसार के प्राकृत मनुष्यों की प्रशस्तियाँ करके वे अपनी सरस्वती को कलंकित नहीं करना चाहते थे,[1] क्योंकि वे दूसरों का भरोसा करने वालों को हेय दृष्टि से देखते थे[2] और इसीलिए आश्रय दाताओं के प्रति उपेक्षा, घृणा एवं वितृष्णा का भाव रखते थे[3] किन्तु जो लोग आध्यात्मिक भाव भूमि में संचरण करने वाले नहीं थे और जिनका कवि कर्म सारस्वत साधना के साथ साथ जीविका का भी साधन था उनका आश्रयदाताओं की प्रशस्तियाँ लिखना और उनके आश्रय में रहकर उनकी रुचि के अनुकूल अकाव्य-रचना द्वारा उन्हें प्रसन्न करना अभीष्ठ था ।

आचार्य चिन्तामणि रीतिकालीन उन गिने चुने कवियों में से हैं जिन्हें बड़े से बड़े बादशाहों और रजवाड़ों से लेकर सामन्तों, दीवानों, मनसबदारों तक का स्नेह और संरक्षण प्राप्त था । उन्होंने अपने ("रस विलास" ग्रन्थ में अनेक आश्रयदाताओं की प्रशस्तियाँ की हैं जिनमें उनके दान और पराक्रम का सशक्त एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है । उक्त ग्रन्थ में शाहजहाँ, दाराशिकोह,

---

1: कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना
सिर धुनि गिरा लगति पछिताना
— राम चरित मानस — बालकांड

2: भरोसो जाहि और को सो करौ - विनय पत्रिका

3: सन्तन को कहा सीकरी सो काम
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम
जिनको मुख देखे दुख लागत
तिनको करिबे परयो सलाम

हृदय शाह, जाफर खान एवं जैनदी मुहम्मद इन पाँच व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है । सर्वप्रथम शाहजहाँ की चर्चा प्रस्तुत है ।

वोलजले हेग के अनुसार शाहजहाँ का शासन काल सं० 1684 वि० से 1714 वि० तक रहा है ।[1] इतिहासकार वोलजले हेग ने शाहजहाँ के दरबारी कवियों में चिन्तामणि का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु इस बात का कोई संकेत नहीं दिया है कि शाहजहाँ के आश्रय में चिंतामणि कब से कब तक विद्यमान रहे । शाहजहाँ का शासन काल कला और संस्कृति की दृष्टि से उत्कर्ष का युग रहा है । शाहजहाँ ने कवियों और कलाकारों को इतना धन और सम्मान प्रदान किया था कि पंडित राज जगन्नाथ को यह कहने में संकोच नहीं हुआ कि मेरे मनोरथ को पूर्ण करने में या तो दिल्लीश्वर समर्थ हैं या जगदीश्वर इसके राजाओं का दिया हुआ धान साग या नमक मात्र के लिए ही सकता है ।[2]

अतः शाहजहाँ के आश्रय में कुछ काल तक निवास करना और 'रसविलास' की उपक्रमणिका में शाहजहाँ की प्रशस्ति लिखना उचित ही प्रतीत होता है । इनकी प्रशस्ति में कहे गये छन्द इस प्रकार हैं :—

शाहजहाँ —

साहि जहाँगीर जू के साहिमनि साहिजहाँ ।
जीतौं जंग जारि कहँ कौन ठहरात है ।।
झंडनि के झंडा नभ गंग भकझोरि अति ।
जाके दल चले डोल पुहमी ज्यौं अकात है ।।
चिन्तामनि भारी धूरि धारनि के मते धारा -
धर धूरि है के चले अम्बर उड़ात है ।।
अरिनि की आब ताब नसति सिताब तेज ।
मरये गनीम गर जब है जात है ।।

× × ×

1: कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया — सन् 1957 पृष्ठ 618

2: दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः
अन्यैर्नृपालैः परिदीयमानं शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात् । (पंडितराज जगन्नाथ)

साहि जहाँ जू के हाथी अरिदल के प्रमाथी ।
गिरिनि के साथी सोरू पारत अकलक में ।।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में शाहजहाँ के सैन्य बल शक्ति एवं दानशीलता का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन निश्चय ही कवि की कृतज्ञता को साबित करता है ।

दाराशिकोह :–

शाहजहाँ का शासन काल सं0 1714 वि0 में समाप्त हो गया । तदनन्तर उनका पुत्र दाराशिकोह उत्तराधिकार के लिए पारस्परिक संघर्ष में सं 1716 वि0 दिवंगत हो गया ।[2] अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि चिन्तामणि शाहजहाँ के दरबार में रहते हु उनके पुत्र दाराशिकोह से अत्यन्त प्रभावित हुए थे और दाराशिकोह ने भी चिन्तामणि को पर्याप्त दान और सम्मान दिया था । इसीलिए केवल डेढ़-दो वर्षों तक उत्तराधिकार के लिए संघर्ष करने वाले दाराशिकोह में कवि को वीरता, साहस, सामर्थ्य और गुणों का समूह दिखाई पड़ता है । वे लाखों का दान कर सकते हैं और लोगों की रक्षा में भी निपुण हैं कवि की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

दोऊ दर जुरे हुते चिंतामनि उमत है ।
जुद्ध भयो जानियें महा नभ कत है ।।
हनी दारा शाहि सिकरि चतुरंग चमू ।
चढ़ले ज्यौं चंचल तुरंग चमकत है ।।
× × ×
जग के मंडन प्रबल दल खण्डन ।
विपक्ष के बिहंडन प्रचंड तेज दखिए ।।

1: रस विलास, 8/22,23

2: एन एडवांस हिस्ट्री आफ इण्डिया – आर0सी0 मजुमदार पृष्ठ 109

साहस कैं सागर नरिन्द नौल नागर ।
समत्थ गुन आगर उजागर जे लेखिए ।।
चिंतामनि सुन्दर सुकृत सिद्ध मन्दिर ।
भयो पुहमी पुरन्दर प्रबल पूरे पेखिए ।।[1]

जाफरखान :—

इतिहास प्रमाणित करता है कि शाहजहाँ ने जाफरखान को कश्मीर और काबुल के शासक के रूप में नियुक्त किया था जिसकी मृत्यु सं0 1717 में हुई थी। जाफरखान एक प्रसिद्ध वीर और पराक्रमी पुरुष था। उसे शाहजहाँ के दरबार का एक सम्मानित व्यक्ति देखकर चिंतामणि ने भी उसके भी पराक्रम और वीरता का वर्णन किया है —

कीर किरवान कर नवाब जाफर खान
कीन्हों घमासान अरिसेना क्यों बचति है
ऐसो को आलिम वीर महान जो जाफर खान सों जंग जुरै
जाफर खान नवाब कसो खग गहि रनमग[2]

जैनदी मुहम्मद :—

शाहजहाँ ने सं0 1690 वि0 में जैनदी मुहम्मद को मनसबदार के पद पर नियुक्त किया था और इसीलिए चिंतामणि ने भी उसकी प्रशस्ति में कुछ कवितायें लिखीं —

जोरावर वीरबलि जैनदी मुहम्मद जू
खैंचि के कमान सरसी समाहरयो
लोचन है लाल जैनदी मुहम्मद जू
अब कहौ कहा खींचि खींचि लीजिए ।[3]

1: रस विलास : चिन्तामणि कृत ।

2: वही

3: वही

हृदयशाह :-

महाराज प्रेम शाह के पुत्र हृदय शाह के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है । बुन्देलखण्ड के विषय में अधिक कुछ इतिहास में केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि सं. 1691 वि0 में शाहजहाँ ने हृदयशाह की सहायता के लिए पहाड़ सिंह पर चढ़ाई की थी अतः स्पष्ट है कि हृदयशाह शाहजहाँ के दरबारी एवं प्रेम पात्र थे । हृदयशाह की प्रशंसा में चिंतामणि की उक्ति उनकी वीरता से ही प्रभावित रही है । कवि की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

हिरदै नरिन्द दानि हिरदै अनन्द भरो
बुंदनि में गरबी गयंद बकसत है
प्रेमसाहि जू के नंद महाराजा हृदै साहि
भिरो अगहारी वीर संगर को अकरो

अपर जिन पाँच आश्रयदाताओं की चर्चा रस विलास के आधार पर की गई है उस संबन्ध में प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की धारणा है कि चिंतामणि वास्तव में केवल शाहजहाँ के दरबारी एवं आश्रित कवि थे शेष चार शाहजहाँ के ही पुत्र, सेवक तथा आश्रित थे । दाराशिकोह को भी स्थिर भाव से गद्दी पर बैठने का अवसर नहीं मिला था ।

अतः हमारा विश्वास है कि ये लोग जहाँ एक ओर शाहजहाँ के अंतरंग थे वहीं चिंतामणि के अत्यन्त प्रशंसक । रस विलास में जिस अधिकार के साथ कविचिंतामणि ने अपने आश्रयदाता के समानान्तर इन चारों की प्रशस्तियाँ लिखी हैं वे इस बात को प्रमाणित करती हैं कि ये चारों शाहजहाँ के अतिशय कृपापात्र थे अन्यथा किसी भी राजा की महत्वाकांक्षा अपने समानान्तर प्रशंसा को सहन नहीं कर सकती और न मुगल शासन का दरबारी कवि एक ही ग्रन्थ में इस प्रकार की प्रशस्तियों का उल्लेख कर सकता है ।

अतः आश्रयदाता तो केवल शाहजहाँ थे । हाँ, चिंतामणि के कद्रदानों में दाराशिकोह आदि शेष चार व्यक्तियों का महत्वपूर्ण स्थान मानना चाहिए ।

सन्त अकबर शाह :—

बड़े साहिब सन्त अकबर शाह सन्त हजरत बन्दे नवाज गेसू दराज के वंशधर थे जिनका दक्षिण भारत में मुहम्मद साहब के समान सम्मान था । इन्हीं के वंश में सन्त शाहिराज उत्पन्न हुए थे जो कुतुब शाही बादशाह अबुल हसन के गुरु और सन्त अकबर शाह के पिता थे । चिन्तामणि की प्रशस्ति के अनुसार ये बड़े तेजस्वी, वैभव सम्पन्न, दानी, कवियों और पंडितों के आश्रयदाता, बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे । उनका दान, सौन्दर्य, वैदुष्य सब कुछ अपूर्व था । चिन्तामणि ने सम्भवतः संवत् 1730-31 के आस-पास इनके आश्रय में शृंगारमंजरी का ब्रजभाषा रूपान्तर किया ।

शाहा जी भोसले की मृत्यु के बाद सुदूर दक्षिण हैदराबाद में चिन्तामणि आश्रयदाता की खोज में कैसे होंगे यह एक विचारणीय प्रश्न है, किन्तु सम्भवतः इसका कारण यह है कि गोलकुण्डा में सांस्कृतिक वातावरण सहिष्णु एवं सुरुचि सम्पन्न था । डा० भगीरथ मिश्र ने इतिहास ग्रन्थों के आधार पर अबुल हसन (सं०1644 से 1704) के विषय में लिखा है कि "अबुल हसन बड़ा उदार और धार्मिक प्रकृति का व्यक्ति था । अबुल अथवा ताना साहब के हिन्दू मंत्री थे और हिन्दू संस्कृति का वातावरण था । उसके मुस्लिम दरबारी भी उनके हिन्दुओं के उत्सवों में भाग लेते थे ।[1]

अतः सन्त अकबरशाह के दरबार में भी सहिष्णुता प्रधान धार्मिक वातावरण रहा होगा इसमें सन्देह नहीं । चिन्तामणि ने इसीलिए बड़े साहिब सन्त अकबर शाह का आश्रय लिया था ।

विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि बड़े साहिब अकबर शाह ने तेलगू भाषा में शृंगार मंजरी की रचना की थी और उनके आश्रित किसी कवि ने उसका संस्कृत रूपान्तर किया था किन्तु डा० भगीरथ मिश्र और डा० राघवन् ने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है[2] कि मूल शृंगार मंजरी सन्त अकबर शाह

1: हिन्दी शृंगार मंजरी — सम्पादक डा० भगीरथ मिश्र पृष्ठ 8

2: हिन्दी शृंगार मंजरी — सम्पादक डा० भगीरथ मिश्र तथा संस्कृत शृंगार मंजरी भूमिका डा० राघवन् पृष्ठ 7

की रचना नहीं है अपितु उनके आश्रित किसी कवि ने उसकी रचना करके सन्त अकबर शाह के नाम से उसे प्रसिद्ध कर दिया है। " अस्तु, हमारा तात्पर्य है कि गुण ग्राही सन्त ने शृंगार मंजरी जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ को पहले व्यापक प्रचार देने के लिए संस्कृत भाषा में उसका रूपान्तर कराया और जब उन्हें चिन्तामणि जैसा समर्थ कवि प्राप्त हो गया तो उन्होंने उसका बृजभाषा रूपान्तर कराया। यह तथ्य उनकी गुणग्राहिता के साथ साथ उनकी दूरदर्शिता को और विशाल हृदयता को भी प्रगट करता है क्यों कि उस समय बृजभाषा सम्पूर्ण भारतवर्ष की भाषा अथवा राष्ट्रभाषा का महत्व प्राप्त कर रही थी। इसीलिए बृजभाषा में अनुवाद का विशेष महत्व था। यह भी हो सकता है कि उनकी दृष्टि में दक्षिण भारत की एक क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान को सम्पूर्ण भारत के विद्वानों तक विशेषतः उत्तर भारत के विद्वानों तक पहुँचाने का सत् संकल्प रहा हो।

कारण जो भी रहा हो चिन्तामणि का जो सम्मान सन्त अकबरशाह के यहाँ हुआ था वैसा सम्भवतः और कहीं नहीं हुआ इसीलिये चिन्तामणि उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते।[1] आदि से अन्त तक जैसी प्रशंसा उन्होंने अकबरशाह की की है वैसी अपने किसी आश्रयदाता की नहीं की है क्यों कि सन्त अकबरशाह का जीवन काल बहुत थोड़ा था इसलिए उनके अन्तिम दिनों में ये गोलकुण्डा पहुँचे होंगे और उन्हीं दिनों हिन्दी शृंगार मंजरी की रचना की होगी।

रुद्रशाह सोलंकी :-

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने अपने ग्रन्थ शिव सिंह सरोज में एक छन्द उद्धृत किया है। उसी छन्द के आधार पर उनका कहना है कि कवि कुल कल्प तरु चित्रकूटाधिपति राजा रुद्रशाह सोलंकी के आश्रय में लिखा गया था —

साहेब सुलंकी सिरताज बाबू रुद्र शाह।
तोसो नर रतन कहत सब कत हैं।।

---

[1] शिव सिंह सरोज - पृष्ठ ४९

काटै करवाल ठाढ़े कटत दुवन दल ।

श्रोणित समुद्र छोर पर छलकत है ।।

चिंतामनि भनत भषत भूतगन मांस ।

मेदगूद गीदर और गीध गलकत हैं ।।

परे कीर कुम्भन सो मोती दमकत

मानो कारे लाल बादर में तारे भलकत हैं ।।

परन्तु यह छन्द नवल किशोर प्रेस लखनऊ (सन् 1875) के संस्करण में नहीं है । डा0 भगीरथ मिश्र का कहना है कि "यह रुद्रशाह सोलंकी वही थे जिनके संबन्ध में भूषण ने लिखा है कि उन्होंने इन्हें भूषण की उपाधि दी थी । यह रुद्र शाह चित्रकूट के राजा थे ।[1] मिश्र बन्धुओं के अनुसार "राजा रुद्रशाह सोलंकी ने 'कवि भूषण' की उपाधि का सन् 1666 (सं0 1723) के लगभग दी थी "।[2]

शृंगार मंजरी का रूपान्तर-समय सन् 1668 (सं0 1725) के आस पास ठहराता है । उपर्युक्त तथ्यों को देखकर ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि चिन्तामणि रुद्रशाह सोलंकी के आश्रय में गये होंगे । यदि यह सत्य है कि चिन्तामणि रुद्र शाह सोलंकी के आश्रय में गए थे तो यह भी सत्य है कि किसी न किसी रूप में अपने भाई कवि मुरलीधर उपनाम 'भूषण' के माध्यम से ही चिन्तामणि रुद्रशाह के सम्पर्क में आए होंगे चाहे अपने भाई से चित्रकूटाधिपति की गुणग्राहिता का परिचय पाकर गए हों या स्वतः अकबर शाह के यहाँ लौटते समय अपने छोटे भाई से मिलने के लिए चित्रकूट गए हों और रुद्रशाह की गुणग्राहिता से प्रभावित होकर वहाँ कुछ दिन तक ठहर गये हों । किसी प्रकार के साक्ष्य के अभाव में निश्चयात्मक कहना कुछ भी सम्भव नहीं है तथापि रुद्रशाह के आश्रय में चिन्तामणि ने कुछ काल व्यतीत किये हों और किसी ग्रंथ की रचना की हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । सोलंकी की गुण ग्राहिता तो प्रसिद्ध है ही ।

1: हिन्दी रीति साहित्य — डा0 भगीरथ मिश्र पृष्ठ 77 द्वितीय संस्करण

2: भूषण ग्रन्थावली — सम्पादक मिश्रबन्धु सं0 2015 पृष्ठ 7

रहमतुल्लाह :—

तज किर-ए-सर्व आजाद के विवरण से पता लगता है कि दीवान रहमत-उल्ला सैयद खैरउल्ला के पुत्र तथा सैयद भीका के पौत्र थे । ये बिलग्राम के रहने वाले थे । इनके दादा सैयद भीका नवाब एहतशाम खाँ, नवाब मोहतसिम खाँ आलमगीरी और नवाब मुर्तजा खाँ आलमगीरी के सरकारों में सम्मिलित थे ।

दीवान रहमतुल्ला अपने दादा के यहाँ रहते थे और उनके सहायक के रूप में काम करते थे । जब दादा सैयद भीका बूढ़े हो गये तब दीवान ने उन्हें घर बैठा दिया और स्वयं उनकी तरह काम करने लगे । सैयद रहमतुल्ला की हुकूमत में आजमऊ और बैसवाड़े आते थे । ये बड़े ही विश्वास पात्र एवं सच्चे आदमी थे । वीरता और साहस इनके विशेष गुण थे । अतः इनके आस-पास के लोग इनको बहुत मानने लगे थे । इसके अतिरिक्त ~~और~~ ^ये रौरं अंदेश खाँ आलमगीरी^ अब्दुल हमद खाँ वगैरह के इलाकों का भी इन्तजाम किया करते थे ।

दादा के मरने के बाद इन्होंने दक्षिण में जाकर औरंगजेब की सेवा की औरंगजेब ने रहमतुल्ला की आनुवंशिक वीरता को सुनकर रहमतुल्ला को दो सती मनसब और शाहीपुर के इलाके में जागीर दी । रहमतुल्ला इस जागीर को पाकर वतन आ गये और सलेमपुर में रहने लगे । इनकी मृत्यु तेरह रबी उल आखिर सन् ।।।8 हिजरी को हो गयी ।[1]

कहा जाता है कि आजमऊ की हुकूमत के जमाने में एक भाट जो चिन्तामणि, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, का शिष्य था सैयद रहमतुल्ला की हिन्दी कविता में कमाल का किस्सा सुनकर उनके पास आया । उसने एक दिन दीवान के आगे चिन्तामणि का एक दोहा पढ़ा जिसमें उसके अनुसार अनन्वय अलंकार बाँधा गया था । यह दोहा चिन्तामणि के कवित्त-विचार नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ का था । दोहा इस प्रकार है —

---

1. तारीखे मुहम्मदी — फारसी हस्तलिखित प्रति रजा स्टेट पुस्तकालय रामपुर— पुस्तकालय निर्देशक श्री इम्तियाज अली अरशी के सौजन्य से ।

हियो हरत उरकत अति चिन्तामनि चित चैन ।
या मृग नैनी के लखे बाढ़ी के से नैन ।।¹

कला पारखी रहमतुल्ला ने इस दोहे में मृगनयनी शब्द को अनन्वय अलंकार के विपरीत पाया क्योंकि अनन्वय अलंकार में उपमान और उपमेय दोनों एक होते हैं मृगनयनी में जब नेत्रों की उपमा मृग से दे दी गई तो फिर "बाढ़ी के से नैन" कहने से अनन्वय अलंकार सिद्ध नहीं हो सकता ।

जब यह भाँट चिन्तामणि के पास आया और उसने रहमतुल्ला की इस आपत्ति को दुहराया तो चिन्तामणि ने इस भूल को स्वीकार करते हुए दोहे के उत्तरार्द्ध को यों परिवर्तित कर दिया –

" या सुन्दरि के मै लखे वाढ़ी कैसे नैन "

किन्तु इस घटना ने चिंतामणि के मन में दीवान रहमतुल्ला से मिलने की उत्कंठा पैदा करदी । एक समय गंगा स्नान के लिए चिंतामणि अपने परिवार के साथ जाजमऊ पहुँचे और दीवान से मुलाकात की । दीवान ने उनका यथा योग्य सत्कार किया । चिन्तामणि बहुत दिनों तक दीवान के पास रहे और दोनों का समय बड़े आनन्द से व्यतीत हुआ क्यों कि दोनों की रुचि एक जैसी थी ।

कालान्तर में दीवान ने चिन्तामणि के यहाँ नक्दी और भारी सुनहरा लिबास भेजा । चिन्तामणि ने कहलवाया कि मैं चाहता हूँ कि मैं नियमानुसार इस लिबास को आपके दरबार में आकर पहनूँ । दीवान ने निवेदन किया कि यह आपके योग्य नहीं है इसलिए इसे मेरी अनुपस्थिति में पहन लीजिए किन्तु अन्त में चिन्तामणि दीवान के दरबार में आए और भरी सभा में कवित्त पाठ किया । उसमें दीवान की बहादुरी का झूलना छन्द में सरस वर्णन है–

1: पाठान्तर – तूरे कलीम पृष्ठ 14 भाग 2 – जलपाइ निज लेखक नूरुल हसन खाँ मोफ्ती प्रकाशन सन् 1913 हैदराबाद

2: सर्वआजाद पृष्ठ 366 वस पाइ तजि – लेखक मीर गुलाम अली आजद बिलग्रामी प्रकाशन मुफ्ता मुफीदे आम आगरा सन 1296 हिजरी तजकिर-ए-सर्व आजाद का फारसी से हिन्दी रूपान्तर करने में रजा स्टेट पुस्तकालय के निदेशक श्री इम्तियाज अली अरशी के सौजन्य से ।

गरज गहि सिंह ज्यों सबल गज गाज, मन पर गज बाज दल साज धायों
बजत स्क जमक धन धनक दुन्दुभी की तुरंग खुर धमक भूतल हलायो
बैर तिय कंठय हिय कंप हर जोर संसय को सोर चहुँ ओर छायो
कहौ बल चढ़ निज (तजि) चढ़ सन्नाह यह रहमतुल्ला सर नाह आयो

उपर्युक्त कवित्त शाह शुजा के पुत्र सुल्तान जैनुद्दीन प्रशंसा परक कवित्त के बाद लिखा हुआ है। रहमतुल्ला न केवल गुणग्राहक एवं कवियों के आश्रयदाता थे अपितु स्वयं भी एक श्रेष्ठ कवि थे। उन्होंने पूरन रस नाम से एक पुस्तक लिखी है जिसके कुछ दोहे उद्धृत किये जाते हैं —

सोहत बेनी पीठ पर झीनी पट की भाय
लोटत नागिन कमल दल अंग पराग लगाय
माँग सुहाग भरी अली चिकि पाटी छबि छाय
स्याम मनो घन स्याम में चपला लेख लखाय[1]

इससे स्पष्ट है कि सैयद रहमतुल्ला चिन्तामणि के सच्चे प्रशंसक और गुणग्राही थे। कहना न होगा कि चिंतामणि में अपने जीवन में ऐसे जाने कितने गुणग्राहकों से सम्मान प्राप्त किया होगा किन्तु इतिहास ऐसे सन्दर्भों में प्रायः मौन रहता है। जो भी हो चिन्तामणि अपने समय के एक सम्मानित कवि थे जिन्हें अनेक आश्रयदाताओं ने सम्मान दिया था।

<u>शाहशुजाः—</u>

तजकिरा-ए-सर्व आजाद में केवल एक वाक्य प्राप्त होता है जिसमें लिखा है कि "चिन्तामणि शाहशुजा की सरकार में इज्जत के साथ बसर करते थे।[2] हम देख चुके हैं कि सुल्तान जैनउद्दीन मुहम्मद की प्रशंसा चिन्तामणि ने की है ऐसी दशा में उसके पिता शाहशुजा के जमाने से ही चिन्तामणि उनके दरबार में थे और धन मान प्राप्त करते रहे। यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। इतिहास बताता है कि शाहजहाँ के पुत्रों में शाहशुजा सबसे अधिक कला प्रिय और विलासी था अतः शाहजहाँ के दरबारी कवियों एवं कलाकारों को सादर आश्रय देना उसके लिए उचित ही प्रतीत होता है।

<u>शाह मकरन्द (शाहजी) :-</u>

हम छन्द विचार (भाषा पिंगल) के रचनाकाल का निर्णय करते हुए विस्तारपूर्वक यह सिद्ध कर चुके हैं कि चिन्तामणि भाषा पिंगल की रचना के प्रेरक आश्रयदाता छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी थे प्रशस्ति विषयक छन्दों को देखने से पता चलता है कि आचार्य चिन्तामणि को इनके दरबार में पर्याप्त सम्मान प्राप्त था[1]। इनका समय सं० 1659-1721 विक्रमी है।[2] अतः कम से कम सं० 1720 तक चिन्तामणि ने इनके आश्रय में निवास किया होगा।

1: दीखियत नैननि सोधि बैन बोलतु है
सुनो साहि मकरन्द नंद कल रव को
(राधा माधव विलास चम्पू पृष्ठ 256)
साह मकरन्द मन्द सरजा विलन्द कोई ।
आलम सराहै याकी मौज को उदारतो ।।
क्षमापति लोग तहाँ दिग्गजनिहू के नाह ।
साहि बरनाह तो दिग्गज है हारतो ।।
(भाषा पिंगल हस्तलिखित प्रति ओरियंटल बड़ौदा सं० 45-95)
नरवर मकरन्द शाह भुवन मधुर मंगल मंत्र पाठ पूर्वम् —संगीत मकरन्द ह० लि० सरस्वती महल तंजौर
चिन्तामनि कवि को हुकुम कियो साहि मकरन्द ।
करौ सकल लछन सहित भाषा पिंगल छन्द ।।
साहिनृपति के हुकुम ते यो मति को परमान ।
मैननु को रचि के उर्वे अलंकार को नाम ।।
(चिन्तामणि कृत हस्तलिखित काशी नागरी प्रचारिणी छन्द 8

2: तजकिरा-ए-औलियाए — मीर गुलाम अली - कुतुबखाना हैदराबाद

3: शिवाजी दी ग्रेट प्रथम भाग — बाल कृष्ण शर्मा सन् 1932 का संस्करण पृष्ठ 55

२। चिन्तामणि की जीवन दृष्टि एवं विचार धारा

***

चिन्तामणि की जीवन दृष्टि :—

अनुभव की कसौटी पर कसे हुए अनुभव वे सुवर्ण हैं जिनकी कांति और खरापन कभी कम नहीं होता। जीवन के ये अनुभव जहाँ व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति के प्रति वक्ता के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं, वहीं पाठक के लिए संसार सागर में प्रकाश स्तम्भ का काम करते हैं।

चिन्तामणि का काल शृंगार का काल था और चिन्तामणि कवि उसमें अवगाहन करने में परम प्रवीण था किन्तु उसी के साथ परिस्थितियों के थपेड़े के माध्यम से वे जीवन तट पर जो रेखायें अंकित कर गये हैं उन्हें भी कवि ने यथा स्थान वाणी दी है।

प्रस्तुत प्रसंग में कुछ ऐसी पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही है जिनसे कवि की जीवन दृष्टि का आभास मिल सकता है। कवि की दृष्टि में विद्या का मूल्य सब से बड़ा है उसका अनुभव है —

> बिद्याते उपजैं मिलै बिनै जगत बस होत।
> जगत भये बस धन मिलै धन ते धरम उदोत ॥[1]

यह हुई विद्या से धन और धर्म की प्राप्ति की बात किन्तु सच तो यह है कि विद्या ही धन है और विद्या से उत्पन्न कीर्ति ही आभूषण है और सद्विद्याजन्य व्यवन से उत्पन्न सुमति ही वास्तविक लोचन हैं तभी तो कवि कहता है —

> भूषन कीरति नाहिं रतन धन विद्या नाहिं वित्त।
> लोचन सुमति न नैन जुग सद्गुरु ध्यान वित्त ॥[2]

1: क०क०त० 3/ 194

तुलनीय — विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्

बात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्मं ततः सुखम् सुभाषित

2: क०क०त० 3/265

जहाँ तक सांसारिकता का प्रश्न है कवि का विश्वास है कि संसार में स्वस्थ सुखी और सम्पन्न यौवन ही काम्य है ।

× × जोबन ते तन की निकाई अधिकाई है[1]

तथा धाम धाम जित धाम जो सम्पन्न बहु रूप ।[2]
सहित विलास विलास जो मनमथ बान अनूप ।।

और इसी तरह सौन्दर्य के साथ ही रुचि का योग होता है —

रीझनि खीझनि बुधि बिनु कछु लेत रिझाइ ।
नीके कों नीको लगै सब विधि सबैं सुभाइ ।।[3]

किन्तु वास्तव में यह लोक परक दृष्टि कवि के संस्कारों में बद्धमूल नहीं है । रचनाओं में शास्त्रीयता के आग्रह से उदाहरणों के समायोजन के लिए उसमें वैसे ही घोर शृंगारमयी उक्तियाँ लिखी हों तथापि एक सच्चे पंडित की भाँति उसकी बुद्धि निश्चयात्मक रूप से जानती है कि पांडित्य का सारतत्व केवल परमात्म तत्व का चिंतन है और यह परमात्मतत्व सत्संगति के बिना सरलता से प्राप्त नहीं होता । जीवन में सबसे उत्तम काम भगवच्चरण में अनुराग है और उसी की कीर्ति इस संसार में शेष रहती है जो भगवद् भक्त हैं । कुछ पंक्तियाँ देखिए —

(क) बहुरी श्री बारानसी तामे पंडित सार ।
बहुरि पंडितन में सबुधि सार सु ब्रह्म विचार ।।[4]

(ख) नीकी बरखा आन की आगी मन की जीति ।
संगति सज्जन की भली नीकी हरि की प्रीति ।।[5]

(ग) करि लीजे उत्तम क्रिया हरिपद प्रीति विशेष ।
रहत सदा उत्तम पुरुष या जग की रति शेष ।।[6]

1: क० क० त० 3/265
2: वही 3/15
3: वही 3/251
4: क० क० त० 3/306
5: वही 1/69
6: वही 1/71

जहाँ तक साधु पुरुषों का प्रश्न है कवि की निर्भ्रान्त धारणा है कि —

वचन तुलित मन मन तुलित सकल विराजत काल
काज तुलित निर्मल सुजस लसत साधु सिरताज[1]

सचमुच जो मन वाणी और कर्म में एक सी भावना रखते हैं वही सज्जनों के सिर मौर हैं । ऐसे सत्पुरुषों की संगति और सेवा से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है इसीलिए वे निष्ठापूर्वक कहते हैं —

जे जन सेवत साधु जन वचन सुधा को पान ।
जनम मरन भय रहित ते पावत कल्यान ।।[2]

अतएव सज्जन पुरुष की सेवा और परमात्मा का ध्यान केवल यही दो कार्य चिंतामणि की दृष्टि में जीवन के लक्ष्य हैं । तभी तो वे कहते हैं —

कहा सेइये पुरुष को सब दिन सज्जन संग ।
कहा सेइये कहत मनि व्यापक ब्रह्म असंग ।।[3]

जिस प्रकार रहीम ने कहा था —

'समय दशा कुल देखिकै करै लोग सनमान'

उसी प्रकार चिन्तामणि का भी विश्वास है कि मनुष्य के प्रति प्रेम भी लोग तभी करते हैं जब उसकी दशा अच्छी होती है —

दसा जौ जबलौं नहीं होत न आदर नेह ।
दसा जमे जा दीप में सबै करत हैं नेह ।।[4]

किन्तु सच्चे मित्र और अकारण कृपा करने वाले सन्त पुरुष निःस्वार्थ भाव से जगत का उपकार करते हैं तुलसी का अनुभव था —

हेतु रहित जग जुग उपकारी ।
तुम तुम्हार सेवक असुरारी ।।[5]

और चिंतामणि का निरीक्षण है कि —

बड़े प्रवीन सुबुद्धि हैं सदा अकारण मित्र ।
कहा और संसार में ऐसो विमल चरित्र ।।[6]

1: क० क० त० 3/24
2: वही 3/143
3: क० क० त० 3/264
4: वही 3/251

यह तो हुई सत्संगति की बात पर संसार के मतलबी यारों से बचे बिना सत्संग और सुमार्ग पर चलना क्या सरल है ? अतः चिन्तामणि शिक्षा देते हैं कि –

औरन के अपकार तें खल मों कहूँ मिलाप ।
तुमहिं सिखावन करहु जनि फिर परम सन्ताप ।।[1]

ये विश्वासघातक खल हमारे जीवन को दुखी बनाने में ही प्रसन्न होते हैं । यों तो ये बड़े ही आवरण के साथ अपने दम्भ को छिपाना चाहते हैं जैसे बगुला ध्यानी बना बैठा रहता है किन्तु शिकार करते समय उसका भंडा फूटता है वैसे ही एक न एक दिन दुष्टों की दुष्टता भी प्रकट होकर के रहती है ।

कहूँ दंभ दंभीन को छप्यौ न रहत निदान ।
सब भारत ही होतु है प्रगट बकन को ध्यान ।।[2]

दुष्टों की प्रियतमा है निन्दा । जब संसार में निन्दा प्रगट हुई तो उसका स्वागत खलों ने किया –

प्रगट भई संसार में निन्दावाही जोग ।
ताके आदर करन को प्रगट भए खल लोग ।।[3]

ऐसी दशा में खलों की निन्दा भी क्यों की जाए। इसलिए इस प्रसंग को यहीं छोड़िये और अपने में सद्गुण लाने का प्रयास कीजिए क्योंकि बिना गुणों के व्यक्ति का जीवन प्रकाशित नहीं होता –

उपर्युक्त अनुभव शब्दों में अभिव्यक्त जीवन दृष्टि इस बात का प्रमाण है कि चिन्तामणि का जीवन एक शुद्ध सदाचारी पंडित का जीवन रहा ठकुर सुहाती के लिए उसने लौकिक शृंगार की रचनाएँ भले ही की हों अन्यथा राधाकृष्ण के माधुर्य भाव में ही शृंगार के दर्शन प्राप्त होते हैं । रागानुराग माधुर्य भाव की भक्ति के उत्थान के युग में हमारा कवि भी वैष्णव निष्ठा के साथ कृष्ण प्रेम में और राधिका नेह में डूबा है किन्तु उसका विवेकी मन संसार की नश्वरता विलास

1: कृ०क०त० 4/57
2: वही 3/192
3: वही 3/178

की नश्वरता और जीवन की सार्थकता को अच्छी तरह जानता पहचानता रहा है इसीलिए उसने निर्भीक भाव से कहा कि –

सिसिर मरीचिन में मृग जल जैसो भ्रम भुवन मे लोयके तरंगन को ढंगु है ।
छोड़ि सदा शुद्ध ज्ञान आनन्द परम पद और कछु कछु विसराम को न अंगु है।
चिंतामनि कहे कहो कौन सो सनेह कीजै सब ही सो घाट बाट हाट कैसो संगु है।
नीको है तो कहा परनाम सब फीको होत तन धन जोवन कुसुम कैसो रंगु है ।।[1]

अतः स्पष्ट है कि चिन्तामणि की जीवन दृष्टि आध्यात्मिक है । वे संसार की वास्तविकता को अच्छी प्रकार जानते हैं कि यह अत्यन्त नश्वर और भ्रमपूर्ण है उसमें सारतत्व भगवद्भजन है। इसलिए यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि चिन्तामणि का व्यक्तित्व संतुलित तथा चिन्तनशील रहा है और उनका जीवनानुभव व्यापक तथा वास्तविक रहा है ।

ख– चिन्तामणि का दार्शनिक चिन्तन :–

परमात्मा :–

चिन्तामणि भगवान के साकार रूप के उपासक हैं यद्यपि वे जानते हैं कि जो परमात्मा संसार की सृष्टि, स्थिति आदि का कारण है वही भक्तों पर कृपा करने के लिए अवतरित हुआ है –

सुर नर मुनि जल जलज जो जन्तुन में अवतार ।
कलि प्रति पालक खल दमन हेत लियो अवतार ।।
जो सगुने भगवन्त रूप, लीला ललित विलास ।
जिन केते रूप यों किये माया कौस प्रकास ।।[2]

यह भी ब्रजवासियों का सौभाग्य है कि स्वयं परमात्मा कृष्ण बनकर ब्रजमंडल में अवतरित हुआ है –

इन ब्रजवासिन में भक्त और समान न जानि ।
कल्पद्रुम जिनको भयो आपु आतमा आनि ।।[3]

1: क0क0त0 1/17
2: कृष्ण चरित 3/25,26
3: कृष्ण चरित 3/38

अतः सत्य, ज्ञान और अनन्त पुराण पुरुष परमात्मा ही ललित लीला विलास के लिये अवतार धारण करता है ऐसा सिद्धान्त चिंतामणि को स्वीकार है।

जीव :-

जीव परमात्मा का ही अंश है । जीव नार है और परमात्मा उसका अयन । इसीलिये उसे नारायण कहते हैं -

जीव समूह जो नार सो क्रम तिहारो नाथ ।
अन्तर जामी ईस तन नारायण तब साथ ।।[1]

जीव ससीम है, आत्मा अव्यक्त तथा अक्षय सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान है।

माया :-

भगवान की माया विद्या और अविद्या भेद से दो प्रकार की है । विद्यामाया के रूप में तो राधा एवं समस्त गोपिकाओं का उल्लेख किया गया है जिनके साथ भगवान रास विहार करते हैं किन्तु अविद्या माया के सहारे अनात्मा को प्रकाशित करते हैं -

मुनि जन मन मन वचन विधि सेवित चरन सुजान
विमल वृष्णि कुल कमल रवि जय जय जय श्रीकृष्न[2]

यह माया यद्यपि सत्य नहीं है तथापि जब तक परमात्मा को तत्वतः नहीं जान लिया जाता तब तक माया से मुक्ति सम्भव नहीं है, हाँ जान लेने के बाद माया उसी तरह मिट जाती है जैसे रस्सी में साँप का भय -

आपु बिना जाने जगत, आपु लखे मिटि जाय ।
रज्जु बिना जाने सर्प जाने रज्जु बिलाय ।।[3]

इस प्रकार इन्होंने माया को अनात्म तत्त्व एवं भ्रम का रूप बतलाया है

चिन्तामणि की भक्ति :-

चिंतामणि द्वारा प्रतिपादित भक्ति के सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन करने से पूर्व यह उल्लेखनीय है कि चिंतामणि ने किसी ऐसे ग्रन्थ की रचना नहीं की जिसमें उनके द्वारा प्रतिपादित भक्ति के सिद्धान्त का व्यवस्थित विवेचन हो । कृष्ण चरित्र में इस प्रसंग की जो रचनायें प्राप्त होती हैं वे श्रीमद् भागवत का अनुवाद हैं । उनमें प्रतिपादित सिद्धान्त वास्तव में भागवतकार के ही सिद्धान्त हैं । तथापि

चिन्तामणि ने जिस रुचि और तत्परता से विस्तारपूर्वक भक्ति तत्व की चर्चा की है उससे उनकी मान्यता पर अनायास ही प्रकाश पड़ जाता है । अतः उनकी भक्ति विषयक रचनाओं के आधार पर भक्ति के सैद्धान्तिक पक्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है ।

भक्ति का स्वरूप :-

चिंतामणि की दृष्टि में भगवत भक्ति अनन्य अनुराग स्वरूपा है । सच्ची भक्ति संसार के समस्त संबन्धों का परित्याग करके भगवान के चरणों में शरण लेने में ही है ।

पति सुत भाई माइ पितु सकल कुटुम्ब समाज ।
तजि आर्यो मंगहव क्यों वे हमको ब्रज राज ।।
कहत तुम्हें असरन सरन दीन बन्धु सब कोइ ।
दासी भई अनन्य गति अब न अन्य गति होइ ।।[1]

यह अनन्य भक्ति तभी सार्थक होती है जब भगवान के चरणों में निश्चल अनुराग हो -

जीति चपल श्री कृष्ण की भक्ति अनन्य निहारि ।
हमहू निश्चल भगति कीर मन में धरे मुरारि ।।[2]

यह आस्था सख्या कृष्ण स्तुति में तथा यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के पश्चाताप में यदि दास्य भाव रूप में प्रगट है तो गोपांगनाओं के प्रेम में माधुर्य भाव में अभिव्यक्त है । अतः चिन्तामणि के भक्ति के स्वरूप पर विचार करते हुए यह स्वीकार करना पड़ता है कि ईश्वर के प्रति परम अनुराग, अनन्य निष्ठा और लीला के अनुशीलन में ही भक्ति भावना का स्वरूप स्पष्ट हुआ है क्योंकि ऐसी प्रेमा भक्ति के लिए किसी भी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है । जप, तप, नियम, व्रत सब की तुलना में भगवत चरणानुराग श्रेष्ठ है -

नीति वन के दुख संकुल, न गुरु सखि व्रत नेम ।
हमहू निश्चल भक्ति करैं हृढ़ हरि चरन प्रेम ।।[3]

1: कृष्ण चरित्र 6/56,57
2: वही 6/71
3: कृष्ण चरित्र 6/68

अनन्य संबन्ध का अर्थ है संसार के सारे संबन्धों का परित्याग करके भगवान के चरणों में अनुराग किन्तु यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति समस्त संसार को भगवान के चरणों में सौंप दे –

जानत जग सर्बज्ञ तुम आज्ञा दीजै मोहि ।
तू सब जग को नाथ सब जगत समर्प्यौ मोहि ।।[1]

प्रेम भक्ति और शृंगार भावना :–

कृष्ण भक्त कवियों की माधुर्य मूलक प्रेम भक्ति की शृंगार परकता अथवा यों कहें कि निरावृत्त शृंगार भावना को देख कर बहुत से लोगों ने उसमें वासनात्मकता देखने का प्रयास किया है किन्तु वैष्णव भक्त ईश्वर विषयक रति को काम नहीं मानता वरन् उसे भाड़ में भुने हुए उस बीज की तरह मानता है जो पुनः नहीं उगाया जा सकता है –

परि गह गोचर काम जो बहुरि काम को नाहि ।
भू पर भरि जिन बीज ज्यों फिरि न जमाये जाहि ।।[2]

अतः श्री कृष्ण के साथ गोपियों के अभिसार, रास, आलिंगन, परिरम्भण आदि का जो उल्लेख किया गया है, वह सब कुंठित काम का कैसा उदात्ती रूप है, जिसमें लौकिक वासना का संस्पर्श नहीं ।

भगवद्भक्ति के पल्लवित होने के मूलतः चार बिन्दु हैं – नाम, रूप, लीला और धाम । अतः भक्त जन मुख से निरन्तर भगवत नाम का उच्चारण करते हैं, नेत्रों से भगवान का रूप निहारते हैं, चरणों से भगवान के धाम में (वृन्दावन आदि) में विचरण करते हैं तथा भगवान की लीलानुचिन्तन में निमग्न रहते हैं ।

चिंतामणि ने भी भगवन्नाम आदि के महात्म्य का उल्लेख वही श्रद्धा से किया है जिस प्रकार तुलसी ने –

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम[3]

1: कृष्ण चरित्र 3/44
2: वही 6/24
3: राम चरित मानस, उत्तर काण्ड । 30ख

की बात कही है वैसे ही चिन्तामणि ने भी श्री राम के नाम के आधार पर सदा आराम में रहने की बात कही है —

लोभी जन धन लाभ अरु, प्रिय जन संग सकाम ।
साधु कमल श्री राम के नाम रहत सदा आराम ।।[1]

क्योंकि भगवान का नाम अनेक प्रकार के संकटों को दूर करके अनन्त पुण्य और अमाप सम्पत्ति प्रदान करता है —

उदय रवि करत तम रासि संहरत,
नाम ध्यान के धरत तम रासि काटै ।
परम कृपाल प्रभु पलक पाइन परत,
प्रीति करि पुन के पुंज पाटै ।
नाम के जाप सो अमाप संपत्ति को,
प्रबल प्रताप की ठाट ठाटै ।
विघन अति सघन अघविकट निपट,
संकट कटक प्रगट काटै ।[2]

इतना ही नहीं भगवन्नाम संकीर्तन, असाधु पुरुषों को सद्गति प्रदान करने वाला और परम कल्याणकारी है —

देत असाधुन साधु गति, यों हरिनाम निवाहि ।
मनो कियो उन कीरतन पाप अगाधे बाहि ।।[3]

रूप :—

भगवान का रूप संसार के समस्त रूपों से श्रेष्ठ है । इतना ही नहीं वह वचन अगोचर परमानन्द प्रदान करने वाला अगाध सौन्दर्य है । संसार के समस्त सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाला है उनकी रूप माधुरी का दर्शन ही नेत्रों की सफलता है और जीवन का सारतत्त्व —

"नैननु को फलु जीवन सारु
बिलोकिये नन्द कुमार की मूरति"[4]

1: क0क0त0 3/184
2: वही 2/18
3: क0क0त0 2/18
4: कृष्ण चरित्र 4/41

क्योंकि उस रूप को देखने के बाद सारा संसार तुच्छ लगता है और सुध बुध भूल कर बिना मोल बिक जाने को जी चाहता है –

दामिनि सो घन से तन में,
    पट प्रेम सुधा सब को मन पावै ।
मंजुल कानन में भुजा,
    सिर मोर किरीट चढ़्यो बहु भावै ।
को बिन मोल बिकात नहीं,
    मनिधा मुख पंकज में मनु लावै ।[1]

इसीलिये चिंतामणि ने कृष्ण चरित्र के अनेक सन्दर्भों में श्री कृष्ण की अनिन्द्य रूप माधुरी का उल्लेख किया है जिसकी चर्चा शृंगार रस के विवेचन में की जा चुकी है । इसीलिए चिंतामणि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भगवान के रूप माधुरी के दर्शन से समस्त सांसारिक दुःख निवृत्त हो जाते हैं –

श्री नारायण वदन विधु लखि दुख मिटत असेष ।
जाते तनु सब रूप धरत हुम कुसलय अनमेष ।।[2]

<u>लीला :–</u>

भगवान की कथा श्रवण मंगल एवं भक्ति का दृढ़ आधार है । निरंतर भगवत चरित्र का अनुशीलन करने से भक्ति भावना प्रगाढ़ हो जाती है । इतना ही नहीं जो सन्तों के मुखारविन्द से भगवत कथा श्रवण करते हुए अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं वे अनायास ही भव सागर को पार कर जाते हैं –

साधु सुजाने तब मान सुनि अरपि सकल धन धार ।
उतरे भजन जिहाज चढ़ि बहु भव सागर पार ।।[3]

और साधु जनों के मुखारविन्द से भगवान की पुण्य गाथा का श्रवण करते हैं, भाव विभोर होकर चरण वन्दना करते हैं । वे उनके साथ भगवान स्वर्ग निवास करते हैं –

---

1. कृष्ण चरित्र 4/41
2. क० क० त० 3/58
3. कृष्ण चरित्र 3/7

मोह ज्ञान मम सुनत ये साधु सुजन सुख साथ
प्रेम विवस पग धरत हू नाथ सबनि के साथ[1]

धाम :—

धाम की दृष्टि में वृन्दावन की महिमा का ज्ञान भी कवियों ने अनेक प्रसंगों में किया है । चतुर्थ अध्याय में गोचारण लीला के प्रसंग में वृन्दावन की महिमा का गान दृष्टव्य है —

धन्य धरनि धन धरनि तिय द्रुम गुलाम लता तरु लेखि
कर जय रस खग मृग नदी सदय विलोकनि पेखि
कछु वृन्दावन मुदित मन
यों वृन्दावन मुदित मन कान्ह चरावत गाइ ।
राजत है गिरि सरित तट सुन्दर सीत सुभाइ ।।[2]

ब्रह्मा जी ने तो ब्रज भूमि में जन्म और ब्रजवासियों की चरणों की धूलि का स्पर्श प्राप्त करने को अनन्त पुण्य का फल माना है —

कहँ भाग ते जग जनम ब्रज मंडल में होइ ।
हरि वल्लभ ब्रजवासि जन धूरि परस रस कोइ ।।[3]

इस प्रकार नाम, रूप, लीला और धाम चारों तत्वों की सविस्तार चर्चा करके चिंतामणि ने भक्ति भावना के सभी तत्वों का महत्व प्रस्तुत किया है—

भक्ति महिमा :—

भगवान की भक्ति समस्त रागादि दोषों का निवारण करके जीव का कल्याण करती है —

तब लगिये रागादि ठग ग्रह कारागृह आहि ।
मोह निगड जब लगे जनु कान्ह तिहारो नाहि ।।[4]

इसीलिये उनका जीवन धन्य है जिनके मन में अनेक जन्मों के कृत सुकृत के फलस्वरूप भगवत चरणानुराग उत्पन्न हो जाता है —

कहो कौन हू जनम मे यह मेरो प्रभु भाग ।
तो चरन मिलि बढ़े जो पग पूजन अनुराग ।।[5]

1: कृष्ण चरित्र 3/5
2: वही 4/8,10
3: वही 3/39
4: कृष्ण चरित्र 3/41
5: वही 3/34

क्योंकि ऐसी परिस्थिति जिन लोगों को प्राप्त नहीं है उनका जीवन हर प्रकार से निरर्थक है और धिक्कार के योग्य है। तभी तो यज्ञ करने वाले ब्राह्मण अपनी पत्नियों के भागवत प्रेम की तुलना में अपनी भक्ति की हीनता की निन्दा करते हैं –

लखि परमानन्द कान्ह में तिय जन भगति अनन्त ।
उन अपनी निन्दा करी भजे जो न भगवन्त ।।
जनम हमारो त्रिविध धिक् धिक् व्रत तप धिक ज्ञान ।
धिक् कुल धिक् सत करम हरि विमुख भये जो जाने[1]

सच्चा भक्त मनसा, वाचा, कर्मणा भगवान के चरणों में समर्पित रहता है और प्रारब्ध का भोग करते हुए भी भगवत्कृपा की प्रतीक्षा करता है –

परिखत कृपा जु रावरी, करत प्रारब्ध भोग ।
मन तन वचननि तुव पगनि नमति मुकुति पग जोग[2]

भक्ति और ज्ञान में अन्तर :–

जो लोग भगवान की भक्ति को छोड़ कर ज्ञान की साधना में लगते हैं वे वास्तव में निरर्थक रूप से धान की भूसी कूटने जैसा श्रम करते हैं जिसका फल श्रम के सिवाय कुछ नहीं –

छाड़ि भजन जब सिद्ध पद करत ज्ञान को दौर
बिन फल श्रकर ध्यान ते कूटत सठ सिर मौर[3]

वास्तव में ज्ञान और भक्ति परस्पर विरोधी नहीं हैं। गुरु की कृपा से तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने पर परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार होता है[4] और तत्त्व ज्ञान की कृपा के लवलेश से ही सम्भव है –

जापै तो पद कमल रज लेस कृपा कन होइ ।
सो समुझै तो तत्त्व कछु और न समुझै कोइ[5]।।

1: कृष्ण चरित्र 6/65,66
2: वही 3/11
3: कृष्ण चरित्र 3/36
4: वही 3/29
5: वही 3/33

यहाँ बरबस तुलसी के "सो जाने जेहि देहु जनाई"[1] का स्मरण हो आता है। ऊपर जिन दो छन्दों का उल्लेख किया गया है उनमें हरि एवं गुरु की कृपा से ही तत्त्व साक्षात्कार की बात नहीं कही गई है। उसका यहाँ स्पष्ट प्रतिपादन है क्योंकि भगवद् कृपा प्राप्त करने के बाद भक्त के लिये कुछ कुछ कर्त्तव्य शेष नहीं रहता फिर तो स्वयं भगवान उसके भक्ति के मार्ग को प्रशस्त कर देते हैं —

> जाको कृपा करे ताको संसारे छोड़ावे कोई,
>
> चिंतामनि भांति गह भली मन भाई है।
>
> पापी मुकुतीन तैसे एके गति करे हमें,
>
> जाने को कहति भये कौन यों बड़ाई है।
>
> माया मोहि मवोह को रीके व्याध गनिका पे
>
> कीरति सकल जग ऐसी कछु गाई है।
>
> रूप जाति गुन कहावे जगत पति
>
> जगत की प्रभुता यो कौन गुन पाई है।[2]

अतः भक्ति केवल भगवत कृपैक साध्य है। यह सिद्धान्त प्रतिपादित हो जाता है और इसीलिये भगवत भक्त अपने आप को समर्पित कर देता है।

<u>शरणागति के तत्त्व :—</u>

शरणागति के छः तत्वों की चर्चा मिलती है —

1: अनुकूलता का संकल्प

2: प्रतिकूलता का निषेध

3: रक्षा करेंगे ऐसा विश्वास

4: रक्षक स्वरूप का वर्णन

5: आत्म निक्षेप

6: दैन्य

1:

2: का०क०त० 3/219

कृष्ण चरित्र में इन सब का अनेक अवसरों पर उल्लेख मिलता है किन्तु विस्तार भय से यहाँ सारे सन्दर्भों का उल्लेख न करके प्रकाश सन्दर्भों की चर्चा प्रस्तुत है। शरणागत के समस्त अपराधों को क्षमा करके वह सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा कैसे उनके जीवन को कृतार्थ करता है इसका उल्लेख प्रस्तुत छन्द में देखिए :—

> कहै चिंतामनि सत्य विज्ञान आनन्द रूप,
>
> सदा ही विशद सत्व मूरति विमल हौ।
>
> स्वाधीन माया निज इच्छा विरचित,
>
> लीला विग्रह रचे खल निग्रह प्रबल हौ।
>
> साधुन को सदा प्रतिपालन करत तुम,
>
> गगन कलश कर देत सब फल हौ।
>
> आयो हौ सरन मेरी छमौ अपराध,
>
> तुम सरन आये ते दुख हरत सकल हौ।[1]

स्नेह की चर्चा के लिये सुदामा का उल्लेख पर्याप्त होगा —

> साधु सुदामा को दई सम्पत्ति स्याम निबाहि।
>
> उन सेवा कीन्हीं भली मनो इन्द्र सखि चाहि।।[2]

कार्पण्य भाव के लिये तो भगवान राम के प्रति भक्त का यह आत्म निवेदन अत्यन्त सुन्दर और समर्थ दृष्टान्त है —

> हौं तौ अनाथ तुम नाथन के नाथ हौंजू
>
> दीन तुम दीन बन्धु नाम निजु कीनो है।
>
> हौं तौ हौं पतित तुम पतित पावन देव,
>
> पुरान बखानत कछु कहयो ना नवीनो है।
>
> कम करी सेव हौं जो कहा मेरी सेवा रीझै
>
> आप ही तें आप रीझै चिंतामनि लीनो है।
>
> आपनु के मेरी रक्षा करबे ही परी राम,
>
> रावरे ही मोहि निजु नातौ जोरि दीनो है।[3]

1: कृष्ण चरित्र 7/23

2: क० क० त० 3/59

3: क० क० त० 1/65

इस प्रकार हम देखते हैं कि चिंतामणि का भक्ति सिद्धान्त वस्तुतः भगवत प्रेम मूलक और भगवान के अनुग्रह पर है । यद्यपि इनकी रचनाओं में यथा स्थान दास्य भाव के पद मिलते हैं जिनमें भगवान की महिमा और अपनी लघिमा का स्पष्ट उल्लेख है तथापि तुलनात्मक दृष्टि से इनका पुष्टि मार्गानुगामी होना ही अधिक विश्वसनीय मालूम होता है ।

××00××

खण्ड 3

1: चिन्तामणि का अभिव्यक्ति पक्ष

: चिन्तामणि का अभिव्यक्ति पक्ष :

अभिव्यक्ति का अर्थ है अनुभूति का स्थापन । यह स्थापन मूलतः भाषा के माध्यम से सम्भव होता है किन्तु काव्य की भाषा जो एक ओर कवि की कल्पना साँचे में ढालने का प्रयास करती है तो दूसरी ओर आलंकारिता उसे माधुर्य-मंडित बनाती है । इस प्रकार अभिव्यक्ति पक्ष में अन्तर्गत मूलतः बिम्ब विधान, कल्पना व्यापार, अलंकार योजना और शाब्दिक संरचना का विवेचन अत्यन्त महत्व पूर्ण है । यद्यपि विद्वानों ने इनके अतिरिक्त भी कलात्मक सौन्दर्य के अन्य उपादान भी ढूढ़ निकाले हैं तथापि इन उपर्युक्त चार पक्षों के सौष्ठव विवेचन में ही उन सब का समावेश हो जाता है इसलिये सामासिक-शैली में इस अध्याय में इन्हीं चार पक्षों पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है ।

बिम्ब विधान :-

मानव चेतना में ऐसे असंख्य संवेदन विद्यमान रहते हैं जो अभिव्यक्ति का अवसर न पाकर अवचेतन या अचेतन के धरातल पर जा पहुँचते हैं किन्तु जब ये मौलिक संवेदन अनुभूति के स्वच्छन्द प्रवाह में इन्द्रिय ग्राह्य रूप धारण करते हैं तब इन्हें बिम्ब कहते हैं । इस प्रकार बिम्ब वे मानसी प्रतिमायें हैं जो विषयानुरूप और कालानुरूप होकर नवीन प्रतीतियों के रूप में अभिव्यक्त होती हैं

डा० नगेन्द्र का कथन है कि काव्य बिम्ब का तत्व है भाव । भाव के संस्पर्श के बिना काव्य बिम्ब का अस्तित्व सम्भव नहीं है । लिविस ने उसे अनिवार्य माना है और ठीक ही माना है[1] इससे स्पष्ट है कि जब रागात्मक चेतना मस्तिष्क पर अंकित भाव मूर्तियों को नूतन आकार प्रदान करती है तो काव्य-बिम्बों का उदय होता है ये " काव्य बिम्ब ऐसी मानस प्रतिमूर्तियाँ हैं जिनमें रूप, रंग, रेखा और इन्द्रिय गुण विद्यमान हैं किन्तु उनका साक्षात्कार केवल मानस धरातल पर होता है"।[2]

1: काव्य के चरण — डा० नगेन्द्र पृष्ठ 135

2: अद्भुत रस एवं विस्मय तत्व — टंकित शोध प्रबन्ध — डा० शिवापत्त द्विवेदी पृष्ठ 434

अनुभव के आधार पर बिम्ब दो प्रकार के हो सकते हैं एक स्मृति जन्य दूसरा स्वरचित । स्मृति-जन्य-बिम्ब वे मूर्तियाँ हैं जो निरन्तर अनुभव के फल स्वरूप हमारे मानस पटल पर अंकित हैं और प्रसंगानुसार कल्पना उन्हें सम्मूर्तित करने का प्रयास करती है ।

दूसरी स्थिति में हमारी कल्पना किसी सन्दर्भ विशेष के अनुरूप नूतन बिम्बों की सृष्टि करती है । इसके द्वारा जीवन के कुछ अनुभव-चित्र एक समग्र एवं पूर्ण इन्द्रिय ग्राही भाव चित्र में परिणत हो जाते हैं । वास्तव में साहित्य के क्षेत्र में सर्व श्रेष्ठ बिम्ब विधान स्वरचित बिम्ब विधान ही है ।

बिम्ब के संबन्ध में एवं उसके वर्गीकरण के संबन्ध में बहुत कुछ कहना शेष है । अतः शास्त्रीय चर्चा के विस्तार में न पड़कर हम चिंतामणि के कुछ ऐसे बिम्बों को प्रस्तुत करना चाहेंगे जो भाव एवं अनुभाव के असंख्य बिम्बों को अ अपने आप में समेटे हुए हैं । यद्यपि रीतिकालीन परिवेश में बिम्बों को प्रायः इन्द्रिय ग्राह्य रूप में ही प्रस्तुत किया गया है तथापि ऐसे मनोरम प्रसंगों की कमी नहीं है जहाँ भाव और ऐन्द्रियता दोनों एक दूसरे से घुल मिल से गये हैं । श्री कृष्ण रूप वर्णन का एक बिम्ब देखिये :-

नैन पयोद घटान की भाँति विलसत कान्ति छटा पीर मूरति ।
मोर किरीट मनो मघवा धनु दामिनि सी प्रगटै पट मूरति ।।
मंद हँसी मुख चन्द सुधा बरसै मन मोर के चाढ़ै भई रति ।
नैननु को फल जीवन जाहि विलोकिये नन्द कुमार की मूरति ।।[1]

श्री कृष्ण के श्याम वर्ण को बादलों के समान मानकर उन्हें घनश्याम तो बहुतों ने कहा किन्तु उस श्यामता को वर्षा ऋतु के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने जिन अनुभव खंडों को एक लक्षित बिम्ब का रूप दिया है वह उसकी प्रातिभी क कल्पना का पुष्ट प्रमाण है । क्षितिज से उठती हुई नील घन घटा जो दिगन्त को व्याप्त कर रही है श्री कृष्ण के अंग की कान्ति जैसी है, और उनके माथे पर मोर मुकुट मानों इन्द्र धनुष अथवा बिजली की भाँति चमक रहा है । मन्द मुस्कान के द्वारा मुख चन्द्रमा से मानों अमृत की वर्षा हो रही है और मन रूपी

---

1. कृष्ण चरित 4/40

मयूर आनन्द विभोर हो रहा है । इस प्रकार श्री कृष्ण का दर्शन आँखों की सफलता है और जीवन का सर्वस्व है । कहना न होगा वर्षा की पृष्ठ भूमि में श्री कृष्ण की शोभा का यह रूपांकन पुरुष-चित्र बन रहा है ।

प्रियतम के प्रति प्रेम की भावना जब श्रद्धा के लोक में आ पहुँचती है तब रूप दर्शन की प्रक्रिया ही आतिथ्य बन जाती है । राधा और कृष्ण के मिलन के क्षणों में एक दूसरे की मूर्ति जो आँखों में प्रति बिम्बित हुई उसके स्वागत का सौष्ठव चित्र देखिये :—

लोचन अतिथि भये मिथुन परस्पर,
    चरन अरघ को प्रमोद जल दीनो है ।
किये मधुपरक मधुर मुसक्यानि दोनों
    तारा मनिमय श्याम आसन नवीनो है ।
ललित कर पलक परानि लाड़ आपुन दै,
    कीनो सदा (दोउनको) सेवा को अधीनो है ।
चिंतामनि हृदय मंदिर अभिलाष
    कलप द्रुमनि मंडित कमलपात्र दीनो है ।[1]

भारतीय संस्कृति के अनुरूप आतिथ्य का यह समायोजन दो प्रेमियों के प्रेम मिलन के क्षण में जितना स्वाभाविक है उतना ही संभावित है । यह वह भाव चित्र है जो प्रेम के औदात्य को शालीनता पूर्ण गरिमा प्रदान करता है ।

इसी प्रकार मन्दाकिनी के रोष कषायित आँखों में आँसुओं के बूंद को कवि ने अंजन के कोष में अनार के बीज की उत्प्रेक्षा करके जो चित्र प्रस्तुत किया है वह न केवल आँखों भरे की चंचलता को व्यक्त कर रहा है वरन आँसू भरे नेत्रों की सटीक झांकी भी प्रस्तुत कर रहा है । आँखों की कोर में ठहरे हुए अश्रु बिन्दु की स्थिर शोभा कोष में अनार के बीज को पकड़ लेने से ही सार्थक हो सकती है ।

---

1. कृष्ण चरित्र 9/17

रानि रहे मनि लाल कहूं रवि, इहां दुख बाल वियोग लहे हैं
आये घरै अरुणोदय होत, सशोभ लिया शशि बैन कहे हैं
लाल गये दृग कोरिन आनि के यों अनुमानि के कुन्द रहे हैं
यौवन दोष मनो सिथिले विष खंजन दाड़िम बीज गहे हैं[1]

प्रगल्भा प्रवत्स्यत् पतिका की आँखों के आँसू स्तनों पर इस प्रकार टूट-टूट कर गिर रहे हैं मानों भगवान शंकर की माला से पूजा हो रही है। यहाँ भी उन्नत स्तनों पर आंखो से टपकते हुए अश्रु बिन्दु को मोती से उपमित करना जहाँ एक ओर रंग साम्य रखते हैं वहीं व्यापार साम्य भी, क्योंकि टूटी हुई माला के मोती एक-एक गिरते चले जाते हैं। इष्ट सिद्धि के लिये स्तनों पर अश्रु धारा प्रिय को प्रस्थान से क्यों न रोक सकेगी? वास्तव में यह बिम्ब जहाँ एक ओर प्रगल्भा नायिका की प्रगल्भता को सूचित करता है वहीं उसके उरोजों के उभार का बिम्ब भी आलोकित हो उठता है क्योंकि आँख से गिरने वाले आँसू स्तनों पर टपक रहे हैं।

मंगल साज पयान को गेह ते प्यारे लिये चहिलो पग भू पर।
देखत लाल असभ्य भयो निकटे मड आगम को जैसे कूबर।।
ता छन व्याकुल कुन्वरि है आंसुवा वरे टूटि उरोज दुहू पर।
ज्यों अभरोष चढ़ावे मनो दृग मोतिन माल महेश के ऊपर।।[2]

कभी-कभी कवि कल्पना से ऐसे बिम्ब की भी समायोजना करते हैं जिनमें करुणा का भाव सरस सौन्दर्य की भाँति झिलमिलाता हुआ बिम्ब के सौन्दर्य को अनन्त गुणित कर देता है। चिन्तामणि का एक अत्यन्त मनोरम भाव बिम्ब देखिए —

सूरज सन मुख जल बसत सहत सदा दुख कंज।
कुन्वरि वदन सायुज्य को करत मनहु तप कंज।।[3]

1: क0क0त0 6/113

2: क0क0त0 6/201

3: क0क0त0 3/73

यहाँ वक्ता नायक-नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहा है । उसका कहना है कि प्रिये यह कमल हठ योगी की भाँति सूर्योपासना और जल निवास जैसे कष्ट-साध्य तप-प्रयोग, इसलिए कर रहा है कि तुम्हारे चरणों का सामीप्य प्राप्त कर सके (समता तो दुर्लभ ही है समीप तक पहुँचना भी तप का फल होगा) उल्लेख्य है कि जब कमल घोर तप करके भी केवल चरणों के समीप आ सकेगा तो नायिका के मुख सौन्दर्य के लिये संसार में दूसरा उपमान कहाँ मिलेगा ? किन्तु बिम्ब का संकेत यहीं समाप्त नहीं होता । इस प्रशंसा के पीछे सम्भवतः मानिनी के मान मोचन की शोभा भी झिलमिला रही है । जिस प्रकार कमल सूर्य के सम्मुख तप कर रहा है उसी प्रकार नायक विरह सूर्य के ताप से उत्तप्त है और कमल की ही भाँति उसके नेत्र जल में निवास कर रहे हैं इस प्रकार सघन दुःख झेलने वाले नायक की व्यथा जान कर भी मानिनी क्या अपने चरणों के समीप तक न आने देगी ? इसी भाव को कवि की कल्पना ने अप्रस्तुत विधान द्वारा असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा के रूप में प्रस्तुत किया है यह अतिशय चमत्कार जनक है ।

इस प्रकार के असंख्य इन्द्रिय विषयी एवं भाव बिम्ब चिंतामणि की कृतियों में अनायास ही प्राप्त होते हैं किन्तु हमने नमूने के तौर पर कुछ बिम्बों को प्रस्तुत करके इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि वे बिम्ब कवि मानस पर पड़ी हुई वस्तुओं, भावों, कार्य व्यापारों एवं परिस्थितियों की प्रति छवियाँ हैं जिन्हें कवि का व्यक्ति वैशिष्ट्य नवीन भंगिमा प्रदान करता है क्योंकि वस्तु व्यापार आदि का स्वरूप लगभग स्थिर होता है । केवल ग्राहक की अपनी विशेष मनः स्थिति उसको विशिष्ट रूप में ग्रहण करती है ।

वास्तव में बिम्ब विधान की चर्चा कवि के भावकल्प पक्ष की चर्चा है किन्तु अभिव्यक्ति पक्ष में उसका संग्रह इसलिये किया गया है कि मूर्तता की ही अभिव्यक्ति सम्भव है । अतः अब अभिव्यक्ति - कल्पना - पर विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

<u>कल्पना व्यापार :-</u>

कल्पना कवि की मानसी क्रिया है जिसमें कवि की प्रतिभा का विशेष मूल्य होता है । कवि जब काव्य रचना में प्रवृत्त होता है तो कल्पना उसके

मनोजगत में पूर्व संचित अनुभव, संवेदन आदि का मंथन प्रारम्भ करती है और जो कुछ उसे नवनीत की भाँति सार तत्व के रूप में प्राप्त होता है उसे अभिव्यंजन के लिये अलंकृत भाषा को सौंप देती है । इसीलिए काव्य कृति की पठनीयता का माप दंड कल्पना की मननीयता में ही प्राप्त हो सकता है क्योंकि कल्पना का धनी कवि कुछ रंगों एवं रेखाओं से पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर लेता है और बिखरे हुए खंडों को समेट कर समग्रता प्रदान करता है ।

कल्पना का व्यापार क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । "जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि" की उक्ति इस बात का प्रमाण है कि कल्पना गोचर, अगोचर, स्थूल, सूक्ष्म, बाह्य, आन्तर आदि सभी स्तरों पर सक्रिय रहती है । इतना ही नहीं अभिव्यक्ति के उपादान चयन में भी कल्पना पूरी तरह सक्रिय होती है। इसीलिये शब्दों के चयन से लेकर उन्हें नूतन अर्थवत्ता प्रदान करने तक और अलंकारों की संश्लिष्ट योजना तक में कल्पना निरन्तर सक्रिय दृष्टिगत होती है । अतः कल्पना के संबन्ध में कुछ निवेदन करना मानो काव्य के सर्वांग पर विवेचन करना है किन्तु विवेचन की सुगमता की दृष्टि से हम अभिव्यंजना निष्ठ कल्पना पर ही विचार प्रस्तुत करना चाहेंगे ।

चिंतामणि की कल्पना शक्ति के प्रसार के लिये पर्याप्त अवकाश रहा । जहाँ वे एक ओर रीति काव्य के कठोर शास्त्रीय बन्धन में पड़कर अपनी कल्पना को सीमित संकुचित क्षेत्र में ही बाजीगरी दिखाने के लिये बाध्य करते रहे हैं वहीं कृष्ण चरित्र जैसे काव्य में उनकी कल्पना को उन्मुक्त और उर्वर वातावरण मिला है ? फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उनका आचार्यत्व उनके कवित्व पर आच्छन्न छाया रहा है और इसलिये रीति ग्रन्थों के प्रभाव ने कल्पना शक्ति को नियोजित कर दिया है । ऐसी दशा में उनकी कारयित्री कल्पना की अपेक्षा पुनरुत्पादक कल्पना अधिक सक्रिय रही है ।

जहाँ तक कल्पना के क्षेत्र का प्रश्न है चिंतामणि की रचनाओं में शृंगार भक्ति, नीति, और कर्म सौन्दर्य आदि जीवन के अनेक पक्षों को पर्याप्त अवसर मिला है । हम शृंगार को ही लें – शृंगार में नायक-नायिका भेद के अन्तर्गत

नायिकाओं के रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति पर इन्होंने विशेष बल दिया है और व परम्परा से प्राप्त सौन्दर्यांकन को अपनी वैयक्तिक रुचि एवं अनुभूति से अधिक पैना बनाने का प्रयास किया है ।

क्रिया व्यापारों के चित्रण में कवि का वैदग्ध्य खुल कर खेलने का अवसर पा सका है । इसी प्रकार अनुभावों, संचारियों एवं संयोग वियोग की दशाओं के भावात्मक चित्रों में कल्पना व्यापार अत्यन्त आकर्षक बन सका है ।

रीतिकालीन परिवेश में शृंगार रस के आलम्बन के रूप में नायक-नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन के असंख्य प्रयोग मिलते हैं किन्तु उनमें प्रायः परम्परा प्रसिद्ध और शास्त्रीय नियमों के घेरे में बंधे हुए पुराने प्रतिमानों के प्रयोग से कल्पना की परिधि सीमित हो गई है और पुनरुत्पादक कल्पना ही सक्रिय हो सकी है किन्तु कहीं-कहीं कवि की प्रतिभा लीक छोड़ कर नये प्रतिमानों की प्रस्तुत सृष्टि करने में समर्थ हुई है, वहाँ कारयित्री कल्पना को उन्मुक्त अवसर मिला है । इसके साथ ही पुनरुत्पादक कल्पना में भी भंगिमा के द्वारा कारयित्री कल्पना का समन्वय कर दिया गया है । आचार्य चिंतामणि भी रीतिकाल के परिवेश से पूर्णतः संपृक्त हैं और इसलिए उनकी रचनाओं में भी परम्परा सिद्ध प्रतिमानों का बहुल प्रयोग दृष्टिगत होता है किन्तु इतना होते हुए भी उनकी कारयित्री प्रतिभा का अपूर्व कौशल अनायास ही उपलब्ध हो जाता है । प्रस्तुत रूप सृष्टि का एक ऐसा ही चित्र देखिए -

> बदन में विधु-कान्ति गोरी की न जानी जाति,
>
> गोरे गात गोरी सारी केसरि के रंग की ।
>
> चिंतामनि कहै चारु चन्द्रिका सी छाती लसै,
>
> निहि नखतावली मुकुत पंगति मंग की ।
>
> मानो ओस बुंद लाल बिम्ब पर बिलसतु,
>
> अधर की आभा मुकताहल के संग की ।
>
> बय पर केसर रंग अंगन अनूप ओप,
>
> अंगन में ठाढ़ी मानो अंगना अनंग की ।[1]

1: क० क० त० 6/70

इसमें तीन चरणों में क्रमशः शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन है । चम्पक वर्णी नायिका के शरीर पर केसरिया रंग की सारी एक दम घुल मिल गई है । इसी प्रकार मुस्कान और दांतों की शोभा का वर्णन हास्य रस की धवलता के लिए प्रयुक्त हुआ है । मुस्कुराहट के क्षणों में हंसी की चन्द्रिका से उपमा परम्परा सिद्ध है किन्तु उसके बीच मोती से दांतों को नक्षतावली कहना कवि की प्रौढ़ोक्ति है । इसी प्रकार अधरों की बिम्बा फल की उपमा चिर परिचित है किन्तु दांतों को बिम्बा फल पर पड़े ओस बिन्दु से उपमित करना निश्चय ही चिंतामणि की अपनी सूक्ति है । इतना ही नहीं प्रथम पंक्ति में तद्गुण अलंकार और द्वितीय तृतीय में उत्प्रेक्षा का योग कल्पना की कान्ति बढ़ाने में सहायक हुआ है । यहाँ पर पुनरुत्पादक और कारयित्री कल्पना की गंगा-जमुनी आभा है किन्तु अन्तिम पंक्ति में कवि ने नितान्त मौलिक कल्पना प्रस्तुत की है । नायिका के अंगों की अनुपम ज्योति ऐसी प्रतीत हो रही है मानों उसके अंग प्रत्यंग के माध्यम से अनंग की अंगना उतर आयी हो । जहाँ एक ओर नायिका को [illegible] से रति से उपमित किया गया है तो वहाँ दूसरी ओर उसे अनंग की अंगना कह कर दो विलक्षण संकेत किये गये हैं । प्रथम तो यह कि यह नायिका वास्तव में अनंग की अंगना है । जिसे देखकर कामोद्दीपन नितांत स्वाभाविक है दूसरे ओर इस अनिन्द्य सुन्दरी का भोक्ता कोई काम देव जैसा ही हो सकता है कुल मिलाकर नायिका का सौन्दर्यातिशय व्यंग्य है किन्तु यह सब कुछ कवि की अपूर्व कारयित्री प्रतिभा से ही सम्भव हो सका है ।

इसी प्रकार वासन्ती शोभा में कृष्ण से मिलने के लिये सखियों के साथ प्रस्थान करती हुई राधा के सौन्दर्य को प्रकृति की पृष्ठ भूमि में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि राधा वसंत पंचमी हो गई है और वसन्त पंचमी राधा। कल्पना की उर्वर भूमिका में वासन्ती प्रकृति को राधा के अंग-प्रत्यंग के साथ समायोजित कर दिया गया है फिर वसन्त की उत्फुल्लता, कोयल की कूक, झूमती हवा और कुछ अलसाया भाव राधा के नवोढ़ाभिन्न यौवना भाव से कितना मेल खाता है यह सहृदयों के लिये अपरीक्षित नहीं है । वसन्त यदि काम सहचर है तो वसन्त की श्री [illegible] की सहचरी होने के लिए प्रस्थित होती हुई क्यों नहीं वासन्ती वातावरण से ओत-प्रोत हो सकेगी ? कवि कल्पना की प्रौढ़

का यह मनोरम चित्र इस प्रकार है —

राधा के अंग अंग छबि त्यौं रुचिर बासु,
गुलाबन के रंग छबि मोरगनि सों भिरी ।
नितहि बुरावति सु कोकिल की बानी लगी,
कानन चितौनि प्रेम मद की मनो भिरी ।
अंगनामनि मोही है रसाल मौर कुंजनि मैं,
अलिन के गुंजन सुमानो पुनिछा गिरी ।
बालन के बीच तरुनाई आई सिसिर मैं,
माघ सुदी पंचमी मैं ज्यौं बसन्त की सिरी ।[1]

एक और चित्र देखिये :—

काहू को पूरब पुन्य लता सुरी बेलि अपूरब तू उत ही है ।
सोने सो जाको स्वरूप सबै कर पल्लव कांति कहा उमही है ।
फूल हँसी फल हैं कुच जाहि के हाथ लगै सुकृती सो सही है ।
आली कियौ सुनिकैं बतियां मुसकाइ तिया मुख नाइ रही है ।[2]

नायिका को जन्मांतरीय पुण्य से उद्भूत लता कहा गया और फिर इस कथन को सांगोपांग सिद्ध करने के लिये हाथों को पल्लव फूल को हँसी और फल को स्तन बतलाया गया है । यदि इतना ही कहकर कवि समाप्त कर देता तो शायद कल्पना की अपेक्षा आलंकारिता को अधिक अवकाश मिलता किन्तु इस विदित यौवना नायिका से सखियों ने जब यह कहा कि यह कुच रूपी फल जिसके हाथ लगेगा वह निश्चितही अनन्त पुण्यशाली होगा तो नायिका ने जिस प्रकार मुस्कराते हुए मुख नीचा कर लिया उसी में कल्पना का सौन्दर्य झलक पड़ा क्योंकि एक ओर नायिका की लज्जा व्यंग्य है तो दूसरी ओर मुस्कराकर सिर झुकाना और सखियों के कथन का प्रतिवाद न करना उसकी रति कामना को झलका देता है । "मौनं स्वीकार लक्षणं" के आधार पर यह संकेत भी अप्रासंगिक नहीं है कि नायिका स्वयं भी विदित यौवना के साथ रस गर्विता है । नायिका को पूरब पुण्य की लता कहना और अस्थायित नायक को सुकृती कहना योग्य से योग्य संगम का मधुर संकेत

1: क० क० म० 6/80 2: क० क० म० 6/85

को स्वीकृति क्यों न दें ?

एक और अछूती कल्पना का चित्र देखिये —

स्याम जू के सनेह की स्यामलता में रँगे,
    स्यामलता में सब रीझि रहनो अगु है ।
चिंतामनि कहे जू और बरन की ढोर,
    मन ऐसो कछु सुखमा को मधुर अदगु है ।
पाटी है सिंगार घन घटन के बीच,
    मैं मंजुल सीस फूल बाल रवि लाल नगु है ।
सेंदुर सुहाग लिये माँग राग भरे अति,
    मानो पिय मनु के गमागम को मगु है ।[1]

राधा के नख-शिख वर्णन के प्रसंग का यह छन्द अत्यन्त मनोरम है । श्याम के स्नेह में डूबी हुई राधा के श्याम केश जहाँ राधा के मन में श्रीकृष्ण के अनुराग को प्रगट करते हैं वहाँ बालों के माध्यम से उन्हें अपने सिर माथे चढ़ाने का अनायास संकेत दे देते हैं । चिन्तामणि इस सौन्दर्य की आकर्षणीयता का संकेत करते हुए उत्प्रेक्षा के माध्यम से एक अतिशय मनोरम कल्पना चित्र प्रस्तुत करते हैं दो भागों में बटी हुई केश राशि की पाटी मानों शृंगार रस के बादलों की घटा है और उसके बीच शीशफूल लाल नग के साथ ऐसा शोभित हो रहा है मानो सूर्य अपनी किरणों का प्रसार कर रहा हो और इस बीच में रागरंजित सिन्दूर ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे मानों प्रियतम के मन के आने जाने के लिये कोई मार्ग बनाया गया हो जहाँ परिणीता पतिव्रता के पवित्र सौन्दर्य की जो झांकी प्रस्तुत की गई है और सिन्दूर की रेखा को जिस रास्ते का रूप दिया गया है उसमें जहाँ एक ओर सौन्दर्यातिशय व्यंग्य है वहाँ नायिका का शीश प्रियतम के चरणों में निछावर होने के लिये प्रस्तुत है यह भी अनायास ही ध्वनित हो जाता है । कवि की उर्वर कल्पना का इससे श्रेष्ठ उदाहरण मिलना प्रायः कम सम्भव है ।

1: क0क0त0 5/223

कवि का मन केवल नारी सौन्दर्य में ही रमा हो ऐसा नहीं वरन नर सौन्दर्य चित्रण में भी कवि की कल्पना निर्बाध रूप से सक्रिय रही है । श्री कृष्ण के रूप वर्णन में पुनरुक्तवादक और कारयित्री प्रतिभा के गठजोड़ का मनोरम चित्र देखिये —

माथे मोर चन्द्रिका अंग वानिप तरंग,
  व्रज अंगना सनेह संग झलकत लाल में ।
मन को पकोर लेत कुन्डल मकर मनों,
  अमल कलिंदी जल देह छवि जाल में ।
चिंतामनि निकरच बखान मानो हेम रेख,
  पीत पट ओढ़े वपु दीपति विसाल में ।
श्यामल गुपाल तन विलसे मुकुत माल,
  ओस बिन्दु माल मानों तरुन तमाल में ।[1]

यहाँ मोर मुकुट मोहित श्री कृष्ण के अंगों में कान्ति के जिस तरंग की कल्पना की गयी है उसमें व्रजांगनाओं के स्नेह का संयु आभा को द्विगुणित करने में समर्थ हुआ है । किसी के स्नेह की वर्षा से प्रेमी के सौन्दर्य में निखार आ जाना अस्वाभाविक नहीं है किन्तु कल्पना के चमत्कार ने जिस सौन्दर्य की धारा का समायोजन किया है उसमें मकराकृत कुन्डल को यमुना में स्थित मकर बनाकर मन को पकड़ लेने वाला सिद्ध करके अपूर्व संगति बनाई है । पीताम्बर को कसौटी की स्वर्ण रेखा बनाना पुनरुक्तवादक कल्पना है किन्तु गोपाल के शरीर पर मोतियों की माला को तरुण तमाल पर ओस बिन्दु की झलक से उपमित करना मौलिक सूझ है ।

इसी प्रकार नवीन उपमाओं की योजना में भी कवि की कल्पना की मनोरमा छटा देखने को मिलती है । श्री कृष्ण के माथे पर कुंकुम का तिलक और शालिग्राम शिला पर सुवर्ण की रेखा में न केवल वर्ण साम्य है अपितु श्री कृष्ण और शालिग्राम में ईश्वरत्व की दृष्टि से जो अभेद संबन्ध है वह कल्पना के सहारे दिव्यता को प्राप्त करता है । वैसे इस छन्द में सभी कल्पनायें एक से एक अपूर्व हैं और नूतन उद्भावनाओं की होड़ सी लगी हुई है —

---

1. कृष्ण चरित्र 12/25

इन्दु पर नील धनु जावर ज्यों इन्द्र धनु,
मदन चिकुर मोर मुकुट पिवार में ।
नील मनि दरपन चन्द्रिका झलक छवि,
कोमल कपोलन की झांकी सुकुमार में ।
चिंतामनि कै मानो बीजुरी बादर बीत,
अम्बर सोहत तनु सुखमा उदार में, ।
सालिग्राम सिला पर सुवरन रेख सम,
कान्ह जू के कंमकुमा को तिलक लिलार में ।[1]

उल्लेख्य है कि इस प्रकार के रूप - चित्रण में कारयित्री कल्पना के चमत्कार से ही उत्कर्ष का सहज समावेश हो जाता है किन्तु श्रृंगार के अंकलन में प्रसंग-योजना को निर्बाध अवसर प्राप्त होता है जो कल्पना के लिए उर्वर भूमिका प्रस्तुत करता है । इस प्रकार के श्रृंगार जिनमें नायक - नायिकाओं की वर्णित चेष्टाएँ, हाव- अनुभाव और संयोग -वियोग संबन्धी अवस्थाओं की स्वाभाविक छटा होती है और उसमें कहीं चातुर्य और कहीं भोलापन कहीं चमत्कार और कहीं स्वभावोक्ति की योजना द्वारा कारयित्री प्रतिभा निखर उठती है । एक प्रसंग योजना देखिये —

ग्वारि सभा नहि ठाढ़ी ही द्वार दिखाइ दई कहुं आनि कन्हाई ।
रीझि रही छिबवारि बिलोकि, भरे सब अंग अनूप निकाई ।।
नैन कटाक्ष परे हरि के मनि मीन मनोहर बींस चलाई ।
प्रेम तड़ाग में बूड़ो हियो जल के छलके अंखियाँ भरि आई ।।

अनेक ग्वालिनों के बीच द्वार पर एक गोपी खड़ी है । श्री कृष्ण अचानक दिखाई पड़ गए । उस अनुपम सौन्दर्य को देखकर वह प्रेम विह्वल हो उठी और उस पर से श्री कृष्ण की तिरछी चितवन ने मानों उसके मन रूपी मीन को बेध दिया और फिर तो हृदय प्रेम के जलाशय में डूब गया और उससे जो जल छलका उससे आँखें भर आयीं । गोपी की आँखों में प्रेमाश्रु के आविर्भाव की दृष्टि से जो कारण योजना की गई है वह मौलिकता के साथ अत्यन्त संगत भी है किन्तु आँखें भर आने का एक दूसरा संकेत भी इसमें छिपा हुआ है वह है ग्वालिनों के बीच खड़ी होने के कारण श्री कृष्ण के से न मिलने की बेबसी । ऐसी स्थिति

1: कृष्ण चरित्र 5/28 2: कृष्ण चरित्र 4/57

में आँखों के भर आने में बेबसी को कारण मानना भी कम महत्त्व पूर्ण नहीं है। हृदय के डूबने में बेहोशी और आँखों के भर आने में अश्रु जैसे अनुभावों की योजना से कल्पना और अधिक उर्वर हो उठी है।

इसी प्रकार अन्य संभोग दुखिता नायिका के रोष कषायित नयनों में अश्रु बिन्दु की उपमा खंजन की चोंच में अनार के दाने से करने में जहाँ उपमान की मौलिक योजना है वहीं अश्रु बिन्दु के नयनों में रक्तिमा के प्रति संक्रान्त हो जाने से जो लाली आ गई है उसका भी सफल अभिव्यंजन हो रहा है। आँखों की कोर में आँसू के बूँद का टिका रहना भी चित्रित हो रहा है और आगे बढ़ कर कोई तो खून के आँसू का संकेत भी पाया जा सकता है।

> रोति रहे मनि लाल कहूँ रमि रहां दुख बाल वियोग मढे हैं।
> आगे भरे अरुणोदय होत सरोज लिगा छबि बैन कढे हैं।।
> लाल भये दृग कोरनि आनि के यों अश्रुवान के बुन्द रहे हैं।
> रोवन चोंच मनों मिथिले चित्र खंजन दाड़िम बीज रहे हैं।।[1]

व्यापार की मनोरम योजना की दृष्टि से एक मध्या नायिका के मानसिक उलझन का एक चित्र देखिये। एक ओर प्रिय को देखने, मिलने और बातें करने को जी ललक रहा है और दूसरी ओर लज्जा बरबस रोक रही है। इस अन्तर्द्वन्द्व में पंडी कवि की कल्पना का निखार देखिये —

> देखो चहै पिय को बिन ओट बनै न कछु बिन घूघट खोले।
> गावै न मंग छुट्यो पति को सकुचन करे कछु अंग अमोले।।
> चाहति बात कहयो न कह्यो पर जात रह्यो न रहै अन बोले।
> झूलति है मन प्रान पियारी को लाज मनोज के बीच हिंडोले।।[2]

आलस्य का एक दूसरा चित्र देखिये जिसमें रति श्रान्ता नायिका की शोभा का सुन्दर वर्णन है और कवि की दृष्टि अधखुली पलकों की शोभा पर टिकी हुई है। व्यापार और सौन्दर्य के सम्मिलित कल्पना से यह चित्र मनोरम बन पड़ा है :—

1: का०क०त० 9/113

2: वही 6/96

टूटे हार मिटे है सिंगार सब अमनि पै
कोटिन सिंगारन की अंग झलकन की
चिंतामनि कहै अहो कोये कीह जात,
गोरे इन्दु से बदन पर छबि अलकन की
गुरुजनि लखि हैं अगौछ से सलोनी पग,
लागी पीकी ललित कपोल चमकन की ।
रागि रति रंग पीत संग लाज खुली कैसी,
खुली छबि आजु अधखुली पलकन की ।[1]

इस प्रकार के अगणित कल्पनाओं की दीप्ति चिन्तामणि की रचनाओं में देखी जा सकती है । परम्परा मुक्त उपमानों के आधार पर नवीन उपमान योजना और शास्त्रीयता के मर्यादा में भी मौलिक उद्भावना कवि की नवोन्मेष शालिनी कल्पना का ही परिणाम है । अतः यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि चिंतामणि कल्पना के धनी हैं और उनका कवि कर्म कल्पना की दृष्टि से अत्यन्त मौलिक एवं श्रेष्ठ है ।

<u>अलंकार योजना—</u>

कवि के मानस पटल पर अंकित अनुभूति-संवेदन जब कल्पना की रंगीनी से रूप ग्रहण करने लगते हैं तो वे भाषा का आश्रय लेते हैं किन्तु भावाभाव के अनुरूप बनने के लिए अलंकारों की टकसाल से होकर ही निकलती है तभी उसमें एक नई कान्ति का समावेश हो जाता है । इस दृष्टि से अलंकारों का विशेष महत्त्व है कि वे अभिव्यंजना और अभिव्यंजन दोनों के उपकारक बनते हैं ।

चिंतामणि की अलंकार योजना का शास्त्रीय दृष्टि से समग्र मूल्यांकन उनके आचार्यत्व में किया जायगा । यहाँ केवल कुछ ऐसे मनोरम स्थलों को प्रस्तुत करना है जहाँ अलंकार योजना से काव्य सौन्दर्य निखर उठा है ।

अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा अलंकार सम्भावनाओं का भंडार है । इसलिये उत्प्रेक्षा में कल्पना को पूर्ण अवकाश प्राप्त होता है । जहाँ कवि की कल्पना

1: [illegible]6/7।

इसी प्रकार मोर मुकुट से सुशोभित कुटिल कुन्तलों से अलंकृत श्री कृष्ण के मुख की शोभा ऐसी प्रतीत हो रही है मानों चन्द्र मंडल के ऊपर इन्द्र धनुष से संयुक्त काले मेघ छा गये हैं। उल्लेखनीय है कि इन्द्र धनुष दिन में निकला करता है किन्तु यहाँ चन्द्रमा के साथ इन्द्र धनुष की चर्चा एक ऐसी विलक्षण चर्चा समायोजन है जिसमें असम्भव को दिखाने की क्षमता है। छन्द इस प्रकार है —

लोल निरन्तर बाढ़ि कृपानल हैं बिगरे निगमो चषि हारे
स्याम को सोभन रूप कहा कह बावत कोटि अनंग विचारे
आनन ऊपर मोर किरीट सुचारु विराजत घूँघर वारे
इन्द्र के चाप समेत मनो बिधु मंडल ऊपर बादर कारे[1]

पर्यायोक्ति अलंकार में भंगिमा के साथ कथ्य अर्थ की अभिव्यक्ति की जाती है। नायिका के नेत्र में लज्जा भी है जो क्रमशः रतिकामना का बिम्ब प्रस्तुत कर रहे हैं। बोधा की उक्ति है —

उर की औषध मतमोकी बारी अलि चित चैन।
अलकें हैं वे ललित हैं साधु करो हैं नैन।।[2]

यहाँ नयनों की लज्जाशीलता और आलस्य का सम्मिलन अनायास ही उनके लालित्य को बढ़ा रहा है।

अर्थान्तरन्यास का यह उदाहरण भी कम महत्व पूर्ण नहीं है। कमलिनी का कुल भौंरों से भरा होता है। कवि की कल्पना एक नया चमत्कार प्रस्तुत करती है। पति दूर हो तो स्त्री को छुट्टी छूट मिल जाती है। फिर जब पति दूर है (सूर्य तथा अन्धा) कमलनी मधुपों (विलासियों) को मधु का दान क्यों न दें।

सुहृन की गति मन्दता लिखन साधु और लेत।
लखत दूर पति कमलिनी मधुपन को मधु देत।।[3]

1: क०क०स० 7/36 3: क०क०स० 3/250

2: 4: वही 3/282

की भाषा संस्कृत निष्ठ ब्रजभाषा है उसमें शब्दों की तोड़ मरोड़ कम है । कवि के व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा भी गम्भीर और संयत है । किन्तु भावों के अनुरूप भाषा भी यथा सम्भव ललित मधुर होती गई है ।

अतः प्राकृतिक नाद सौन्दर्य का एक शब्द चित्र देखिये जिसकी अनुगूंज में नृत्य का सा आनन्द है । वर्ण मैत्री के योग से पादान्तरगत तुक की समायोजना जैसे मंडन, खंडन, विहंडन, सागर, नागर, आगर, उजागर आदि का अतिशय महत्व है ।

जगत के मंडन प्रबल दल खंडन,
विपत्ति के विहंडन प्रचंड तेज देखिये ।
साहस के सागर नरिन्द नैन नागर,
समस्त गुन आगर उजागर जे लेखिये ।
चिंतामनि सुन्दर सकुल सिधि मन्दिर,
भयो दुहुधी पुरन्दर प्रकास पूरे पेखिये ।
दारा साहिलच्छन सो देत दान लच्छन,
जगत के रच्छन विचच्छन विसेखिये ।[1]

इसी प्रकार आनुप्रासिक वर्ण योजना का यह दूसरा छन्द भी प्रस्तुत है -

परम मधुर मूरति मधुर बचन मधुर मुसक्यान
नील नलिन लोचन नवल नील नलिन निभ मान ।।[2]

श्री कृष्ण की रूप माधुरी की भांति भाषा भी मानों माधुरी मंडित हो गई है म र तथा न ल की अनेक बार आवृत्ति से वृत्यनुप्रास का अपूर्व सौन्दर्य निखर उठा है ।

कहीं-कहीं कृत्रिम भाषा के द्वारा वीर आदि रसों को डिंगल भाषा के समानान्तर रूप देने का प्रयास किया गया है किन्तु वह चिंतामणि की स्वाभाविक भाषा का निदर्शन नहीं है ।

1: रस विलास अष्टम परिच्छेद 429

2: कृष्ण चरित 6/46

भाषागत वैशिष्ट्य केवल शब्दों के चुनाव और उनके सजावट में नहीं है अपितु उनकी अर्थ गर्भिता में है जिसका मूल श्रेय लक्षणा और व्यंजना को है। चिंतामणि का इस प्रकार के रचनात्मक प्रसंगों में भी भाषा प्रयोग में सफलता मिली है। इस प्रकरण के पूर्व उद्धृत छन्द इसके साक्षी हैं। इस प्रसंग में कवि को ऐसी सिद्धहस्तता प्राप्त है कि वह एक-एक शब्द के प्रयोग से चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ हुआ है। स्वतः सम्भवी वस्तु से स्वतः सम्भवी वस्तु के द्योतक का यह प्रसंग देखिये —

लोग जगत है स्वार्थ पर धरत नाम को नेम।
तू अब कीर हरि 'साहजिक' दीन बन्धु से प्रेम।।[1]

यहाँ 'साहजिक' शब्द विशेष महत्व रखता है लोग स्वार्थ के वशीभूत होकर नाम का नियम ग्रहण करते हैं किन्तु दीन बन्धु परमात्मा से प्रेम करना ही उत्तम है क्योंकि वह अकारण करुणा करने वाले हैं इसलिये वस्तु से वस्तु द्योतकत्व का मूल कारण है 'साहजिक' शब्द। क्योंकि साहजिक का अर्थ जन्म जात भी होता है और अकारण भी। इस प्रकार चिंतामणि की कला भाषा, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब आदि के समन्वय से अत्यन्त सुरम्य और समर्थ हो उठी है। चिंतामणि की कलात्मकता विशेषतः शब्दों पर निर्भर है और भावों की दृष्टि से सफल भी है।

xx0xx

1: [illegible] 6/37

2: चिन्तामणि रस भाव योजना

---

* चिन्तामणि की रस भाव योजना *

काव्य में का आनन्ददायक तत्व भाव है जो अपने उत्कर्ष में आस्वाद-
नीय बनकर रसकी संज्ञा प्राप्त करता है । जब हम रस के सामान्य तत्वों पर
विचार करते हैं तो प्रधान रूप से आलम्बन और आश्रय का महत्व दृष्टिगत
होता है ।

जहाँ तक चिन्तामणि का प्रश्न है उनकी रस योजना के आलम्बन प्रायः
दो प्रकार के दिखाई पड़ते हैं । एक सामान्य प्राणी जिसका जीवन लौकिकता से
ओत-प्रोत है और दूसरे वे हैं जिनमें लौकिकता के साथ दिव्यता विद्यमान है ।
उदाहरणार्थ कहीं सामान्य लौकिक नायक- नायिका के प्रणय व्यापार की चर्चा से
लौकिक शृंगार की निष्पत्ति दिखाई देती है तो कहीं राधा-कृष्ण का दाम्पत्य प्रणय
अलौकिक धरातल का संस्पर्श करता है । इसी प्रकार वात्सल्य आदि के भी
आलम्बन भेद देखे गये हैं । ऐसी स्थिति में चिन्तामणि के भाव तत्व की समा-
लोचना से पूर्व यह उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है कि राधा-कृष्ण आदि के
आलम्बनत्व के कारण इनका शृंगार बहुधा भक्ति शृंगार में परिणत हो गया है ।
इसी प्रकार वात्सल्य भक्ति वात्सल्य में ।

इस प्रकरण में रस भाव योजना पर विचार करते हुए इस बात का
ध्यान रखा गया है कि शृंगार में भक्ति या भक्ति में शृंगार आदि का अन्तरावलम्बन
न हो और यथासम्भव प्रस्तुत रसास्वाद का विवेचन सीमा में ही बंधा रहे किन्तु
यदि विचार करके देखें तो शृंगार वात्सल्य और भक्ति तीनों भक्ति से अनुप्राणित
दिखाई पड़ते हैं उसका मूल कारण यह है कि भक्ति में लौकिक अलौकिक जैसा भेद
प्रायः लुप्त हो जाता है । अस्तु चिन्तामणि की भाव रस योजना की दृष्टि से
क्रमशः शृंगार, भक्ति, वात्सल्य और वीर रसों का उल्लेख किया जा रहा है अन्य
रसों का उल्लेख किया जा रहा है अन्य रसों के अधिक उदाहरण प्राप्त नहीं होते
इस-लिए उन सबका उल्लेख आचार्य पक्ष में किया जायेगा ।

रस काव्य की आत्मा और आनन्द का मूल स्रोत है । शृंगार रस तो
सर्वात्मना आनन्द स्वरूप है । रीतिकालीन परिप्रेक्ष्य में रस या भाव के चित्रण
को अधिक अवसर मिला है । इसका कारण यह है कि कवियों ने जीवन की
रंगीनियों को निश्चिंत भाव से व्यक्त-अव्यक्त करने का प्रयास किया है ।

<u>शृंगार रस :-</u>

रीतिकाल का सर्वाधिक प्रिय और वर्णित रस शृंगार है। शृंगार में ही जीवन की वास्तविक और सहज आकांक्षाओं को उन्मुक्त रूप से अभिव्यक्ति मिली है। अतः यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन काव्य का उपवन शृंगार की रस-माधुरी से आमोदित है।

रीतिकाल का कवि नागर सभ्यता से प्रभावित है। उसका जीवन नैतिकता और आध्यात्मिकता से दूर विलासिता से अनुप्राणित रहा है इसीलिए उस युग का कवि नागर सभ्यता से पूर्णतः प्रभावित है। सामंती जीवन में कला की उपासना अत्यन्त स्वाभाविक थी। लौकिकता एवं लौकिक सुखों के प्रति आकांक्षा ने कवि को परिस्थितियों से संघर्ष करने की अपेक्षा समझौते के लिए प्रोत्साहित किया। दरबारी वातावरण से अभिभूत होने के कारण न उसकी कल्पना उन्मुक्त ~~होने के कारण~~ उड़ान भरने में समर्थ हुई और न वह सामान्य जन जीवन में घुलमिल सका।

आश्रयदाता की रुचि के अनुरूप वह स्वयं ही सौन्दर्य-प्रिय रसिक और विलासी बन गया। उसकी कल्पना एक सीमित क्षेत्र में ही बाजीगरी दिखाने लगी और उसका प्रतिभा-प्रदर्शन श्रोताओं या पाठकों को विस्मय विमुग्ध करने में सार्थकता का अनुभव करने लगा।

ऐतिहासिक दृष्टि से रीतिकालीन काव्य भक्तिकाल का उत्तराधिकारी है। अतएव जहाँ एक ओर भक्तिकालीन प्रेरणा भूमि ही रीतिकालीन काव्य की आधार भूमि है वहीं बहुत भोगेच्छा और विलास ने उसे मांसल बना दिया और दिव्यता, शुचिता और आध्यात्मिकता भौतिकता में परिणत हो गई।

स्पष्ट शब्दों में सामन्ती वातावरण की विलासिता एवं कामशास्त्रीय शृंगारिकता ने इतना अभिभूत कर लिया कि राधा और कृष्ण पारमार्थिक धरातल से उतार कर सामान्य स्त्री-पुरुष या नायिका-नायक के रूप में अंकित किये गये। इसलिए इन कवियों के वर्ण्य-विषय मुख्यतः रूप और यौवन के विलास-व्यापार बने।

चिंतामणि के व्यक्तित्व की चर्चा के क्रम में हम कह आये हैं कि वे एक आस्तिक सद् पुरुष थे। इसलिए उनका संस्कारी व्यक्तित्व राधा-कृष्ण के प्रति

भक्ति भावना से ओत-प्रोत रहा है किन्तु उस समय के अभिजात वर्ग की विलासिता और रीतिबद्धता के आग्रह से उन्होंने शृंगार वर्णन में पूरी रुचि ली है । अन्तर केवल यह है कि जहाँ भक्तिकालीन शृंगार को ईश्वरार्पित करके उदात्त एवं पवित्र बनाया गया था वहाँ रीतिकाल में उसे सांसारिकता के रंग में रंग दिया गया । इसीलिए रीतिकाल में न तो भक्ति का भावावेश है और न ईश्वरार्पित आस्था का प्रखर विश्वास । अस्तु, रीतिकालीन दृष्टि विलासमयी एवं रसिकता से पूर्णतः अभिभूत है ।

सुन्दरता काम भावना की आधार भूमि है । रमणी का आकर्षक रूप यदि पुरुष के मन में विक्षोभ उत्पन्न करता है तो पुरुष का ओजस्वी रूप नारी को विचलित कर देता है । इस प्रकार नारी और पुरुष दोनों में रूप का आकर्षण समान रूप से लक्षित होता है तथापि नारी का सौन्दर्य पुरुष को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित करता है । एक बात और ध्यान देने योग्य है कि तत्कालीन नागर संस्कृति में नारी सांसारिक भोग का प्रतीक बन गई थी इसलिए नारी के प्रति पुरुष का आकर्षण अधिक तीव्र है । यही कारण है कि शृंगार रस के आलम्बन व आश्रय के रूप में नायक और नायिका के रूप वर्णन के प्रति आचार्य चिंतामणि का भी पर्याप्त झुकाव रहा है । अतः उनके शृंगार का विवेचन रूप वर्णन से ही आरम्भ किया जाता है ।

<u>नायक रूप वर्णन :-</u>

आलम्बन का रूप सौन्दर्य आश्रय के मन में रति भाव जागृत करने में समर्थ होता है इसीलिए रूप माधुरी के प्रति ब्रजांगनाओं में वैसा ही आकर्षण विद्यमान है जैसा चन्द्रमा के प्रति चकोर के मन में होता है -

कान्ह बदन बिधु सींच सुधा, सींचन चकोरनि प्यास ।
यौं बरसत ब्रज नागरी सब निज सखिन सुनाय ।।[1]

वस्तुतः श्री कृष्ण का सौन्दर्य अपने अलंकृत रूप में इतना आकर्षक है कि

1: कृष्ण चरित 4/38

नायिका वर्णन :-

शृंगारी कवियों में नायिकाओं के अंग-प्रत्यंग के शोभा का वर्णन बहुत रस लेकर किया है। नख से शिख तक की रूप माधुरी का अलंकृत और मनोरम वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही है। इस लघु खंड में दो एक अंश प्रस्तुत करना ही सम्भव है अतः नमूने-तौर पर नेत्र वर्णन का यह अंश देखिये -

महारथी कामदेव के मुख चन्द्र रूपी रथ में जुते हुए मीन अथवा सोने के पिंजड़े जैसी जरतारी सारी में छिपे हुए खंजन अथवा मुख के सुन्दरता रूपी सरोवर में उगे हुए नील कमल जैसे यह नयन, जो नैतिकता नहीं जानते और जो चित्त का चैन चुरा लेने वाले हैं, ऐसे अभिराम हैं कि उनका वर्णन करना भला कब सम्भव है -

अमल कपोल प्रति बिंबन सहित मनि जटित ताटंक चारि चारु छबि चाव है।
चिंतामनि बदन मयंक रथ रचि रुचि मीननते मंजुल है महारथी काम है।
सारी जरतारी हेम पंजर में खंज मुख सुखमा सरोवर के सर सित स्याम है।
चाहे नैन नैन जाने कैसे चैन होय चैन कहाँ लौं कहिये जैसे नैन अभिराम है[1]।

इसी प्रकार स्तनों के वर्णन में कवि की कल्पना ललित प्रकार हो उठी है। जब ब्रह्मा ने यौवन को राज्य दे दिया तो उसने बचपन को देश निकाला देकर फिर से नया राज्य बसाया और रति और काम रूपी दो देवताओं के निवास के लिये स्तन के रूप में मानों सोने के दो मठ बना दिये -

बालापन की निकसी भई बस बाके अयान दै आँखि झुकाये।
जौबन को दियराजु दियो उन आन किये सब काज चुकाये।
चूचक में चमकै मनि छजन के कलसा करि का तनु ठाये।
देवता दै रति मैन के द्वै कुच सोने के दै मठ मानों उठाये।।[2]

रूप का उद्दीपनात्मक महत्व कम नहीं है। आलम्बन की सौन्दर्य माधुरी आश्रय के हृदय में रति भाव जगाने में पर्याप्त सहायक होती है। इसका

1: क०कु०क०त० 6/229

2: वही 6/240

है यहाँ आलम्बन निष्ठ सौन्दर्य प्रकाशन भी उद्दीपन का काम करता है ।

रूप वर्णन से रतिभाव के उद्दीपन का यह चित्र देखिये —

फूले पुंडरीक नैन तारा मधुकर मुख पर,
　　वारि फेरि अति चन्द की निकाई है ।
मोर पच्छ मणिमय खचित मुकुट चारु,
　　चिंतामणि चारु पीत पट चंचलाई है ।
मोतिन की दाम घन दीति अभिराम अंग,
　　अभिनव घन घटा अंग घहराई है ।
लखत ललकि आई छवि की छलकि,
　　राधा प्रेम की ललकि अंखियन है दिखाई है ।[1]

यहाँ श्री कृष्ण के अंग सौन्दर्य को देखकर राधा की आँखों में प्रेम की ललक का उल्लेख राधा के मन में रति भाव की उद्दीप्ति की व्यंजना कर रहा है । अतः रूप का शृंगार रस की दृष्टि से उद्दीपनात्मक महत्व कम नहीं है ।

इसी प्रकार राधा के अलंकृत रूप को देखकर ही कृष्ण के मन में प्रेम का उदय रूप-छटा के उद्दीपनत्व का साक्षी है । देखिए —

चिन्तामणि दिव्य अंगुलेपन रच्यो है राधा,
　　रतन अमोल हार कण्ठ पहिराये हैं ।
कुंवर के कुसुम सुरंग अंग शोभतनि,
　　मन मनमोहन के मोद उमगाये हैं ।[2]

आलम्बन गत रूप और सौन्दर्य प्रकाशन के अतिरिक्त परिवेश भी उद्दीपक होता है जिसमें प्रकृति चित्रण मुख्य होता है । यह प्राकृतिक परिवेश अपनी रमणीयता और मादकता आदि के कारण संयोग में भी उद्दीपन का काम करता है किन्तु वियोग में प्राकृतिक उद्दीपन का काम महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है और संयोग जन्य अनुकूलता प्रतिकूलता में परिणत हो जाती है । विरहिणी राधा को भवन का सारा वातावरण दुःखदायी प्रतीत हो रहा है । छन्द इस

---

1. कृष्ण चरित्र 9/15　　2. कृष्ण चरित्र 9/34

प्रकार है —

बोली गौं विरह आगि कातर राधिका क्यों न,

होत ऐसे घत विरही जन बिहाल हैं ।

दक्षिन अनल देह दहति निकारि चलौ,

आली पीन पराग ते कुसुमन के जाल हैं ।

चिंतामनि कहै ह्यों ह कारे होत जारि जारि,

पिक कुल कोलाहल करत कराल है ।

मधुम मदन आगि फूलित ते मुकुलित,

प्रफुलित अलि कुल कलित रसाल है ।[1]

और विरह की तीव्रता में तो समस्त शीतल उपचार दाहक बन जाते हैं ।

शृंगार रस के अनुभाव चित्रण में भी चिंतामणि को पर्याप्त सफलता मिली है । राधा श्री कृष्ण के परस्पर दर्शन से जिन सात्विक भावों का उल्लेख कवि ने किया है वे वास्तव में बड़े ही स्वाभाविक हैं । लोचन सम्मिलन के साथ चाँदनी प्रकृति की शोभा को देखने में निमग्न राधा में सहसा जिन सात्विक भावों का उदय हुआ उन्हें कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है —

लोचन ललायो प्रमोद जल कंप स्वेद,

पुलक अतन तनु ललित पसाइयो है ।

पीत रंग भयो मुख बैन निकरैन बैन,

रोमित निरखि कछु खेल यौं उपाइयो है ।

देखत कन्हैया हू की वोई गति भई,

उन देखता सत्व देय आपनो दिखाइयों है ।

वचन अगोचर परम आनन्द नन्द नन्दन,

वो वृषभान नन्दिनी निहाइयो है ।[2]

इसी क्रम में कवि ने अन्यत्र भी अनुभावों की योजना की है । बानगी के लिये एक चित्र देखिये —

1: कृष्ण चरित 9/4

2: वही 9/12

लोचन प्रमोद घन सार रवं सौंछ,

पागो मीत गात मैं पुलक कंप गात ते ।

गंध कुंज पहुँच प्रसेद कन मोतिन मैं,

लय विवरनता विनय अवदान ते ।

चिंतामनि कहै मनुक सुरंग भीति वाला,

करी मोहित मधुर मुख बात ते ।

सरस बचन रचना है उल्लसित,

सुललित वर देवता कृपा करा छवाते ।[1]

शृंगार के सात्विक अनुभाव की योजना में भी चिंतामनि ने सफल प्रयास किया है —

सुन्दरी बिलोकि पट ओट मुसक्यानि इ सुधा,

सींचि कीर नेह मनो बेलि उलहाई है ।

राधा मन मधुप के मत्त करिबे को,

नवनावीत मुकुन्द फूल फीति उमगाई है ।[2]

शृंगार रस के अंगों के सांकेतिक उल्लेख के बाद शृंगार के संयोग और वियोग पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है । कवि कुल कल्प तरु आदि में तो इसके उदाहरण हैं ही, कृष्ण चरित्र में भी अनेक स्थलों पर कवि ने शास्त्रानुकूल संयोग शृंगार की सभी स्थितियों का उपनिबन्धन किया है । प्रिय से सखी मिलने की उत्कंठा के क्रम में नायिका के अभिसारका अलंकरण-विधान बड़े विस्तार से कृष्ण चरित्र में वर्णित है । शुक्लाभिसारिका राधा पहले अभिसार के निमित्त अपना शृंगार करती है और तदनन्तर अभिसार करके ही कृष्ण से मिलती है । एक तो वह स्वयं गौरवर्ण की है, दूसरे उसके समस्त शृंगार-उपचार करके ही कृष्ण से मिलती है । पक्ष हैं: इसलिये चाँदनी चन्द्रिका की धवलिमा में ही जाना उसके लिए अत्यन्त सुगम है —

अभिसारिका की साज-सज्जा का एक चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है —

1: कृष्ण चरित्र 9/26 तथा 9/28

2: वही 9/27

स्वप्न में श्री कृष्ण का दर्शन करके राधा को जो आनन्द प्राप्त हुआ था वह जागने पर विरह वेदना में परिणत हो गया और राधा अथाह वेदना सागर में डूब गई । इसका शब्द चित्र चिंतामणि ने इस प्रकार से खींचा है —

लखी स्याम सुन्दर खरे, धरे मनोहर गात ।
नैन रूप सींव ऐन मनि, मैन नलिन नव पात ।।
सरद इन्दु सुन्दर बदन, सुखमा सिन्धु अपार ।
सपने में श्री राधिका, देखे नन्द कुमार ।।
कै राधा को सुख निधि, प्रमुदित है मुसुकाइ ।
प्रगटत सुमन अधीनता, हेरे और ललचाइ ।।
निरखि दुहुन के दृगनि में, उमगे हास विलास ।
निकट मदन आन्यो मिथुन, सुख सुमन की आस ।।
लखन ही अंखियाँ खुली, विकल भई वह नारि ।
सघन रंक निधि पाइ ज्यों, ताको भगो मुरारि ।।[1]

इसी प्रकार मान के भी अनेक सुन्दर उदाहरण देखे जा सकते हैं । ईर्ष्या-मान एवं मानापनोदन का एक समन्वित चित्र देखिये —

मान कियो वृषभान लली, अपने अवलोकन लाल खरे ।
उत आइ जुरी सखियाँ सिगरी, पिय आगे सखी एक पीत धरे ।।
मुख मूंदि रहे चितये जु है मान, लखा हँसिके मुख मूंदि रहे ।
मुसक्याइके राधिका आनन्द सों, भुज माल सो लाल लपेटि धरे ।।[2]

इसी प्रकार कृष्ण चरित में भी नायिका के मान का चित्रण किया गया है तथा कृष्ण द्वारा मान मोचन का लम्बा वर्णन मिलता है —

यह सुनि मोर स्याम भौंहें करि टेढ़ी ।
अरविन्द मुखी स्याम और मुंह मोर आई है ।।
जहाँ सुर तरु मूल मनि के वेदिका में किय ।
वालिका में देव सुन्दरि विराई है ।।

1: कृष्ण चरित्र 8/27-31 तक

2: वही 9/63

पौढ़ी मृग नैनी उपधान गा कलोल करि ।

राधिका मधुर छबि उलझाई है ।।

यौं यौं उठि गई प्रान प्यारी चंदि गंक हरि ।

इन प्यारी सखिन की मौगति पाई है ।।[1]

विरह की वास्तविक स्थिति प्रवास में दिखाई पड़ती है । प्रवास में जो वियोग होता है वह प्रवास की सम्पूर्ण अवधि तक व्यथित करता रहता है इस प्रकार की विप्रलम्भ दशा के अनेक चित्र कवि कुल कल्प तरु और शृंगार मंजरी में देखे जा सकते हैं । सांकेतिक रूप में प्रवत्स्यत पतिका एवं प्रवत्स्यत्पतिक की विरह वेदना के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं –

लाल विदेश की साज सजी, सब सुन्दरि के हियरा अकुलानी ।
चाहै कह्यो अहो प्यारे रहो घरि, लाजनि ते न कही मुख बानी ।।
तो लगि को असवार भयो, गुरकाज की यों गुरता अधिकानी ।
नैननि है जल पूरि बह्यो, मृगलोचनी, दुःख समुद्र समानी ।।[2]

× × ×

प्रीतम के परदेस के गौन की, बात परी जब सें तिय काननि ।
और की और भई तबते न, सराहै सखी गन गान के ताननि ।।
भोजन भूख न भोजन भावन, पीवै न पानी न पेम्रति पांननि ।
गेह वे लाल अजो न कहे री, बावरी बात मनोज के बाननि ।।[3]

चिंता मनि कहे कवि कैसे कह सकै कोऊ

अद्भुत कछु रूप रचना अलेख है ।

सुबरन लता है तमाल सुबरन संग,

घन स्याम संग थिर दामिनी विसेष है ।

राधा जू को देख देख बनिता बखानत है

हरि उर निवस परधाम देख रेख है ।[4]

1: कृष्ण चरित्र 12/41
2: वही 11/94
3: कृष्ण चरित्र 12/5
4: कृष्ण चरित्र 12/5

सुन्दर करन छूट बाँधति छबीली बाल,

मनौ मधुकर कुल कलित कमल है ।

चिंतामनि नाल कुच लखि निरखतु नितु,

कलप लता के ऊँचे बिलसित फल है ।

मुख इन्दु पर राजै अलक ललित,

अरविन्द पै मानौ अलि आवल चंचल है ।

राधा जू के नैन ऐसे राजत उनींदे प्रात,

मानो अधमुँदे नवनील उतपल है ।[1]

करुण विप्रलम्भ के अधिक उदाहरण नहीं मिलते इस प्रकार चिंतामणि की रचनाओं में शृंगार के छन्द न केवल परिमाण में अधिक हैं अपितु कलात्मकता एवं भाव प्रवणता में भी अत्यन्त श्रेष्ठ है ।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है चिन्तामणि की संयत एवं भक्ति परक दृष्टि के कारण शृंगार वर्णन प्रायः मर्यादित रहा है दूसरी विशेषता यह है कि ऐसी मर्यादित रचनाओं में अइन्द्रिय वासनात्मकता के बदले रसात्मक अनुभूति का अधिक स्पष्ट उल्लेख हुआ है किन्तु कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ कवि की रचनायें अमर्यादित हो उठीं हैं और वासना का नग्न चित्र प्रस्तुत हो गया है देखिये –

दम्पति अनूप वेस सुरति अरम्भ समै ते दोउ रस रीति मैन सरसात है ।
लसन बढ़ाइ त्यौरी मूंदे झिझकोर कंच मीनि मन छलिगा की सुघनि सुहाते हैं
बैंहया गहत पिय मान तिय प्यारी मारी कोपते निहारी टेढ़े नैन कंपित है।
नहिया करति नीबी खेलति नवेली बाल रोवति रिसाति अरसाति मुसक्याति हैं।[2]

किन्तु सौभाग्य है कि ऐसी रचनायें बहुत कम हैं फिर भी उस युग की बदलती मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है ।

<u>चिन्तामणि की भक्ति भावना :–</u>

श्रद्धा मिश्रित प्रेम का नाम भक्ति है । उपास्य की महिमा उपासक के

1: कृष्ण चरित्र 12/5 3: क० क० त० 9/33

2: शृंगार मंजरी 30। तथा 285

मन में यदि एक ओर लघिमा के बोध द्वारा अपने आप को आराध्य के चरणों में समर्पित कर देने के लिए अनुप्रेरित कर देती है तो दूसरी ओर आराध्य के नाम, रूप, लीला और धाम के उत्कर्ष पूर्ण महत्त्व के अनुशासन का संकेत देती है । इसलिए भक्ति की एक कोटि दैन्य में अनुप्रविष्ट दिखाई पड़ती है तो दूसरी प्रेम तत्त्व में ओत-प्रोत ।

रमणीयता की दृष्टि से भक्ति को रस रूप स्वीकार करें अथवा केवल भाव रूप । इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । आचार्य मम्मट के अनुसार देवादि विषयक रति मात्र भाव है ? तो रूप गोस्वामी आदि के अनुसार भक्ति केवल रस नहीं अपितु रस राज है । इतना होते हुए भी भक्त की आस्वाद्यता के विषय में कोई मत भेद नहीं है चाहे चाहे भक्ति भावना हो चाहे भक्ति रस ।

जिस प्रकार भक्त कवियों ने भगवान के नाम, रूप, लीला और धाम आदि की दत्तचित्त होकर चर्चा की है उसी प्रकार एवं उसी परम्परा में आचार्य चिन्तामणि ने भी यथा शक्ति राम और कृष्ण की नाम, रूप, लीला और धाम का समर्थ उल्लेख किया है । चिंतामणि से पूर्व वैष्णव भक्ति राम और कृष्ण रूप दो आलम्बनों के आधार पर प्रायः निर्विरोध रूप से दो मार्गों में बढ़ती चली आ रही है थी । चिन्तामणि ने दोनों भक्ति मार्गों को निर्विरोध रूप से केवल स्वीकार ही नहीं किया वरन् लीला-तत्त्व-चिंतन के सहारे भक्ति-कथा को पूर्ण अवसर प्रदान किया । उनका रामायण राम-कथा का प्रतिनिधि ग्रन्थ है[1] तो कृष्ण चरित्र प्रेम और ब्रज माधुरी का संकेत देता है । किन्तु प्रस्तुत शोधार्थी को कवि कुल कल्प तरु में राम कथा सम्बन्धी 45-46 छन्द प्राप्त होते हैं जिन्हें क्रम बद्ध कर देने से एक संक्षिप्त रामायण तैयार की जा सकती है, कृष्ण भक्ति तो सभी ग्रन्थ में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है ।

उल्लेख्य यह है कि इन्होंने राम कथा में यदि मर्यादा एवं लोक रक्षकत्व का निर्वाह करने का प्रयास किया है तो कृष्ण भक्ति में उन्मुक्त प्रेम भक्ति को कालीन परिपाटी के अनुरूप ग्रहण किया है । इसके साथ ही शिव-पार्वती एवं गणेश आदि के स्तुति परक छन्द भी उपलब्ध होते हैं । जिससे यह स्थापना सरलता से हो जाती है कि चिन्तामणि एक सनातनी स्मार्त सद्गृहस्थ थे जिनका झुकाव वैष्णव भक्ति की ओर अधिक था ।

इस पृष्ठ भूमि में यह उल्लेख अप्रासंगिक नहीं है कि वे बहु देवोपासक हैं । शिव, गणेश, पार्वती आदि की स्तुति में उनका भक्ति भावना, भक्ति हृदय कितनी तन्मयता से प्रवृत्त हुआ है यह कुछ उदाहरणों द्वारा देखा जा सकता है । गणेश की स्तुति के कुछ छन्द देखिये । कवि कुल कल्प तरु के मंगलाचरण में गणेश की परम्परा प्रसिद्ध महिमा और भक्तों को अभय दान देने वाले सामर्थ्य का उल्लेख किया गया है —

श्री गन नायक मुंह के अग्र गह्यो,

पुर सिन्धु सरोज रह्यौ छवि ।

हाथनि अंकुश पास अभय वर,

तुन्दिल अंगनि में उमगै छवि ।

मानौं दयामय सत्त्व को अंकुर,

दंत की दीपति यों बरनै कवि ।

कुंभ सिंदूर लसै मनि सुन्दर,

मानौ उदय गिरि शृंगनि में रवि ।

मेटै घनावलि सी विघनावलि,

तीछन आनन पौन उदार सौं ।

सेवक को नित देत अभय वर,

लै करसौं कलपद्रुम डार सौं ।

श्री गिरजा हरबु को दुलारो,

पौढ़ भवानीव को चित्त विचार सौं ।

लागि सदा मनि सिंदुर आनन,

सुन्दर सन्दुर के अवतार सौं ।[2]

इसी प्रकार पिंगल ग्रन्थ के उपक्रम में 'गजमुख जननी जनक के चरन नाइ निज सीस' के प्रस्तावना से आगे बढ़कर सरला शाडि को आशीर्वाद देने के

१: खोज रिपोर्ट काशी नागरी प्रचारिणी सभा ।

२: क०कु०क०त० १/१,२

लिये अर्धनारीश्वर रूप की वंदना करते हुए कवि ने कहा है कि –

मुक्ति माल उत गंग इतहि उत भंग गगनि ।
उलसित चन्दन आड़ इतहि सित कर लिलाट मनि ।।
उतहि माल मनि लाल इतहिं दृग अनल विराजत ।
उत कपूर तन लेप भसम इत अति छवि छाजत ।।
कहि चिंतामनि सब वेष धरि अति अनूप सोम साहित ।
जय लाजहु सरजा सिव को गिरजा हर अर धंगनित ।।[1]

इतना ही नहीं कवि कुल कल्प तरु में देव विषयक रति का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपने मन को पार्वती के चरणों में बांधने का संकल्प कवि की भक्ति भावना का प्रबल प्रमाण है क्योंकि सांसारिक ताप से मुक्ति केवल भवानी के चरणों में मिल सकती है –

अरे क्यों अजहू मोह होत खर्‌यो जो पर्‌यो तिहु ब ताप के तापन में
कुछ बंधन दोष कहा पर बंध जु के कुभागन मैं
मनि होलु सदा सिव रूप तुही जो प्रकास बड़ो यों सुठागन में
गहु बंधन जो मन ही को कियो मैंने बाँध भवानी के पायन में[2]

बसन दिसा है और भासन कपाल कर,
बिभौ आइ रहै पै मन हांति डिय हानिये ।
चिंतामनि कहै ऐसो रीति होय इकठीन,
कोऊ गीत माने जाको सांची बात मानिये ।
भांपत पढ़ार घर महत सती को वेष,
सांप भूत संग पेन संका उर आनिये ।
भसम लगाये रहै सूल धरे सदा,
वाके गिरजाइ बनता की रुडी सूल जानिये।[3]

1: पिंगल हस्तलिखित निजी प्रति के 1/2
2: कविकुलकल्पतरु 10/159
3: वही 8/88

भगवान शंकर नग्न रहते हैं, कपाल का खप्पर धारण करते हैं, विष खाते हैं, साँप, भूत बेताल साथ रखते हैं, इस प्रकार के शंकर की चर्चा भी कवि ने एक अन्य छन्द में की है अतः गणेश, शिव और पार्वती के प्रति चिंतामणि का शुध्द भक्ति भाव था इसमें दो मत नहीं हैं ।

भक्ति भावना को रस की कसौटी पर परखें तो उपर्युक्त छन्दों में गणेश, अर्धनारीश्वर तथा पार्वती आलम्बन हैं भक्त आश्रय है दैन्य मति आदि स संचारी भाव हैं इस प्रकार भक्ति रस के निष्पत्ति की पूर्ण सामग्री विद्यमान है

राम और कृष्ण के भक्ति भावना विषयक अनेक छन्द उपलब्ध हैं । भगवान राम की जय जय कार करते हुए कवि ने राम के रूप और लीला का उल्लेख ही नहीं किया है प्रकारान्तर से कौशल्या और दशरथ का भी उल्लेख किया है । छन्द इस प्रकार है –

> मनु कुल मंदाकिनी जल कमल महाराज,
>
> महा विमल प्रकाशित विविध नय ।
>
> इन्दिरा वन अरविन्द नैन इन्दु मुख इन्दीवर,
>
> वस धाम सुन्दर सदा सदय ।
>
> चिंतामणि मुनि मन मोर के नवीन घन,
>
> सीता नैन मीन सुधा समद आनन्द मय ।
>
> कौशल्या कल्प बेलि कंचन सुमन राजा,
>
> दशरथ सुध-निधि चंद रामचन्द्र जय[1]

यहाँ कवि ने चिन्तामणि श्री राम को 'मुनि मन मोर के नवीन घन' कह कर भक्तों के मन को उल्लास देने वाला बतलाया है जिसके कारण कवि अथवा मुनिगण आश्रय हैं अनन्त शोभा सम्पन्न राम आलम्बन हैं । राम का रूप उद्दीपन है । मोर के लिये नवीन घन कहने से हर्ष, औत्सुक्य आदि संचारी आक्षेप से प्राप्त किये जा सकते हैं । अतः यहाँ भी भक्ति भावना का ध्वनित रूप दिखाई पड़ता है

श्री कृष्ण की वन्दना के अनेक प्रसंग हैं । कृष्ण चरित्र के तृतीय सर्ग में ब्रह्मा कृत स्तुति के कुछ अंश उद्धृत हैं[2] जिनमें श्री कृष्ण की रूप माधुरी का

1: क०क०त० 3/90   2: अगले पृष्ठ पर देखें

वर्णन करते हुए उनके चरणों में प्रणाम निवेदन किया गया है और अन्त में सख्य भाव से जय-जयकार करते हुए ब्रह्मा ने 'दीन दुःख उद्धरन भक्त वत्सल विड़दाकर' कह कर उनकी लोक-रक्षक लीला की ओर संकेत किया है। अतः यहाँ ब्रह्मा आश्रय, नन्द नन्दन श्री कृष्ण आलम्बन उनकी रूप माधुरी एवं भक्त वत्सलता उद्दीपन, हर्ष, विबोध, मति आदि संचारी भाव हैं जिनसे भक्ति रस का परिपोषण होता है।

यद्यपि भक्ति भावना के अन्तर्गत भक्ति के तत्वों और भेदों की भी चर्चा की जा सकती है किन्तु हम पिछले अध्याय में जीवन दृष्टि के अन्तर्गत इन सब की चर्चा कर चुके हैं अतः यहाँ पिष्टपेषण से विराम लेते हैं।

<u>वीर रस योजना :-</u>

रीति काल के समर्थ आचार्य चिंतामणि की वीर रसमयी रचनाओं का उल्लेख कुछ आश्चर्यजनक हो सकता है क्योंकि शृंगार रस में आकंठ निमग्न उस युग में वीर रस की धारा अत्यन्त विरल हो गई थी तथापि यदि हम इस तथ्य की ओर ध्यान दें कि चिंतामणि उस युग सन्धि में उत्पन्न हुए थे जहाँ वीर, भक्ति और शृंगार का संगम हुआ है तो हमें इनकी वीर रसमयी रचनाओं के प्रति आश्चर्य नहीं होता।

1: सुन्दर घन तन वर लहित मधुबन माल बनाइ।
गुंज शिख भूषन धरौं गोप तनय तो थाइ ।।
बेत कुसुम कर कमल अरु लीन्हौं बेनु बिषान।
नंद गोप नंदन धरौं तो पद कृपा निधान ।।
× × ×
मुनि जन तन मन बचन विधि सेवित चरन सरोज।
विमल वृष्णि कुल कमल रवि जय जय जय श्री कृष्ण ।।
जय जय जय श्री कृष्ण साधु सुख समुद सुधाकर।
दीन दुख उद्धरन भक्त वत्सल विड़दाकर ।।

कृष्ण चरित्र 2/2,3,44,45

यद्यपि चिंतामणि ने किसी वीर काव्य का स्वतंत्र रूप से निर्माण नहीं किया तथापि उनकी रचनाओं में आश्रयदाताओं की प्रशस्ति के रूप में वीर रस का सुन्दर परिपाक दिखाई पड़ता है जिससे सिद्ध हो जाता है कि चिंतामणि की प्रतिभा वीर रस की कठिन भूमि में भी संचरण करने में पूर्ण समर्थ रही है । प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक का तो ऐसा भी विश्वास है कि सम्भवतः चिन्तामणि को वीर रस की प्रेरणा गुरु परम्परा या पितृ परम्परा से प्राप्त हुई होगी । इनके भाई भूषण तो वीर रस के महा कवि हैं ही मतिराम की भी वीर रसान्वित रचनाएं तीनों भाइयों में व्याप्त पारिवारिक संस्कार का संकेत देती हैं ।

चिन्तामणि के आश्रयदाता हिन्दू भी थे और मुसलमान भी, वीर भी और विलासी भी, सम्राट भी थे और संत भी, इसीलिये आश्रय में यदि दाताओं की प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुकूल इन्होंने अपने काव्य की सर्जना की । शाहजहाँ आदि के आश्रय में यदि दृष्टि प्रधान रूप से शृंगार परक भी थी तो शाहजी जैसे कुल क्रमागत वीर के शौर्य वर्णन में वीर रस की धारा प्रवाहित हुई । इनके उपलब्ध ग्रन्थों को देखते हुए केवल तीन ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जो आश्रयदाताओं के लिए लिखे गए हैं — रस विलास, शृंगार मंजरी और छन्द विचार । इनमें से रस विलास और छन्द विचार में प्रधानता वीर रस की है अन्य रसों का उल्लेख नाम मात्र को हुआ है । छन्द विचार में शाहजी भोंसले का पराक्रम और शौर्य मानों आकार पा गया है । रस विलास में शृंगार और शौर्य का समान रूप से महत्त्व दिखाई पड़ता है । शृंगार मंजरी का मुख्य प्रतिपाद्य यद्यपि नायिका भेद है तथापि सन्त अकबर शाह की प्रशस्ति परक उक्तियों में दान पराक्रम आदि के द्वारा वीर रस का समुचित परिपाक हुआ है ।

डा० टीकम सिंह तोमर ने हिन्दी वीर काव्य (सन् 1600-1800 ई०) में लिखा है कि — " प्रस्तावित अध्याय के अन्तर्गत उन सभी काव्यों कवियों को सम्मिलित किया गया है जिन्होंने ऐतिहासिक घटना को लेकर अपने आश्रयदाताओं अथवा अपने पूर्वजों की प्रशंसा की है ।[1]

---

1. हिन्दी वीर रस काव्य — डा० टीकम सिंह तोमर प्रथम संस्करण पृष्ठ 9

इस दृष्टि से विचार करने पर आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में लिखा गया काव्य भी वीर काव्य ही ठहरता है । यह भी उल्लेख्य है कि चिन्तामणि के काव्य में दानवीर का और युद्ध वीर का ही पक्ष प्रबल रहा है और वीरता के अन्य रूप प्रायः उपेक्षित रहे हैं ।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है जिसमें उत्कट आवेश और साहपूर्ण उमंग के दर्शन होते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार यही उत्साह अपने परिपाक की दशा में जिस रसात्मक आनन्द की सृष्टि करता है उसे वीर रस कहते हैं । इस उत्साह में कष्ट या हानि सहन करने की दृढ़ता के साथ-साथ कर्म में प्रवृत्त होने से आनन्द का योग रहता है । अतः साहस, त्याग और उमंग ये तीनों ही तत्त्व वीर रस का पोषण करते हैं । जहाँ तक वीर रस के भेदों का प्रश्न है उसका स्थूल रूप से दान वीर, धर्मवीर, युद्ध वीर और दया वीर नाम से चार भेद किये गये हैं किन्तु "सच तो यह है कि उत्साह के जितने भी भेद हो जायँगे अथवा अनुमान किये जा सकते हैं उतने ही वीर रस के भेद होंगे" अतः भेदोपभेद में न पड़ कर हम युद्ध वीर से चर्चा प्रारम्भ करते हैं ।

<u>युद्धवीर :-</u>

वीर रस की विशुद्ध अवतारणा युद्ध वीर में ही अधिक संगत दिखाई पड़ती है क्यों कि आलम्बन चाहे विजेतव्य हो अथवा असाधारण कर्म किन्तु आश्रय के उत्साह के विकास में पूर्ण सहायक होता है । चिंतामणि के काव्य में युद्धवीर के दर्शन दो प्रसंगों में होते हैं प्रथमतो अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में और दूसरे पौराणिक पात्रों के चरित्रों में । आश्रयदाता की प्रशस्ति में रचित इस छन्द में युद्ध वीर का सौन्दर्य देखिये —

साहि नृप सेन जब कहत सजाहि,
बढ़त लाख हय हत्थ नर दल अतुले ।
चलत छिति चलित पटु दुंदभी बज्जियत,
चोट अधीर आवलीन सबल फूले ।
उत्तेजन धूरि छिति छितिक दुंदरिय,
जब आन अवसान के सेन भूले ।
[illegible],

शाहजी का प्रकृष्ट शत्रु को परास्त करने के लिए चतुरंगिनी सेना सजा कर चलना एक ऐसा कर्म है जिसमें प्रयुक्त उत्साह एवं स्थायी भाव को प्रगट करता है। आलम्बन विभाव शत्रु है परोक्ष रूप से शत्रु का बलशाली होना व्यंग्य है तभी तो अपार दलबल सज कर युद्ध यात्रा की जा रही है अतः शत्रु का पराक्रम उद्दीपन है। प्रस्थान के समाचार में हर्ष, गर्व, धृति आदि संचारी भाव व्यंग्य है। इस प्रकार वीर रस का पूर्ण परिपाक दृष्टिगत होता है यदि कलात्मकता की दृष्टि से विचार करें तो सैन्य प्रयाण से आकाश का धूल से भर जाना सूर्य का दिखाई न देना आदि अतिशयोक्तियों में मौलिकता की अपेक्षा परम्परा का अनुपालन है।

वस्तुतः शाजी भोंसले के गुण गौरव, व्यक्तित्व और पराक्रम आदि से कवि इतना अभिभूत है कि वह बार-बार उनके समर्थ व्यक्तित्व की महिमा का ओजस्वी गायन करता है कवि को उनके व्यक्तित्व में वीर रस के सभी प्रकार अनायास ही दिखाई पड़ते हैं तभी तो निम्नलिखित दो कवित्तों में उनकी प्रशंसा करता है —

कविनु को रवि भोज ओज को सरोज बन्धु,
दीनन को दाता सिन्धु लाज बीरु को जिहाजु।
कोटि काम सुन्दरु है महिमा पुरन्दरु है,
मन्दिर है बेरी बल वारिद पवन काजु।
अंस है आलम अवलम्ब कुल आलम को,
आलम धरा को सब सूरन को सिर ताजु।
विक्रम अपार अत सुजस को पारावार,
भारी भार थमन समत्थु साहि महा राजु।
गाढ़े गाढ़े गढ़ गज [illegible] ढहावत,
न पावत प्रताप सम साहि सम [illegible] ।

पिछले पृष्ठ की टिप्पणियां —

१. चिन्तामणि भाग १ — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

२. वीर काव्य — पं० उदयनारायण तिवारी पृष्ठ ।

चिंतामनि भनत गनत घने गुन गन,

सारदा गनेश सेस सकल उपककै ।

निरधि ज्यों महिमा गंभीर महा धीर वीर,

धामक प्रताप भीर भीरधि धककै ।

पच्चन उपच्चन समत्थ्या पति साहिन को,

साहि नर नाह यहूं सकीन को सककै ।[1]

यहाँ समर्थ उपमानों के द्वारा एक ओर आश्रयदाता की गुणावली का उल्लेख है तो दूसरी ओर उसके पराक्रम की गाथा का समर्थ अभिव्यंजन है । इसी प्रकार शाहजहाँ के हाथियों के वर्णन में भी उनके डील डोल, रंग बलिष्ठता आदि का जो उल्लेख है उससे आश्रयदाता के वैभव का तो परिचय मिलता है है उसके बल पराक्रम का भी उल्लेख हो जाता है ।

यद्यपि ये प्रसंग ऐसे हैं जिनमें वीर रस का परिपाक नहीं है फिर भी इससे आश्रयदाता की ओजस्विता, आश्रय में युद्ध कर्म के समन्वय के द्वारा उत्साह को अभिव्यक्त कर रहा है इससे एक वीर रूप अनायास ही मानस पटल पर उभर आता है । इतना होते हुए भी इन युद्ध वर्णनों में अतिशयोक्ति और आलंकारिकता की अधिकता है और राज प्रशस्तियों में केवल भाव का उदय मात्र होता है वीर रस का पूर्ण परिपाक नहीं । हाँ, खरदूषण के साथ होने वाले युद्ध में भगवान राम की वीरता के वर्णन के क्रम में युद्ध वीर का रूप बड़े कौशल से सँवारा गया है छन्द इस प्रकार है –

> गज गिरि दरी बन सघन ते जानकिहि,
>
> राम जु कवच निज अंग कीन्हों ।
>
> दिव्य तूनीर सो सुभग अंग भीर बिर,
>
> रघुवीर कर चाप चंग लीन्हों ।
>
> कियो घन गरज घन धनुष टंकोर अरु,
>
> ललित मुख हरष झलक्यो नवीनो ।

---

1. छन्द विचार - काशी नागरी प्रचारिणी पृष्ठ 2/4,5

आइ भरि व्योम मुनि सिद्ध गन्धर्व जे,

बोलि रघुनाथ की विजै दीनों ।

तबै खर की पकरि आप आगे उतै,

जितै सर चाप धरि राम राजैं ।

संग ले सघन घन संघ सम रस गन,

सिद्ध तम शस्त्र बरखानि साजैं ।

परस तिरसूल सिद्ध तम आस पास मुदगर विपुल,

असनि सम राम पर डारि गाजैं ।

समुद ज्यों आयमानिन साहि आपु घन,

बेग सहिं छविन रघुवीर राजै ।[1]

यहाँ राम आश्रय हैं और खर आलम्बन है । भगवान राम में युद्ध के प्रति पूर्ण उत्साह है । ऋषि मुनियों की जै जै कार उनके वीरत्व को उद्दीप्त करता है । एक ओर मुख पर नवीन हर्ष की झलक है तो दूसरी ओर शत्रु की असंख्य सेना को झेलने के लिए अकेले खड़े राम असंख्य शस्त्र वर्षा के बीच धृति व संचारी भाव का सुन्दर परिपाक है और इस प्रकार सांगोपांग सामग्री होने से वीर रस का परिपाक दिखाई पड़ता है ।

युद्ध वीर के अनेक छन्दों में कवि का वर्णन उत्साह की अपेक्षा कहीं भय की सृष्टि करने लगता है तो कहीं वीभत्स की ।[2] किन्तु ऐसे प्रसंगों में कवि का उद्देश्य वीर रस का पोषण ही है । प्रधान रस वीर है और भय अथवा जुगुप्सा के भाव वीर का ही पोषण करते हैं ।

दानवीर :-

दान दाता को दान वीर उस समय कहते हैं जब दान देने के फलस्वरूप उसे कुछ कष्ट भी सहना पड़े तो भी उसके हृदय में मलिनता के बदले हर्ष, औत्सुक्य आदि भावों का उदय हो । चिन्तामणि के आश्रयदाता नरेन्द्र हृदय शाह ऐसे ही

1: क०क०त० 9/118,119

2: छन्द विचार 1/146 तथा रस विलास 8/33, 8/29, 8/36

दानवीर हैं जो अत्यन्त आनन्द के साथ मगावड दीर्घकाय गजेन्द्रों को अत्यन्त आनन्द के साथ बख्शीश के रूप में दान दे डालते हैं । इससे आश्रय में जिस साहसपूर्ण उमंग का उदय होता है वह उत्साह को पूर्ण परिपोष प्रदान करता है । हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव रस परिपोष में सहायक हैं ।

इसी प्रकार शाहजहाँ के पुत्र दारा शिकोह के दान के वर्णन में कवि ने उसके असाधारणत्व की प्रतिष्ठा करके दान वीरता का रूप सँवारा है —

> जगत के मंडन प्रबल दल खंडन रिपुन,
> के बिहंडन प्रचंड तेज देखिए ।
> साहस के सागर नरिंद नेह नागर,
> समत्थ गुन आगर उजागर जे लेखिए ।
> चिंतामनि सुन्दर सपूत सिव मंदिर सौं,
> पहुमी पुरन्दर प्रबल सूर पेखिए ।
> दारा साहि लच्छन सों देत दान लच्छन लौं,
> जगत के लच्छन बिचच्छन बिसेखिए ।[1]

महावीर राम की दानवीरता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि राम का त्याग विलक्षण है । वे रावण का वध करके भी राज्य को विभीषण को दे देते हैं यह त्याग उत्साह का पोषक है विवेक शील राम के विभीषण को राज्य देने के निर्णय से वानर, भालु और राक्षसों में जो उल्लास छा जाता है तथा जिस प्रकार के उत्सव आदि मनाये जाते हैं उससे एक ओर वीर राम की नैतिकता का आभास मिलता है तो दूसरी ओर दानशीलता का अनुपम आदर्श दिखाई पड़ता है । भुजबल से अर्जित स्वर्णमयी लंका के वैभव को विभीषण को अनायास दे डालना वास्तव में राम जैसे दानवीर का ही काम है ।

<u>दयावीर :-</u>

चिंतामणि के आश्रयदाताओं में किसी प्रकार की दयावीरता का उल्लेख नहीं किया है किन्तु सम्भव है उनके सम्मुख ऐसा कोई अवसर उपस्थित न हुआ हो किन्तु भगवान राम और कृष्ण के व्यक्तित्व में कवि को अनायास ही दयावीरता का रूप देखने को मिल गया है ।

रावण वध के उपरान्त जब इन्द्र ने राम की प्रशंसा करके वर माँगने के लिए कहा तो राम ने कहा कि संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुए कपि और रीछ जीवित हो जाँय। यह दया का भाव वस्तुतः राम में दयावीरत्व की प्रतिष्ठा करता है किन्तु चिंतामणि ने इस प्रसंग को जिस प्रकार प्रस्तुत किया है उसमें राम इस दया के बदले किसी प्रकार की हानि या कष्ट नहीं उठाते। अतः यहाँ दयावीर की पूर्ण निष्पत्ति नहीं दिखाई देती किन्तु कृष्ण चरित्र में काले नाग का दमन करते समय और गोवर्धन उठाते समय दयावीर का स्वरूप दृष्टिगत होता है। अपने प्राणों की बाजी लगाकर श्री कृष्ण जिस प्रकार गो, गोपी, गोपाल की रक्षा करते हैं उसमें मूल प्रेरक दया ही है जो उत्साह से युक्त होकर श्री कृष्ण को दयावीर बनाता है और चिंतामणि की उन रचनाओं में दयावीर रस का परिपाक करता है।

बानगी के लिए देखिये –

इन्द्र कह्यो मन मोद भरि यों सुनिये श्री राम।
कौसल्या सुप्रजा भई धाय पूत गुन धाम ॥[1]
इन्द्र कह्यो अब माँग वर यों बोले रत राम।
वें जीवें कपि रीछ जे मरे महा संग्राम ॥
जे फल फूल अकाल हू पावें बानर बीर।
होंइ विमल ते सब नदी जिनके तीर ॥
इन्द्र कह्यो है है यहै राम तिहारे हेत।
सुने कहूँ संसार में जीवित काह परेत ॥
है है सब जो चाहियतु यों कहि गयो अकास।
सब के देखत समर में बरस्यो अमृत प्रकास ॥
परयो न रावन लोग पर कहूँ अमृत को बिन्दु।
मोद भयो सुत कपिन को उयो काम को बिन्दु ॥
उठे प्रवीन बिन कपि सबै जन ईश्वर भगवान।
दशरथ नन्दन राम जू करी अलौकिक ठान ॥[1]

---

1. [illegible] 9/122 — 128

कीनो भुज दंड स्याम मनिमय दंड छिति,
धर को वा छिति पर छत्र छवि देत है ।
लीनो मधु ब्रज जैसी विधि सो नचाइ सिन्धु,
जनन पै ऐसे कान्ह करुना निकेत है ।[1]

धर्मवीर :-

धर्मवीर के दृष्टान्त में भरत का दृष्टान्त द्रष्टव्य है -

अवधनि घट नन्द गाउ कोस एक पद निरख्यो,
कर धार पट धारी सोग   साथ को ।
चिंतामनि कहे सुग धरम जटानि धरे,
मुनि वेष भगत अगार कर हाथ को ।
अंग अलंकृत कीर आपने चरित्र सत्य,
धारी भागीरथ आहरन गाथ को ।
जाइ हनुमान देख्यो धरम ब्रतन धरे,
देख्यो है भरत उर भैया रघुनाथ को ।[2]

इस प्रकार चिंतामणि की रचनाओं में वीर रस के सभी रूपों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त राज प्रशस्तियों में अस्त्र, शस्त्र हाथी, घोड़े आदि के वर्णन में भावोदय, भाव सन्धि, भाव शबलता आदि के भी दर्शन होते हैं ।

कुल मिलाकर इतना अवश्य कहना पड़ता है कि जहाँ चिंतामणि ने मानवीय वीरत्व का वर्णन किया है वहाँ न तो आत्मा का उत्कर्ष ही हुआ है और न विस्मय उल्लास में पर्यवसित हुआ है । इसी प्रकार हृदय के उदात्त वृत्तियों का उन्नयन भी सम्भव नहीं हो सका है किन्तु जहाँ भगवान राम और कृष्ण की वीरता का वर्णन है ऐसे महान कार्यों के लिए उत्साह प्रदर्शित किया गया है जिससे पाठक श्रद्धा और संभ्रम से भर जाता है और उसकी आस्था उत्कर्ष को प्राप्त करती है ।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि चिंतामणि का वीर काव्य रस परिपोष की दृष्टि से सफल हुआ है । हाँ, युग के प्रभाव से शब्दाडम्बर और अतिरंजनापूर्ण वर्णन की अधिकता खटकती है ।

०

लिए कृष्ण चरित्र में समान अवसर प्राप्त हुआ है ।

सर्वप्रथम रूप माधुरी को लें । कारागार में वसुदेव देवकी के सम्मुख जब श्री विष्णु दिव्य मणिमय मुकुट, कुण्डल, किंकिणी और कंकण से सुशोभित व पीताम्बर धारण किए एवं शंख, चक्र, गदा, पद्म से विभूषित होते हुए भी बालविग्रह में होते हैं तो देवकी और वसुदेव उस रूप माधुरी का दर्शन करते अघाते नहीं ।[1] ऐसे अवसर पर इस बालकलाभ से माता-पिता के हृदय में जो वात्सल्य उमड़ता है, वह भक्ति भावना में परिणत होने के कारण तथा कंस के आतंक के कारण केवल भावोदय बन कर जाता है किन्तु व्रज मंडल में जिस समय श्री कृष्ण के जन्म की सूचना प्राप्त होती है उस समय सारे व्रज मंडल में उल्लास भर जाता है । कृष्णचन्द्र के उदय से प्राची दिशा की भांति यशोदा मोहान्धकार से मुक्त होकर परम प्रसन्न हो जाती हैं और नन्द तो समुद्र की भांति उल्लसित हो उठते हैं साधु रूपी कुमुद खिल उठते हैं और गोप गोपिकाएँ रूप माधुरी का पान चकोर चकोरियों की भांति करने लगती हैं।[1] वस्तुतः कृष्ण को आलम्बन बनाकर जिस हर्ष संतोष एवं औत्सुक्य की योजना की गई है वह उस अलौकिक रूप के कारण है जो अलसी कुसुम की भांति श्यामलता में दीप्ति की छटा पूर्ण चन्द्रमा के समान विकसित हो रहा है, जिसके कर एवं चरण नव नील कुंज के पल्लवों से मनोहर हैं और नील कमल के समान हैं—

प्राची सी यशोदा भई परम प्रसन्न रुचि
छोड़ि दरी ही महा मोह अंधकार में ।
खिला मौन कुमुद से फूले साधु जन मन
चारु उज्ज्वलित विमल चन्द्रिका उदार में ।
गोपी गोप गन दौरे चकोरी चकोर मनु
आनि परे महा कृष्ण चन्द्रमा के द्वार में ।
उमगी अपार सुख सिन्धु के ज्यों से ज्यों बाढ़ी
कन्हाई जनम आनन्द पारावार में ।[2]

१: कृ० चरित्र १/१३

२: वही १/१८,१९

मारोगी याहि डरे लखि बाहि कुहों बलि हौं यह बैनि सुनावे
बालक मीनख पैक भरे तनु मोद लै माइ महा सुख पावे[1]

बालकों की नटखटी लीला जहाँ माँ को सुख देती है वहीं हर समय पड़ोसियों के उलाहने और ताने भी सुनने पड़ते हैं। यद्यपि ये ताने भी वात्सल्य सुख के लिए ही दिये जाते हैं। कृष्ण बड़े होकर ब्रज में ग्वाल-बाल को साथ लेकर गोपियों के घर में मक्खन, दही खाते ही नहीं गिरा भी देते हैं। ऐसे ही सन्दर्भ के एक उपालम्भ प्रस्तुत है — गोपियों की भीड़ यशोदा के आँगन में जमा हो गई है कोई कहती है कि छींके बहुत दूर रखा हुआ दही, दूध, मक्खन इसने उपाय से चढ़कर ले लिया। स्वयं खाया, बन्दरों और मित्रों को खिलाया और जो बच गया उसे गिरा दिया। यहाँ आकर बिल्कुल भोला और अनजान बनकर तुम्हारे पास खड़ा हो गया। अब बताओ कैसे उलाहना दूँ। दूसरी ने कहा कि आकर छिपे रहते हैं और मौका पाते ही आँख बचाकर माट और कछड़ों को खोल देते हैं। मैया यशोदा तुम्हारे इस छोटे ने कहाँ से ऐसी ढिठाई सीख ली है कि जरा सा मन किसी और लगा कि तब तक मक्खन चाट-खाकर बराबर। हाय दइया! इसे ये गुन किसने सिखा दिए हैं? तीसरी ने कहा, कि तुम्हारे इस छोटे के हाथ पर जरा भी दही रख दो तो जैसे जैसे कहो वैसे वैसे नाच दिखाता है। चौथी ने कहा कि अरे मैया यह बड़ा चालाक है कहेगा यह कि अभी बिल्ली को मार भगाऊँ और इस बहाने से सब दूध पी जाता है।

चारों ओर से उलाहनों की भीड़ में[2] कन्हैया बड़े भयभीत होकर सब की ओर देख रहे हैं और गोपियाँ इस भयभीत मुख की शोभा को देखकर वात्सल्य सुख का आनन्द लेती हुई अपने को बड़ भागिनी मान रही है। नन्द के आँगन में उलाहने के व्याज से वात्सल्य रस लूटने वाली गोपांगनाओं की भीड़ लगी हुई है। फिर माँ यशोदा ही क्या चूकें? वह भी चुपचाप श्याम कुँवर के मुख को देखती हुई प्रेम-समुद्र में निमग्न हो रही हैं :—

1: कृष्ण चरित्र 2/1, 2/2

2: वही 2/3, 4, 5

यशोदा गोपी ओरहनो देति सबै अँखियाँ मुख शोभित पेखे
प्रेम समुद्र समाइ रहीं निज भावनि ठग्य सबै अवलोकैं
नन्द के आँगन गोरतिधाम की मंजुल बाल विनोद विलोकैं
माई जसोमति बाल कछू नहिं बोलिसके हँसि पूतहिं पेखे [1]

कृष्ण की नटखटी लीलाओं का अन्त नहीं । दही बिलोती हुई माँ बिलोना छोड़ कर कृष्ण को दूध पिलाने लगी कि अचानक दूध उफनाने लगा । कृष्ण को छोड़ कर दूध उतारने दौड़ पड़ी फिर क्या था कन्हैया ने रोष में आकर पत्थर मारकर दही का बर्तन तोड़ दिया और घर में जाकर मक्खन बन्दरों को खिलाने लगे उत्पात की भी हद होती है । माँ के मन में कौतुक आया वह छोटी सी छड़ी लेकर छिप गई और तमाशा देखने लगी । इधर कन्हैया ने माँ को देखा तो ओखली से कूद कर भागे उस समय रोष, भय और संभ्रम के भाव मुखमण्डल पर झलक रहे थे । माँ यशोदा इस रूप को देखकर निहाल हो गई । वास्तव में वात्सल्य की इस लीला का सुख किसी भी अन्य रसात्मक अनुभूति से कहीं आगे है ।

× × ×

भागे उलूखल तें हरि कूदि ससंभ्रम नैन विलोकत मैया
मैया जसोमति देखि छकी छवि को न छके छविलोल कन्हैया [2]

× × ×

किन्तु लीला का अन्त यहीं नहीं हुआ माता यशोदा कृष्ण को पकड़ने के लिए दौड़ी और कृष्ण भाग चले । माँ अच्छी तरह से थक कर पसीने से लथपथ हो गई तब कहीं पकड़ में आए । माँ ने ओखली में बाँध दिया और आप दामोदर बन गए फिर वह ऐसा काम न करें ऐसी शिक्षा देने के लिए माँ कृष्ण को बाँधकर घर के काम में लग गई । अन्य गोपियों को यह बुरा लगा और माँ से रूठकर चली गईं उधर कृष्ण ने अवसर पाकर यमलार्जुन का उद्धार किया । सारे ब्रज में वृक्षों के गिरने की बात फैल गयी ।

---

1. कृष्णायन 2/6
2. वही 2/13

बाबा नन्द ने जल्दी से कृष्ण के बन्धन खोले, उठाया, चूमा और गोद में ले लिया, और यशोदा से बिगड़ कर बोले यह तुमने क्या किया ? बड़ा भाग्य था जो बेटा बच गया । माँ तो सोच में डूब गई । बालक को गोद में ले लिया और बहुत दान-पुण्य किया ।।–

नन्दन नन्द जु बंधनहीन कै चूमि उठाइ कै गोद में लीनो ।
बेटा बच्यो बड़भागन तैं जसुदा सो खिझि यों कहा तुम कीनो ॥
कूप बड़े गिरे बीच बच्यो सुत माता को सोच भयो तन छीनो ।
अंक लै लाल को मंगल कारन विप्रन को बहुतै धन दीनो[1] ॥

यहाँ कृष्ण पर अनिष्ट की आशंका से भय, उद्वेग, शोक और कृष्ण के सुरक्षित बच जाने पर हर्ष, संतोष आदि संचारी भावों एवं गोद में उठाना, चूमना, दान देना आदि अनुभावों के योग में वात्सल्य रस का सुन्दर परिपाक दिखाई पड़ता है ।

वात्सल्यमयी माँ की ममता लालन और ताड़न दोनों में समान होती है किन्तु जब कभी कभी अनहोनी घटना घट जाती है तब बिना किसी अपराध के माँ को सभी कोसते हैं और माँ उसे चुपचाप अपराधिनी बन कर झेल जाती है । सम्भवतः यह वात्सल्य की निकष-परीक्षा का क्षण होता है ।

गोप वधुएँ आकर कहने लगीं यशोदा तेरा हृदय बड़ा कठोर है भला बच्चे को इतना कठोर दंड देते हैं ? जरा कृष्ण ने कितना माखन ले लिया था जिसके बदले तुमने ओखली में बाँध दिया था । यह तो बड़ी कुशल हुई कि यमलार्जुन के बीच में बालक बच गया । दूसरी ने व्यंग्य किया अरे यशोदा की बुद्धि तो [illegible] ने कटोरा भर माखन खाया और उसको ओखली में बाँध दिया । बड़ी कुशल हुई जो पेड़ों के बीच बालक बच गया ।[2] सच पूछो तो यह बालक हमें फिर से मिला । वास्तविकता यह है कि माता यशोदा के वात्सल्य की आलोचना करने वाली गोपांगनाओं के हृदय में भी वात्सल्य का भाव हिलोरें ले रहा है । इन आलोचनाओं का व्यंग्य

---

1. कृष्ण चरित 2/23
2. कृष्ण चरित 2/24,25

कृष्ण के प्रति अतिशय प्रेम नहीं तो और क्या है ?

ऐसा ही प्रसंग पूतना वध का है जिसमें माता यशोदा श्रीकृष्ण के सकुशल बच जाने पर दान-पुण्य करती और भगवान को धन्यवाद देती हैं[1]।

यही अनिष्ट-आशंका-जन्य भय और उद्वेग उस समय भी उत्पन्न हुआ है जब श्रीकृष्ण कालीदह में कूद पड़े हैं। कुछ क्षण के लिए जब कालीनाग से पीड़ित श्रीकृष्ण दिखाई पड़े उस समय करुणा, चिंता, भय, आशंका सारे वातावरण में फैल गयी। गौयें दीन भाव से देखने लगीं। व्रजवासियों को कृष्ण के बिना व्रज में रहना निरर्थक प्रतीत होने लगा और नन्द यशोदा को तो उन्मत्त भाव से कालीदह में कूदने से किसी तरह बलराम ने पकड़कर रोका।—

मैयादीन ह्वै के रोय रही हैं कन्हैया जू को
दशा वह प्रभु की कही न सब जोह के
नन्द व्रज बालन हैं टेरिए काली के दह
कान्ह बिन हा व्रज करेंगे कहा रोह के
काली दह कालिन्दी में पैठति निरखिनन्द
कहो बलि जू को पकरो त्यागे धीर के[2]

इस प्रकार के मरण समान हर्ष वातावरणों में पड़कर भी बालक श्रीकृष्ण का बच जाना और वह भी उसका सकुशल एवं सानन्द होना माता-पिता के आंखों में किस प्रकार आनन्द के आंसू उमगाता है इसे केवल भुक्त भोगी ही जानता है।[3] ऐसे अवसरों पर नन्द भवन में आयोजित महोत्सव माता-पिता के हर्ष की व्यंजना करते हुए वात्सल्य रस का आस्वादन प्रदान करते हैं।

एक ऐसा ही और चित्र देखिए — श्री कृष्ण ने गोवर्धन उठा लिया है। यद्यपि कृष्ण अब बड़े हो गए हैं और समर्थ भी, किन्तु माँ की ममता देखिए। वह कहती है कि मेरा यह छोटा सा छौना अपने कर कमल की अंगुरी की छोटी छिगुनी पर पर्वत धारण किए हुए है और मेरा मन चिंता से पीड़ित हो रहा है।

---

1. कृष्ण चरित्र 1/30
2. वही 5/4
3. काली दहते कुशल, कढ़े धीर कान्ह माता-पिता भेंट के मनाय के रोए हैं- कृष्ण05/11

इस प्रकार के माँ के ममता के चित्र और भी देखे जा सकते हैं जहाँ कृष्ण के बहुत देर तक खेल से न लौटने पर माँ घबड़ा कर खोजने निकल पड़ती है[1]। उपर्युक्त सभी प्रसंगों में कवि ने वात्सल्य रस परिपोषक सभी अंगों का समावेश करके यद्यपि बड़ी सफलता पाई है फिर भी भागवत का अनुवाद होने के कारण यथा-स्थान कृष्ण के प्रभुत्व अथवा अतिमानव सामर्थ्य का उल्लेख होने से वात्सल्य रस विच्छिन्न होकर भक्ति रस का अंग बन गया है जो हो, रीति कालीन साहित्य में वात्सल्य रस का ऐसा सुन्दर परिपाक दूसरे कवियों में उपलब्ध नहीं है ।

प्रकरण समाप्ति से पूर्व कौशल्या के वात्सल्यभाव का भी चित्र प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक न होगा जो अनुमानतः कवि के रामायण महाकाव्य का ही एक छन्द है और कवि कुल कल्प तरु में पुत्र विषयक रति के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है —

> कुलही ललित वर लसी जग मगे अरु झालर मै झलकत मुकता छवी सुढार
> केसर के रंग रंगी झीनी सी झंगुलिया मै झलकत अंग कुम्हलाय बस सुकुमार
> हसत बदन दतियान पै दीठि चिंतामणि वारत सुकृत और माने दसरथ दार
> गोद लैके राम जू को आनन्द मगन मैया ललकि कै चूमा लेत बारबार[2]

यहाँ राघवी कलाभूषणों में सुसज्जित राम के सौन्दर्य और मुस्काते समय की दो दंतुलियाँ देखकर माता जिस प्रकार आनन्द मग्न होकर गोद में लेकर चूमा लेती है वह पूर्ण रसमयी स्थिति है । इसमें राम आलम्बन हैं माता आश्रय हैं राम के वस्त्राभूषण एवं मुस्कान उद्दीपन हैं माँ का गोद में लेना, चुम्बन की प्रशंसा करना अनुभाव तथा हर्ष संचारी भाव हैं अतः यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि चिन्तामणि की रचनाओं में वात्सल्य रस का सुन्दर परिपाक हुआ है ।

* * * * *

1: कृष्ण चरित 2/28,29

2: क०क०त० 10/161 पृष्ठ 213,214

अध्याय 4

1: कृष्ण चरित्र: एक चरित काव्य

3: चरित काव्य में प्रायः प्रेम, वीरता और धर्म-वैराग्य-भावना का समन्वय दिखलाई पड़ता है। उसमें पौराणिक कथानक में भी प्रेमाख्यानक रंग ढंगों का प्रचलन दिखाई पड़ता है।

इस काव्य में भी प्रेम, वीरता, और भक्ति का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है और ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध राधा और कृष्ण के प्रणय व्यापार के कारण रोमांटिकता से परिपूर्ण हो गया है।

4: चरित काव्यों में प्रेम का प्रारम्भ स्वप्न दर्शन, गुण श्रवण आदि से होता है। यहाँ भी स्वप्न दर्शन से राधा और कृष्ण के प्रेम शुभारम्भ होता है किन्तु जहाँ अन्य काव्यों में प्रेमाख्यान शैली में विवाह से पहले या बाद में नायक नायिका के मिलन में अनेक बाधाओं का उल्लेख मिलता है वहाँ कृष्ण चरित में रीति कालीन परिवेश में पगी स्वाभाविक भूमिका में प्रेम का विकास और मिलन का सुअवसर प्रस्तुत किया गया है।

5: प्रायः सभी चरित काव्यों का कथा रूप वक्ता, श्रोता, योजना के रूप में प्राप्त होता है। यहाँ भी दो बार वक्ता, श्रोता की योजना की गई है। प्रथम अध्याय के प्रथम छन्द में वक्ता भगवान व्यासदेव और श्रोता सनकादि महर्षि हैं। दूसरी बार अष्टम अध्याय में राधा के चरित की चर्चा के प्रकरण में वक्ता भगवान व्यासदेव ही हैं किन्तु श्रोता वृषभानु जी हैं जिन्हें राधा के जन्म से ही पूर्व स्वप्न में भगवान व्यासदेव ने सब कुछ बता दिया।

6: चरित काव्य में अलौकिक एवं अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों आदि का समावेश रहता है। यह काव्य प्राकृतिक रूप में पौराणिक और रोमांटिक दोनों शैलियों में प्राप्त होता है। इसीलिए कृष्ण चरित में भी जन्म से ही लेकर गोवर्धनोद्धारण तक के प्रसंग कृष्ण के अलौकिक कार्यों एवं उनकी अतिमानवीय शक्तियों का यत्र-तत्र उल्लेख है। उत्तरार्द्ध में प्रणय व्यापार में रोमांटिक अति-मानवीयता की योजना प्रायः नहीं है किन्तु कृष्ण का अनेक रूप धारण करके स के साथ एक काल में विहार करना पाठक को चमत्कृत करने के लिए पर्याप्त है।

7: चरित काव्य का कथानक शास्त्रीय प्रबन्ध काव्य की भाँति सन्धियों कार्यावस्थाओं और कार्यान्वितियों के प्रति आग्रहशील नहीं होता अपितु उसमें कथा-वस्तु विशद, विश्रृंखल एवं जटिल होती है। कृष्ण चरित में भी कथानक का विकास बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ है। सन्धियों और संध्यंगों की अपेक्षा उसकी विश्रृंखलता अधिक मनोरम प्रतीत होती है।

8: उसकी शैली सरलता एवं सादगी के साथ उदात्तता से युक्त होती है। कृष्ण चरित में जहाँ एक ओर सादगी और सरलता है वहाँ उसमें कृष्ण के उदात्त चरित्र की उदात्तता अतिशय प्रभाव जनक है।

9: चरित काव्य उद्देश्य प्रधान होता है। कथा काव्यों की तरह केवल मनोरंजन की अपेक्षा उसका उद्देश्य धार्मिक या लोक कल्याण मूलक होता है। कृष्ण चरित में कथाकार का उद्देश्य भी मनोरंजन न होकर श्री कृष्ण के चरित्र में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा करना है जिसमें ऐश्वर्य एवं माधुर्य दोनों प्रकार की लीलाओं का सौन्दर्य अधिक उभरा हुआ और स्पष्ट है जिसमें भक्ति भावना की पुष्टि को ही चरम पुरुषार्थ माना गया है।

इस प्रकार विचार करने पर कृष्ण चरित प्रबन्ध काव्य के उपर्युक्त चरित काव्य के लक्षणों के सर्वथा अनुकूल है। जिसमें शैली की दृष्टि से पौराणिकता और रोमांटिकता-मधुर समन्वय है।

उद्देश्य और विषय वस्तु की दृष्टि से चरित काव्य के छः भेद माने गए हैं। उनमें से इसे धार्मिक पौराणिक व भेद के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए। इसमें प्रेम सम्बन्धी चर्चा होने से इसे प्रेमाख्यानक के रूप में भी देखा जा सकता है किन्तु जैसा हम पहले कह आये हैं इसमें प्रेमाख्यानक परम्परा के अनुरूप नायक नायिका के प्रेममार्ग में विघ्न बाधाएँ नहीं आती और न अलौकिक कार्य अथवा युद्ध का विधान ही किया गया है। वस्तुतः इसमें प्रस्तुत प्रेम व्यंजना माधुर्य भाव की भक्ति की पुष्टिता के लिए की गई दृष्टिगत होती है। यह भी ज्ञातव्य है कि भारत के कुछ अंचलों में जिस ऐश्वर्य लीला का विस्तार किया गया है उस का शेष अंचलों की माधुर्य लीला में भी लोप नहीं हुआ है। श्री कृष्ण की विशेषता बाल से विकराल दैत्यों का विनाश विविध असुरवध आदि का प्रसंग।6 इधर आठ सखियों के साथ विहार आदि में ऐश्वर्य लीला का अनेक अवसरों में वर्णित हुआ है

खण्ड 5 — आचार्य खण्ड

1: काव्य चिन्तन प्रकरण

<u>चिन्तामणि का आचार्यत्व :-</u>

आचार्य शब्द 'चर' धातु से 'आ' उपसर्ग ण्यत् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है । 'चर' धातु का अर्थ यहाँ 'गति' लेना चाहिये । डा० विजय पाल सिंह के अनुसार आ उपसर्ग के कारण क्रिया में अन्तर्निहित सम्भावित गति ही प्रकट नहीं होगी उसकी दिशा भी मिलती है ।[1] गति शब्द के अनेक अर्थ होते हैं जैसे गमन, मोक्ष, ज्ञान आदि । स्पष्ट है कि प्रसंगानुकूलता की दृष्टि से डा० सिंह का भी 'गति' से तात्पर्य 'ज्ञान' से है । 'आ' उपसर्ग ज्ञान की परिधि अथवा विस्तार का आकलन करता है तथा ण्यत् प्रत्यय उस व्यापक ज्ञान पर उसके आधिपत्य को घोषित करता है । जिससे तत् तद् विषयक ज्ञान को व्याख्यायित एवं क्रियान्वित करने का अधिकार प्राप्त होता है ।

आचार्य शब्द अपने में उस अर्थ को भी गत्यात्मक ढंग से समाहित करने का संकेत देता है जिसमें एक ऐसे मार्ग का निर्माण अपेक्षित होता है जो अन्य लोगों के लिये उस ज्ञान के आकलन एवं उपयोग का प्रवर्तक बन सके ।[2] एक अन्य व्युत्पत्ति के अनुसार शास्त्र के गम्भीर तत्वों का चयन करने वाला ही आचार्य है किन्तु इस अर्थ में आचार्य शब्द की व्युत्पत्ति मूलक व्याख्या सम्भव नहीं है ।

इस प्रकार आचार्य शब्द में मूलतः निम्नलिखित विशेषतायें अन्तर्निहित हैं -

---

1. केशव का आचार्यत्व — डा० विजय पाल सिंह

काव्य-चिन्तन

उत्तर-मध्यकालीन साहित्य-शास्त्रीय विवेचन के एक महत्वपूर्ण प्रयास का प्रारम्भ आचार्य चिन्तामणि (सत्रहवीं शताब्दी) से होता है। 'चिन्तामणि' 'रसगंगाधर' के प्रणेता पंडित राज 'जगन्नाथ' के समसामयिक थे और यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि पंडितराज जगन्नाथ जिस शाहजहाँ के सभा पंडित थे और अपनी रचनाओं के लिए सम्मान और संरक्षण प्राप्त करते थे उसी दरबार में चिन्तामणि को भी संरक्षण प्राप्त था।[1]

यह वह समय था जब संस्कृत-साहित्य में काव्य-चिन्तन की परम्परा चरम-बिन्दु का स्पर्श करके स्थिर सी हो गई थी। दूसरी ओर सामान्य जन मानस का बोध पक्ष भी दुर्बल होता जा रहा था और वह संस्कृत के प्रौढ़ चिन्तन को न समझ सकने के कारण उससे दूर होता जा रहा था। इसी दृष्टि से हिन्दी के भक्तियुगीन कवियों, जैसे – कबीर और तुलसी आदि ने प्राकृत एवं लोकप्रिय भाषा – लोक भाषा में रचना प्रारम्भ की।[2]

ऐसी स्थिति में चिन्तामणि ने जनभाषा के माध्यम से संस्कृत की समृद्ध काव्य-चिन्तन परम्परा को जन कवियों तथा सहृदयों तक पहुँचाने का प्रशंसनीय प्रयास किया।

1: ... Chintamani of Cawnpur district, who composed a version of the Ramayan and a treatise on prosody, was also patronised by the emperor.
The cabridge history of India, Vol. IV the mughal period by Jolseley Haig-page 221. 1937

2: (क) कबिरा संस्कृत कूप जल भाखा बहता नीर
जब चाहै तब ही डुबै सीतल होय सरीर। — कबीर

(ख) का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिअत साँच
काम जो आवै कामरी का लै करै कमाच। — तुलसी

उन्होंने 'कवि कुल कल्प तरु' के मंगला चरण के उपरान्त प्रथम दोहे में स्पष्ट रूप से निवेदित किया है कि वे संस्कृत की काव्य-चिन्तन परम्परा का मन्थन करके प्राप्त विचारों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने जा रहे हैं ।[1]

युग भावना के परिप्रेक्ष्य में चिन्तामणि के आचार्यत्व का रहस्य ही थी कि वे प्राचीन काव्य-चिन्तन को लोकवाणी के माध्यम से सर्व साधारण के लिए सुलभ बना रहे थे । वहाँ उनका आचार्य का सुलभ विभिन्न ग्रन्थों के सार-संकलन को लक्ष्य बनाकर चल रहा था । वहीं उनका कवि मन प्रसंगानुकूल मौलिक उदाहरणों के निर्माण द्वारा अपने कवित्व की छाप छोड़ जाना चाहता था । हिन्दी में केशव इस परम्परा का सूत्रपात कर ही चुके थे । चिन्तामणि के समकालिक और समान आश्रयदाता से संबद्ध पंडित राज जगन्नाथ ने प्रतिज्ञा पूर्वक स्वनिर्मित उदाहरणों का उपयोग किया था ।[2] अतः स्वनिर्मित उदाहरणों के प्रस्तुतीकरण के प्रति प्रतिबद्धता का भाव चिन्तामणि के भी मन में रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि ऐसे ही प्रसंगों में आचार्यत्व एवं कवित्व की संगम भूमि के दर्शन होते हैं । अतः चिन्तामणि ने शास्त्रीय-चिन्तन में स्वनिर्मित उदाहरणों की से जो चमत्कार उत्पन्न कर दिया है वह उनके आचार्य-कवित्व का प्रधान उद्घोषक है ।

'कविकुल कल्प तरु' के प्रथम अध्याय में उपक्रम के रूप में काव्य-संबंधी जिन शास्त्रीय विचारों का उल्लेख किया गया है उनका यहाँ संक्षिप्त उल्लेख प्रस्तुत किया जा रहा है ।

<u>काव्य की परिभाषा :-</u>

यद्यपि चिन्तामणि ने मम्मट, विश्वनाथ और विद्यानाथ आदि अनेक आचार्यों

1: ये सुरवानी ग्रंथ हैं जिनको मनुज विचार
चिन्तामणि कवि कहत है भाषा कविता विचार   क०क०त० 1/3

2: निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किंचित् ।
किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः कस्तूरिका जनन शक्ति भृता मृगेण ।
रसगंगाधर पृ0 3-4

के ग्रन्थों से प्रेरणा ग्रहण की है तथापि मूलरूप से वे सबसे अधिक मम्मट से प्रभावित हुए हैं इसमें दो मत नहीं हैं । सर्वप्रथम हम काव्य की परिभाषा को ही लें । उन्होंने काव्य की दो परिभाषाओं का उल्लेख किया है —

क - बत कहाउ रस में जु है कवित कहावै सोइ[1]

ख - सगुनालंकारन सहित दोष रहित जो होइ
शब्द अर्थ ताको कवित कहत विबुध सब कोइ[2]

पहली परिभाषा में आये हुए 'बत कहाउ' का अर्थ बात का कहना अर्थात् उक्ति है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि चिन्तामणि के मत से 'रसमय उक्ति काव्य है' ऐसा काव्य लक्षण ठहरता है । इस प्रकार की परिभाषा से चिन्तामणि रसवादी आचार्यों की पंक्ति में आ-बैठते हैं क्यों कि इनके लक्षण पर विश्वनाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'[3] की छाया स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है ।

यहाँ विचारणीय यह है कि चिन्तामणि ने 'वाक्य' के स्थान पर जिस 'बतकहाउ' शब्द का प्रयोग किया है, उसका गम्भीर व्याख्या कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । भामह[4] आदि आचार्यों ने शब्दार्थ के साहित्य को काव्य कहा था । ध्वन्यालोक[5] में सहृदय श्लाघ्य अर्थ को महत्व प्रदान किया था । विश्वनाथ ने 'वाक्य' शब्द का प्रयोग किया और पंडितराज[6] ने 'शब्द' का ।

1: क०क०त० 1/4
2: वही 1/7
3: सा०द० परिच्छेद 1/3
4: शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् । काव्यालंकार-भामह 1/16
5: योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मा यो व्यवस्थितः ध्वन्यालोक उद्योत 1 कारिका 2
6: रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् । रसगंगाधर प्रथम आनन पृ० 4

साहित्य-शास्त्र की परम्परा में यह एक एक अत्यन्त विवादास्पद विषय रहा है जिसका खण्डन मंडन विद्वानों ने बड़े संरंभ तथा विस्तार से किया गया है और अन्य आचार्यों की स्थापनाओं के करते अपनी स्थापना के औचित्य का सशक्त प्रतिपादन भी किया है ।

प्रस्तुत प्रकरण में चिंतामणि ने किसी प्रकार के शास्त्रार्थ में न पड़कर एक नये पारिभाषिक शब्द 'बतकहाउ' का प्रयोग किया है किन्तु यह कोई सांयोगिक बात नहीं है क्योंकि उनके सामने अपभ्रंश के कवि का 'उक्तिविशेषः कव्वं भासा जाहोइ सा होइ'[1] यह लेख स्पष्ट रूप में विद्यमान था । अतः यहाँ 'बतकहाउ' कहने से उक्ति का चमत्कार अनायास ही हो जाता है वहीं अपभ्रंश के 'विशेषः' की व्याख्या 'रसमय' के द्वारा सुगमता से हो जाती है अतः चिन्तामणि का यह रसवादी लक्षण अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक व्यापक और परिनिष्ठित प्रतीत होता है साथ ही विश्वनाथ के 'वाक्य' पर लगे हुए आक्षेपों से भी छुटकारा मिल जाता है ।

चिंतामणि का दूसरा काव्य लक्षण आलोचकों की दृष्टि में मम्मट के काव्य लक्षण से अनुप्राणित है उसका तात्पर्य यह है कि काव्य उस शब्दार्थ का नाम है जो दोषों से रहित तथा गुण और अलंकारों से सहित हो ।[2] इस संबन्ध में डा० सूर्यनारायण द्विवेदी का कथन है कि " वास्तव में यह परिभाषा आचार्य मम्मट के 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' से पृथक नहीं है, हाँ 'अनलंकृती पुनः क्वापि' को चिन्तामणि नहीं ले सके हैं, हो सकता है कि अलंकारों के प्रति स्वाभाविक पुनीत आसक्ति ही इसका कारण रहा हो" [3] किन्तु हमारे विचार में डा० द्विवेदी की यह धारणा उचित नहीं है क्योंकि चिन्तामणि ने मम्मटानुयायी होते हुए भी हेमचन्द्र, वाग्भट्ट और विश्वनाथ द्वारा संशोधित मम्मटीय काव्य लक्षण को स्वीकार किया है, न कि मूल मम्मटीय लक्षण को । अतः 'अनलंकृती पुनः क्वापि' को (चिन्तामणि)

1:

2: कविकुल० 1/4 पूर्वार्द्ध सूत्र । पृ० 19

3: रीतिकालीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त - डा० सूर्य नारायण द्विवेदी — पृष्ठ 148

नहीं ले सके,, इसमें आचार्य की जो असमर्थता संकेतित है वह उचित नहीं क्योंकि उन्होंने विकसित चिन्तन की पृष्ठभूमि में 'अलंकारों' के मान कुछ कर काव्य का अनिवार्य धर्म मान लिया है । सच्ची बात तो यह है कि किसी भी सरस रचना में अलंकारों की सर्वथा उपेक्षा नहीं हो सकती । निरलंकारता स्वयमेव एक अलंकार है उक्ति विधान में बिना अलंकारों की स्पष्ट योजना के भी रचना धारा में अनायास ही झिलमिलाने वाले अलंकारों की महिमा को कोई कैसे अस्वीकार कर सकता है । अतः अलंकारों के प्राधान्य निर्देश से चिन्तामणि का काव्य लक्षण अधिक औचित्यपूर्ण हो बन सका है । निष्कर्षतः चिन्तामणि के दोनों लक्षणों को एकान्वित करके ही उनके काव्य का अनुशीलन करना चाहिए निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दोषों से रहित गुण एवं अलंकारों से रसमय शब्दार्थ रूप उक्ति को काव्य कहते हैं । इस लक्षण में सभी पक्षों के समाहार का सुन्दर प्रयत्न दिखाई देता है और यही चिन्तामणि की विशेषता है ।

संस्कृत काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत रसवादियों एवं शब्दार्थवादियों के बीच काव्य-परिभाषा को लेकर स्पष्ट मतभेद दिखाई पड़ता है । शब्दार्थवादी काव्य मात्र को शब्दार्थ युगल स्वीकार करने के पक्षपाती हैं, रसवादी रसात्मकता के आग्रह को काव्य के लिए सर्वोपरि स्वीकार करते हैं । ध्वनिवादी दोनों का समन्वय करते हैं । आचार्य चिन्तामणि भी दोनों पक्षों का संकेत करते हुए आचार्य विश्वनाथ एवं पंडितराज जगन्नाथ की रसवादी एवं मम्मट की शब्दार्थवादी धारणाओं का समन्वय करते हुए दिखाई देते हैं ।

काव्य के भेद :-

चिन्तामणि ने रचना की दृष्टि से काव्य के दो भेदों का उल्लेख किया है:- १- गद्य २- पद्य । विशेष उल्लेखनीय यह है कि उन्होंने इन भेदों की चर्चा संस्कृत साहित्य के आधार पर की है -

पद्य गद्य में कीजिये सुर बानी में जोय ।[1]

१: कविकुलकल्पतरु 1/4

स्पष्ट है कि जब आचार्य मम्मट आनन्द को 'सकल प्रयोजन मौलिभूत' स्वीकार करते हैं फिर चिन्तामणि अनेक प्रयोजनों की उलझनों में क्यों फँसे ? दूसरी बात यह है कि ध्वन्यालोक, वक्रोक्ति जीवित, साहित्य-दर्पण जैसे विभिन्न सम्प्रदायों के समर्थक ग्रन्थों में भी आनन्द के प्रयोजनत्व को निर्विवाद रूप से महत्व दिया गया है। अतः चिन्तामणि स्पष्ट है कि आनन्द रूप प्रयोजन में कहीं कोई मतभेद नहीं है।

काव्य पुरुष :-

यों तो महाभारत, वायुपुराण तथा काव्य-मीमांसा में काव्य-पुरुष (सारस्वतेय) के जन्म की कथाओं का उल्लेख मिलता है।[1] किन्तु चिन्तामणि ने जिस काव्य-पुरुष की कल्पना की है उसका उल्लेख उद्देश्य काव्य के विविध उपकरणों को समन्वित रूप में प्रस्तुत करना तथा उनके आनुपातिक महत्व को उभार करना है। काव्य पुरुष की कल्पना कारण सम्भवतः यह है कि जब काव्य की आत्मा का अन्वेषण प्रारम्भ हुआ तो अनायास ही आत्मा (देही) से भिन्न उपकरणों को देह अथवा देहाश्रय के रूप में स्वीकार कर लिया गया। इस पुरुष की कल्पना का एक और भी महत्व है वह यह कि इसके द्वारा काव्य के सभी तत्व एक साथ अन्वित हो जाते हैं और वे परस्पर विरोधी न होकर पूरक बन जाते हैं।

चिन्तामणि ने लिखा है कि शब्द और अर्थ को काव्य-पुरुष का शरीर, रस को उसका जीवित श्लेष आदि गुणों को शौर्य आदि गुणों के समान आत्मा के नित्यधर्म, उपमादिक अलंकारों को हारादि के समान समझना चाहिए। रीति को मानव स्वभाव और वृत्ति को मानव की वृत्ति के रूप में लेना चाहिए। इसी के साथ उन्होंने शय्या और पाक की भी चर्चा की है। वह शय्या पदों के अनुकूल विन्यास को कहते हैं। यह विन्यास वर्तिनी शय्या की भाँति है और काव्य के रसास्वादन में जो सहायक है वह पाक है, जो पाक की तरह आस्वाद्य है। इस प्रकार काव्य पुरुष की लोक की

---

1. साहित्यिक कोश - द्वितीय संस्करण - पृष्ठ 256

भाँति समझना चाहिए ऐसा चिन्तामणि का मत है ।

> सब्द अर्थ तनु बरनिये, जीवित रस जिय जानि ।
> अलंकार हारादि ते, उपमादिक मन आनि ।।
> श्लेष आदि गन सूरतादिक से मनो चित्त ।
> बरनी रीति सुभाव ज्यौं, वृत्ति वृत्ति की मित्त ।।
> पद अनुगुन विश्राम सौं, सज्या सज्या जानि ।
> रस आस्वादनभेद ये पाक पाक है जानि ।।
> कवित पुरुष की आनु सब अनुरु लोक की रीति ।
> गुन विचार अब करत हौं, सुनौ सुकवि करि प्रीति ।।[1]

यद्यपि चिन्तामणि ने प्रतापरुद्र यशोभूषण के आधार पर काव्य पुरुष की कल्पना की है तथापि दोनों में कई बिन्दुओं पर मतभेद है । विवेचन से पूर्व विद्यानाथ की काव्य पुरुष की कल्पना और काव्य सम्पदा का उल्लेख निम्नांकित है ।[2]

> शब्दार्थौ मूर्तिराख्यातौ जीवितं व्यंग्य वैभवम् ।
> हारादिवदलंकारास्तत्र स्युरुपमादयः ।।
> श्लेषादयो गुणास्तत्र शौर्यादय इव स्थिताः ।
> आत्मोत्कर्षावहास्तत्र स्वभावा इव रीतयः ।।
> शोभामाहार्यिकीं प्राप्ता वृत्तयो वृत्तयो यथा ।
> पदानुगुणविश्रान्तिः शय्या शय्येव संमता ।।
> रसास्वाद प्रभेदाः स्युः पाकाः पाका इवोदिताः ।
> प्रख्याता लोकवदियं साम्ग्री काव्य सम्पदः ।।[3]

<u>चिन्तामणि और विद्यानाथ में अन्तर :-</u>

एक - विद्यानाथ ने व्यंग्य को काव्य की आत्मा माना है परन्तु चिन्तामणि

---

1. [illegible] - 1/9, 10, 11, 12
2.
3. प्रताप० यशो० - 2/25

ने रस को काव्यात्मा स्वीकार किया है । यद्यपि उन्होंने मम्मट की भाँति रस को भी ध्वनि का एक प्रभेद मानकर ध्वनि प्रकरण में ही रस का निरूपण किया है और उसे व्यंग्य मात्र अर्थ पर आश्रित माना है तथापि वे रस की उपेक्षा नहीं कर सके हैं । हाँ, रस को व्यंग्य मान लेने पर विद्यानाथ के व्यंग्य और इनकी रस ध्वनि में अधिक अन्तर नहीं रह जाता ।

डा० सत्यदेव चौधरी के अनुसार " इस स्थल में रस को सीमित करने का समाधान केवल यही हो सकता है कि ध्वनि के ही समान रस ध्वनि को सर्वश्रेष्ठ मानना अभिप्रेत है अथवा इस अवसर पर विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत "काव्य पुरुष रूपक" की प्रसिद्धि को चिन्तामणि विस्मृत न कर सके । पिछले कारण की सम्भावना अधिक है[1]।"

विश्वनाथ ने 'काव्य पुरुष रूपक' का इस प्रकार उल्लेख किया है —

काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम् रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवत् दोषाः
रीतयोऽवयव संस्थान विशेषवत् अलंकाराः कटककुण्डलादिवत्‌इति[2]

अतः यह स्वीकार कर लेने में कोई आपत्ति नहीं है कि चिन्तामणि ने रस को आत्मा मानने वाली बात विश्वनाथ से ली है ।

दूसरा अन्तर यह है कि विद्यानाथ में शब्दार्थ, अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति, शय्या, पाक को काव्य की अंगता माना है वहाँ चिन्तामणि ने विश्वनाथ से प्रभावित होकर शब्द, शब्दार्थ, रस, अलंकार, गुण, रीति और वृत्ति को काव्य-पुरुष-रूपक देकर ढंग से घटित किया है,[3] शय्या और पाक संबंधि विवेचना उचित नहीं प्रतीत होता, अनुमान यही है कि यह वस्तुएं न तो पुरुष शरीर के घटक हैं और न उसकी शोभनता तथा शोभा के कारण ।चिन्तामणि ने शेष इनका स

1: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य — डा० सत्यदेव चौधरी : पृष्ठ 4

2: सा०द० 1/2 की वृत्ति पृष्ठ 19

3: वही

होता तो रूपक का समिश्लष्ट [illegible] निर्वाह हो गया होता किन्तु यह उल्लेखनीय है कि शय्या और पाक आदि के लिए 'साथ' शब्द का प्रयोग करके इन्होंने विश्वनाथ की कल्पना के निकट पहुँचने का प्रयास किया है । कुछ भी हो शय्या और पाक का काव्य पुरुष के रूपक में प्रयोग निश्चय ही चिन्त्य है ।

रूपक में श्लेषादि गुणों को शौर्यादि के समान रस रूप आत्मा का उत्कर्षक धर्म माना गया है किन्तु यहाँ भी विश्वनाथ का अनुकरण ही भ्रान्ति का कारण बना है । रसवादी आचार्यों ने वामन सम्मत श्लेषादि गुणों का खण्डन कर दिया है और माधुर्यादि तीन गुणों में ही 10 गुणों का अन्तर्भाव किया है । ऐसी दशा में श्लेषादि गुणों का उल्लेख या तो अनुवाद के प्रवाह में किया है या प्रमादवश । रीति और वृत्ति को चिन्तामणि ने क्रमशः मानव स्वभाव और मानव वृत्ति के साथ जोड़ा है । मानव स्वभाव और मानव वृत्ति में अन्तर यह है कि मानव स्वभाव अपेक्षाकृत बाहरी होता है जबकि मानव वृत्तियाँ आन्तरिक । चंचलता, उग्रता आदि मानव स्वभाव के अंग हैं तथा दया, स्नेह आदि मानव वृत्तियों के । ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि रसानुकूल उचित शब्द व्यवहार रीति तथा अर्थ योजना वृत्ति है । विश्वनाथ ने 'रीतयोऽवयव संस्थान विशेषवत्'[1] कह कर जिस 'पद संघटना रीतिः' का उल्लेख किया है । यह काव्य-पुरुष के रूप में अधिक संगत है । यों ही चिंतामणि ने अपने विवेचन के द्वारा रीति और वृत्ति में भेदक रेखा खींचने में सफलता पाई है ।

इन उपर्युक्त आलोच्य तथ्यों के रहते हुए भी यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि चिन्तामणि का काव्य सामग्री संकलन निश्चय ही महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय है । रूपक के निर्वाह में कठिनाई विश्वनाथ के अनुकरण के कारण हुई है।

- x 0 x -

1: सा० द० - 1/2 की वृत्ति पृष्ठ 16

2: गुण प्रकरण

गुण प्रकरण

गुण एक ऐसा विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है जिसका विद्वानों ने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार अनेक प्रकार से विवेचन किया है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में दोष के विपर्यय को गुण की संज्ञा दी है।[1] उनकी दृष्टि में गुण और दोष का परिचय एक दूसरे के अभाव रूप में ही होता है। अतः कहा जा सकता है कि भरत की दृष्टि में गुण अभावात्मक तत्त्व है, किन्तु लक्षण करते समय उन्होंने दस प्रकार के गुण के जो लक्षण दिये हैं उनसे गुण प्रायः भावात्मक ही दृष्टिगत होते हैं। कालान्तर में भरतमुनि के विपर्यय का अर्थ दोष का अभाव अन्यथाभाव और विपरीत भाव आदि किया गया है।

वामन वस्तुतः गुण के प्रथम प्रतिष्ठापक आचार्य हैं। उनके अनुसार गुण काव्य की शोभा (सौन्दर्य) को उत्पन्न करने वाले धर्म (तत्त्व) हैं।[2] चूँकि शब्दार्थ का साहित्य ही काव्य है अतः गुण शब्द और अर्थ के धर्म हैं तथा काव्य में उनकी अनिवार्य स्थिति है।

ध्वनिवादी आचार्यों ने गुणों को रस रूप आत्मा के धर्म के रूप में माना है। मम्मट का कथन है कि आत्मा के शौर्यादि धर्मों के समान काव्य के आत्मभूत प्रधान रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षाधायक धर्म हैं वे गुण कहलाते हैं। जैसे शौर्यादि धर्म आत्मा के ही होते हैं आकार के नहीं, इसी प्रकार माधुर्यादि गुण रस के ही धर्म होते हैं वर्णों के नहीं।[3]

1: एत एव विपर्यस्ता गुणाः काव्येषु कीर्तिताः ।
नाट्य शास्त्र 17/95

2: क- काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः ।
काव्यालंकार सूत्र वृत्ति 3/1/1

ख- ये खलु शब्दार्थयोः धर्माः काव्यशोभां कुर्वन्ति ते गुणाः । (काव्यालंकार 3/1/1 की वृत्ति)

3: ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।।
काव्य प्रकाश – 8/66

पंडित राज जगन्नाथ का दृष्टिकोण मौलिक है । वे रस-भाव-धर्मता को उचित नहीं मानते । उनका यह भी तर्क है कि रस आत्मानन्द है, आनन्द आत्मा का गुण नहीं स्वरूप है । आत्मा निर्गुण है फिर माधुर्य आदि को उसका गुण कहना और नित्य धर्म मानना कैसे संगत है ।[1] अतः उन्होंने गुण को शब्दार्थ धर्म माना है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि "काव्य की शोभा को सम्पादित करने वाली या काव्य की आत्मा को प्रकाशित करने वाली तत्त्व या विशेषता गुण हैं । ये गुण शब्द और अर्थ के धर्म हैं । ये वर्ण संघटन, शब्द योजना, शब्द चमत्कार, शब्द प्रभाव और अर्थ दीप्ति पर आश्रित हैं ।[2]

गुणों की संख्या के विषय में भी आचार्यगण एक मत नहीं हैं । भरतमुनि ने श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदसौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति नामक दस गुण बतलाये हैं ।[3]

दंडी ने भी इन्हीं को स्वीकार किया है किन्तु समाधि, कान्ति आदि कुछ गुणों के विषय में उनकी धारणा भिन्न प्रकार की है । वामन के गुणों की संख्या दस है किन्तु वे शब्द और अर्थ के भेद से बीस प्रकार के होते हैं ।

गुणों की संख्या का सबसे अधिक विस्तार भोज में मिलता है । उन्होंने उक्त दस गुणों के साथ चौदह अन्य गुणों को स्वीकार किया है तथा बाह्य, आभ्यन्तर एवं वैशेषिक रूप से तीन भेद किए हैं । बाह्य स्पष्टतः शब्द गुण और आभ्यन्तर अर्थ गुण है । वैशेषिक वे दोष हैं जो किसी विशेष सन्दर्भ में गुण हो

1: किंचात्मनो निर्गुणतया रूप रसरूपस्य माधुर्यादिमत्त्वमनुपपन्नम् ।
रस गंगाधर पृष्ठ 55
2: हिन्दी साहित्य कोश द्वितीय संस्करण पृष्ठ 267 गुण शब्द का विवेचन ।
3: श्लेषः प्रसादः समता समाधिर्माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम् ।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते ।।
नाट्य शास्त्र 16/96

7: कान्ति :-

कान्ति का अर्थ है कमनीयता । अतएव मम्मट ने इसे औज्वल्यरूपा कहा है । वामन ने इसे रचना की नवीनता में माना है, किन्तु चिन्तामणि ने इसे ग्राम्यत्व दोष के अभाव में के साथ स्वीकृत किया है ।

उज्वल वध्यतु कान्ति यह ग्राम्य अभाउ गनाउ ।[1]

8: प्रसाद :-

ओज सहित जो सिथिल पद बन्ध प्रसाद जु होइ ।[2]

यह अंश वामन सम्मत है[3] किन्तु माधुर्य तथा ओज के लक्षण नहीं दिये हैं, केवल उदाहरण दिया है । मम्मट ने भी ओज का पृथक लक्षण नहीं किया है ।

दस शब्द गुणों का तीन गुणों में अन्तर्भाव :-

मम्मट के आधार पर अन्तर्भाव तीन रूपों में किया गया है :-

कोउ अन्तर भूत इत कोउ दोष अभाव ।
कोउ दोष त्रिविधगुन तातें दस न गनाउ ॥[4]

1: क०क०त० 1/51

2: क०क०त० 1/34

3: शैथिल्यं प्रसादः । का० सू० वृ० 3/1/16

4: क० क० त० 1/18

तुलनीय - केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात्परे श्रिताः ।
अन्ये भवन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश ॥का०8/72

प्रथम चार प्रकारों को भी श्लेष की भाँति वैचित्र्य मात्र माना गया है और उसके पाँचवें प्रकार को अधिक पदत्व नामक दोष के अभाव के रूप में स्वीकार किया गया है ।[1]

समाधिगुण के अयोनि और अन्यच्छाया योनि नामक दो भेद किए गए हैं तथा उनके उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं ।[2] किन्तु इसके खण्डन का उल्लेख नहीं है । मम्मट ने माना है कि किसी रचना में यदि दोनों भेदों में से कोई भेद न हो तो काव्य का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है अतः यह काव्य के कारणों में आ सकता है किन्तु चिन्तामणि ने यहाँ मौन क्यों धारण कर लिया यह बतलाना कठिन है ?

चिन्तामणि की देन :-

चिन्तामणि की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने काव्य प्रकाश को आधार बनाते हुए भी वामन के अनुकूल दोनों के लक्षण और उनके उदाहरणों का विस्तृत उल्लेख किया है और छन्दों की सीमा में भी खण्डन-मण्डन की शास्त्रीय प्रक्रिया का निर्वाह किया है । इससे गुण के प्रायः पूर्ण और शुद्ध रूप का परिचय सरलता से हो जाता है । दूसरी बात यह है कि इनके उदाहरण लक्षणों की कसौटी पर बिल्कुल खरे उतरे हैं । लक्षणानुकूलता के निर्वाह के साथ रीतिकालीन रंगीनी और सरसता से युक्त ये उदाहरण - मुक्तक चिन्तामणि के कवि रूप को प्रकाशित करने में पूर्ण समर्थ हैं । आचार्यत्व एवं कवित्व का यह मणिकांचन संयोग निश्चय ही प्रशंसनीय है ।

जहाँ तक मौलिकता का प्रश्न है, यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि चिन्तामणि की दृष्टि मूल रूप में परम्परा की छिपी कड़ियों तक पहुँचाने में रही है, किन्तु जब तब उनकी मौलिक अभिरुचि स्पष्ट झलकती है जो इस प्रकार है :-

1: माधुर्य गुण को उन्होंने सर्वोत्तम काव्य के मूल तत्व के रूप में स्वीकार किया है ।
2: उदारता में अग्राम्यत्व और अर्थव्यक्ति में स्वाभाविकता का निरूपण किया है ।
3: ओज के वैचित्र्य में अलंकारत्व के सम्बन्ध का उल्लेख किया है ।

अतः कुल मिलाकर चिन्तामणि का गुण प्रकरण रीतिकालीन अन्य आचार्यों की तुलना में अधिक व्यवस्थित और शुद्ध है ।

1: [illegible] 1/56

2: [illegible] 1/55 तथा 1/80, 1/81

3: अलंकार प्रकरण

अलंकार-प्रकरण

चिन्तामणि के आचार्यत्व का मूल रहस्य है उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति । यही कारण है कि उन्होंने किसी एक आचार्य की मतानुवर्तिता को न स्वीकार करके अपनी रुचि और शक्ति के अनुरूप अनेक आचार्यों के सार-संकलन का प्रयास किया है । फलतः उनकी इस संग्रह-चयन की प्रवृत्ति के कारण 'कविकुल कल्प तरु' में अनेक मौलिकताओं का समावेश हो सका है । ग्रन्थ के उपक्रम में उन्होंने इस तथ्य का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि इस ग्रन्थ में संस्कृत साहित्य के विभिन्न आकर ग्रन्थों के अवगाहन से प्राप्त निष्कर्षों को अपने चिन्तन के आलोक में विवेचित करने का प्रयास किया गया है ।[1]

अतः इस पृष्ठभूमि में जब हम चिन्तामणि के अलंकार निरूपण के प्रसंग में आचार्य मम्मट, विद्यानाथ, विश्वनाथ एवं अप्पय दीक्षित के ग्रन्थों की प्रतिच्छाया देखते हैं तो हमें एक सुखद संतोष ही प्राप्त होता है । उल्लेखनीय है कि स्थान-स्थान पर तत्तत् आचार्यों का नामोल्लेख करके चिन्तामणि ने अपनी स्पष्ट कृतज्ञता ज्ञापित करने का प्रयत्न किया है । साथ ही आधारभूत ग्रन्थों के उल्लेख से ग्रन्थ की प्रामाणिकता भी सिद्ध हो जाती है । नीचे आकर ग्रन्थों के उल्लेख के अंश उद्धृत किये जाते हैं :-

मम्मट का उल्लेख:-

'लखि विविध काव्यकुल को कछु और की ठौर ।
कहि वामनोक्ति कहत पंडित मम्मट ठौर ।।
अतिशयोक्ति लौ कहि विधि मम्मट कथन प्रकार ।
बरनत चिंतामनि सुकवि निजमति के अनुसार

---

1. जे सुर बानी ग्रन्थ हैं तिनको समुझि विचार ।
चिंतामनि कवि कहत हैं भाषा कविता विचार ।।
कविकुल० - 1/3

चिन्तामणि —

जहाँ एक दुवे तीनि को, लोप चारि मैं होइ ।
चिंतामनि कवि कहत है, लुप्ता कहिए सोइ ।।[1]

विश्वनाथ —

लुप्ता सामान्यधर्मादेरेकस्य यदि वा द्वयो
स्त्रयाणां वानुपादाने श्रौत्यार्थी सापि पूर्ववत् ।[2]

विवेचन :—

स्मरणीय है कि यहाँ भी चिन्तामणि ने केवल चार तत्वों में से एक दो अथवा तीन के लोप की बात कही है किन्तु लुप्ता के श्रौती आर्थी भेदों का लक्षण में उल्लेख नहीं किया है जब कि विश्वनाथ के लक्षण में स्पष्ट उल्लेख है ।

उपमा में साधारण धर्म के स्वरूप तथा प्रकार का निर्धारण :—

जिन उपमा भेदों में साधारण धर्म लुप्त नहीं हुआ करता, उनमें उसकी (साधारण धर्म की) ये कतिपय अवस्थाएँ हुआ करती हैं —

1- कहीं-कहीं (उपमान और उपमेय दोनों में) साधारण धर्म एक रूप का ही रहता है ।
2- कहीं-कहीं उपमानगत साधारण धर्म से उपमेयगत साधारण धर्म की इस भिन्न-भिन्न रूपता की दो सम्भावनाएँ हुआ करती हैं (क) या तो उसमें बिम्ब प्रति बिम्ब भाव का सम्बन्ध होता हो या (ख) केवल शब्दमात्र का भेद होता हो ।

इसी आधार पर चिंतामणि ने अपनी परिभाषा निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत की है :—

चिन्तामणि —

इक साधारण धर्म पुनि कम दुवे भाँति बनाइ ।
वस्तु और प्रति वस्तुकौ, पुनि बिम्बहि बनाइ ।।

---

1. कविकुलकल्पतरु - 2/17, 18, 19
2. सा०द० - 10/23 का उत्तरार्द्ध तथा 10/24 पूर्वार्द्ध

एक अर्थ द्वै शब्द सों, जहँ कहिए द्वै बार ।
कहि वस्तु प्रति वस्तु यह, भाव सुबुद्धि विचार ।।
एक शब्द सों अर्थ जुग, जहाँ बखान्यो होइ ।
तहाँ बिम्ब प्रति बिम्ब यह, भाव कहै कवि कोइ ।।[1]

विश्वनाथ –

एक रूपः क्वचित्कुत्रापि भिन्नः साधारणो गुणः ।
भिन्ने बिम्बानुबिम्बत्वं शब्दमात्रेण वा भिदा ।।[2]

विवेचन :–

विश्वनाथ के 'शब्द मात्रेण वा भिदा' अंश का तात्पर्य यह है कि शब्द मात्र से साधारण धर्म की भिन्नता प्रतीत होती है । अर्थ में कुछ भिन्नता नहीं होती । अतः जहाँ एक ही तत्व को दो शब्दों से दो बार कहते हैं वहाँ वस्तु प्रति वस्तु भाव हुआ करता है । डा० सत्यव्रत सिंह के अनुसार "साहित्यदर्पणकार का यह साधारण धर्म स्वरूप विवेचन अलंकार सर्वस्व की इन पंक्तियों पर अवलम्बित है :–

"तत्रापि साधारण धर्मस्य क्वचिदनुगामितया ऐकरूप्येण निर्देशः क्वचिद् वस्तुप्रतिवस्तुभावेन पृथङ्निर्देशः"

यहाँ वस्तु प्रति वस्तु भाव और बिम्ब प्रति बिम्ब भाव के स्पष्टीकरण के लिए निम्नांकित वाक्य उद्धृत किये गए हैं –

क – "एकस्यैव धर्मस्य संबन्धिभेदेन द्विरुपादानं वस्तुप्रतिवस्तुभावः"। (जब संबन्धी की भिन्नता के आधार पर एक ही धर्म का दो बार ग्रहण होता है तो वहाँ वस्तु-प्रतिवस्तुभाव होता है)

ख – "वस्तुतो भिन्नयोर्धर्मयोः परस्परसादृश्यादभिन्नतयाध्यवसितयोर्द्विरुपादानं बिम्ब प्रतिबिम्बभावः ।" (वास्तविक रूप में भिन्न धर्म वाली दो वस्तुओं में जब परस्पर

1: काव्यनि० – 3/17, 18, 19
2: सा०द० – 10/23 का उत्तरार्द्ध तथा 10/24 का पूर्वार्द्ध ।

लिखा गया है उस पर ध्यान नहीं दिया है । स्मरणीय है कि एक वाक्य में उपमान-उपमेय का परिवर्तन असम्भव है । अतः वाक्य भेद होने पर ही अथवा वाक्यार्थभेद होने पर ही उपमेयोपमा अलंकार सम्भव है, क्योंकि एक वाक्य में उपमेय के उपमान बन जाने पर प्रतीप अलंकार हो जाता है । दूसरी बात यह है कि अनन्वय में एक वाक्य होता है । इसलिए 'वाक्यद्वये' शब्द अनन्वय का व्यवच्छेदक है । अतः उपमान और उपमेय का ऐसा विपर्यास जिसमें अन्य उपमान का निषेध हो उपमेयोपमालंकार' का स्थल है । कहना न होगा कि इस सूक्ष्म शास्त्रीय चिंतन की ओर चिंतामणि की दृष्टि नहीं गई । फलतः लक्षण शास्त्रीय की कसौटी पर खरा नहीं उतरता ।

उत्प्रेक्षा :—

चिन्तामणि —

वस्तु धर्म सो अन्यता, सम्भावन जौं होइ ।
वर्णमानु कछु वस्तु को उत्प्रेक्षा कहि सोइ ।।[1]

मम्मट —

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।[2]

विवेचन —

सामान्यतः उत्प्रेक्षा अलंकार का चिंतामणि कृत लक्षण मम्मट एवं तदुत्तरवर्ती विश्वनाथ एवं जगन्नाथ आदि के अनुकूल है, किन्तु 'वस्तु धर्म' की चर्चा से चिंतामणि का लक्षण अधिक स्पष्ट एवं निश्चित हो गया है । साधारण धर्म को निमित्त मान कर की गई कवि प्रतिभा जन्य सम्भावना से ही उत्प्रेक्षा अलंकार की सिद्धि होती है ।

उत्प्रेक्षा के भेद :—

चिंतामणि ने उत्प्रेक्षा के भेदों का विस्तार से निरूपण किया है । यद्यपि वे संस्कृत आचार्यों की तरह भेद निरूपण पद्धति के प्रति उतने आग्रहशील नहीं हैं जितने विषय के स्पष्टीकरण के प्रति, तथापि उत्प्रेक्षा के भेदों के प्रति उन्होंने विशेष रुचि प्रदर्शित की है । भेद निरूपण के क्रम में उन्होंने दो बार विश्वनाथ का

---

1. [illegible] - 3/29
2. [illegible] सूत्र 136 10 उल्लास पृष्ठ 460

उल्लेख किया है और एक बार कुवलयानन्द का, किन्तु जहाँ विद्यानाथ ने 104 भेदों की चर्चा की है तथा विश्वनाथ ने 176 भेद माने हैं वहाँ चिंतामणि ने विद्यानाथ के प्रमुख 32 भेद और कुवलयानन्द के मुख्य चार भेद स्वीकार किये हैं। उदाहरणों के उल्लेख से अनावश्यक ग्रन्थ का कलेवर न बढ़ाकर भेदों के निरूपण निम्नलिखित हैं —

सर्व प्रथम उत्प्रेक्षा के दो भेद हैं — 1. वाच्योत्प्रेक्षा 2. प्रतीयमानोत्प्रेक्षा। जाति, क्रिया, गुण और द्रव्य भेद से दोनों चार-चार प्रकार की होती हैं। पुनः भाव और अभाव रूप से दोनों के 8-8 भेद हो जाते हैं। तदनन्तर गुण निमित्त और क्रिया निमित्त के आधार पर दोनों के 16-16 भेद होते हैं। यहाँ विद्यानाथ के निम्नलिखित निरूपण का चिन्तामणि ने अनुसरण किया है।

भेदाः-वाच्या, प्रतीयमाना च। जातिक्रियागुणद्रव्याणाम् चतुर्णामप्युत्प्रेक्षणीयत्वेन सा द्विविधा। प्रत्येकं चतुर्विधा। तेषां भावाभावरूपतया द्वैविध्ये अष्टविधत्वम् गुण-निमित्तत्वेन क्रियानिमित्तत्वेनच द्वैविध्यं प्रत्येकं षोडशप्रकाराः ।[1]

स्मरण अलंकार :—

चिन्तामणि —

सदृशवस्तु अवलोकि कछु, आवत मन को ध्यान।
स्मरण कहत चिन्तामणि, ताको सुकवि सुजान ।।[2]

रुय्यक-

सदृशानुभवाद्-वस्त्वन्तरस्मृतिः स्मरणम्[3]

विवेचन-

प्रस्तुत लक्षण रुय्यक के लक्षण का अनुवाद है। विश्वनाथ तथा विद्यानाथ ने भी रुय्यक ही से प्रभाव ग्रहण किया है किन्तु 'अन्तर' शब्द के न होने से लक्षण

---

1. प्रतापरुद्रीय - पृ- [illegible]
2. [illegible] 3/75
3. रुय्यककृत अलंकार सर्वस्व-32

है । उनके अनुसार विनिरोहित (प्रकट अथवा अनपह्नुत) विषय का जो विषयी उप-रंजक अथवा उपकारक होता है वह रूपक है । इस लक्षण में भी आरोप्यमाण अंश का लक्षण में उल्लेख नहीं है । इतना होते हुए भी दोनों लक्षण एक दूसरे के पूरक हैं और सम्मिलित रूप से रूपक अलंकार की सीमा को स्पष्ट करते हैं । यह भी स्मरणीय है कि विश्वनाथ के लक्षण का संकेत मम्मट की वृत्तियों में विद्यमान है ।[5]

रूपक के भेद :-

चिन्तामणि ने रूपक का भेद निरूपण निम्नलिखित रूप से किया है -

चिन्तामणि -

पुनि तत सावयव अरु निरवयव कहु प्रकार ।
दूजे विधि सावयव पुनि त्रिविध बरनत विमल विचार ।
बरन कहु विस्तार प्रथम बरनत सुकवि विचारि ।
एक देश विवरत अपर परंपरित निरधारि ।।
निरवयवो पुनि द्विविध मन केवल मालारूप
इनके दैत उदाहरन सुनिये सुमन अनूप
जहाँ एक आरोप में आरोपान्तर होय ।
परम्परित रूपक तहाँ ।।
श्लिष्ट विशेषन होत कहु औ अश्लिष्ट निहारि ।
मालारूप परम्परित, रूपक सुमन विचारि ।[6]

[illegible]: काव्यप्र० 3/77
3: प्र०रू०कु०- विश्वनाथ, पृष्ठ 268
4: सा०द० 10/28 का पूर्वार्द्ध
5: प्रदीप - काव्यप्र० 10/93 की वृत्ति
6: कवि०कल्प० 3/79-81 और 85, 86

है । यद्यपि उन्होंने रूपक और परिणाम अलंकार के भेदक तत्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया है किन्तु 'सविषयी विषयात्मके' इस कथन में शिथिलता के कारण परिणाम का लक्षण असमर्थ रह गया है । इसके भेदों की चर्चा भी चिन्तामणि ने नहीं की है ।

<u>सन्देह :-</u>

<u>चिन्तामणि :-</u>

जहाँ विषय विषई दुहुन कवि सम्मत मत ताहि ।
संदेहरूप होत है कहि संदेह तहाहि ।।
प्रथम कहत निश्चय गरभ, निश्चयांत पुनि जान ।
अलंकार संदेह यह, सकल त्रिविध मन आन ।।[1]

<u>विश्वनाथ :-</u>

विषयो विषयी यत्र सादृश्यात् कविसंमतात्
संदेह गोचरो स्यातां संदेहालंकृतिस्तदा
सात्रिविधा- शुद्धा निश्चयगर्भा, निश्चयान्ता चेति[2]

<u>विवेचन:-</u>

स्पष्ट है कि चिन्तामणि ने विश्वनाथ के कारिका एवं वृत्तिभाग का उचित अनुवाद करके संदेह का लक्षण प्रस्तुत किया है । जहाँ तक भेदों का प्रश्न है वहाँ विश्वनाथ ने तीन भेद किये हैं । शुद्ध का उल्लेख नहीं किया है सम्भव है उन्हें दो ही भेद मान्य हों अथवा यह भी हो सकता है कि संदेह के लक्षण को शुद्ध संदेह मान लिया हो और शेष दो भेदों का उल्लेख कर दिया है, जो भी हो शुद्ध का उल्लेख न होने से अनुवादन स्पष्टता में बाधक हो गया है ।

<u>भ्रान्तिमान:-</u>

<u>चिन्तामणि :-</u> जहाँ होत है प्रकृतिमें, अप्रकृतिनि को ज्ञान ।

1: क०कु०क० 3/95 तथा 3/96

2: सा०द०, विश्वनाथ पृष्ठ 274

भ्रान्तिमान यासो कहत वीहित सुकवि सुजान ॥[1]

<u>मम्मट :—</u>

भ्रान्तिमानन्यसंवित् तत्तुल्यदर्शने ।

तदिति अन्यत् अप्राकरणिकं निर्दिश्यते । तेन समानं च यदीह प्राकरणिकम् दृश्यते । तत्र तथाविधस्य दृष्टौ सत्यां यत् अप्राकरणिकतया संवेदनं स भ्रान्तिमान् ।[2]

<u>विवेचन :—</u>

भ्रान्तिमान अलंकार में अप्राकरणिक वस्तु के समान प्राकरणिक अर्थ का भान होता है । चिन्तामणि ने मम्मट के उपर्युक्त लक्षण एवं वृत्ति का अनुवाद करते हुए प्राकरणिक एवं अप्राकरणिक के स्थान पर प्रकृति तथा अप्रकृति का प्रयोग किया है जो अलंकार के मौलिक रूप के प्रतिकूल नहीं है । साथ ही लक्षण की सरलता सुरक्षित है । अतः यह लक्षण प्रशंसनीय है ।

<u>अपह्नुति :—</u>

<u>चिंतामणि :—</u>

विषय को आरोप कै, और जो किये निषेध ।

ताहि अपह्नुति कहत हैं धर्मीह समुक्ति सुमेध ॥[3]

<u>विद्यानाथ :—</u>

निषिद्धविषयं साम्यात् अन्यारोपेऽप्यपह्नुतिः[4]

<u>विवेचन :—</u>

चिंतामणि ने विद्यानाथ का भावानुवाद किया है अतएव 'यहाँ "अन्यारोप' के स्थान पर 'विषय" के आरोप' के द्वारा विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है वहीं 'साम्यात्' को ठीक ढंग से प्रस्तुत नहीं किया गया है । 'धर्मीह समुक्ति' के

---

1. कविकुलकल्पतरु 3/99
2. काव्यप्रकाश - 10/132 का उत्तरार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 199
3. कविकुलकल्पतरु- 3/101
4. प्रतापरुद्रीय, विद्यानाथ 276

द्वारा समानधर्मिता का दूरारूढ़ आरोप किया जा सकता है । अतः अनुवाद अविकल न होते हुए भी अस्पष्ट नहीं है ।

<u>उल्लेख</u> :—

<u>चिन्तामणि</u> :—

> कहुँ ग्राहक के भेद कहुँ विषय भेद सो होइ ।
> एकहि को उल्लेख बहु, कहि उल्लेख सुजोइ ॥[1]

<u>विश्वनाथ</u> :—

> क्वचिद्भेदात् ग्रहीतॄणां विषयाणां तथा क्वचित्
> एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते[2]

<u>विवेचन</u> :—

चिंतामणि ने विश्वनाथ के लक्षण का अत्यन्त सफल एवं स्पष्ट शब्दानुवाद किया है तथा उन्हीं के अनुसार ग्राहक भेद एवं विषय भेद से दो प्रकार के उल्लेख की चर्चा की है ।

<u>विशिष्ट टिप्पणी</u> :—

चिन्तामणि ने लिखा है कि परिणाम और उल्लेख यह दोनों अलंकार रूपक में ही समाहित होते हैं किन्तु इन दोनों का तथा इनके भेदक तत्वों का उल्लेख स्पष्ट[3] रूप से नहीं किया है । वस्तुस्थिति यह है कि रूपक में आरोप्यमाण उपमान (चन्द्रादि) आरोप विषयक उपमेय मुख आदि के उपरंजक प्रतीत हुआ करते हैं किन्तु परिणाम में प्रकृत अर्थ की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए आरोप्यमाण और आरोप विषय में अभेद तादात्म्य स्थापित हो जाता है और यह तादात्म्य उसके कार्य में भी प्रयुक्त हुआ करता है ।

1: क०क०त० 3/103

2: सा०द० 10/37

3: परिणाम उल्लेख ए सोऊ रूपक मांहि ।
भिन्न अंग कुछ रूप हो प्रगट करने नाहि ॥ क०क०त०- 3/107

<u>विवेचन</u> :-

चिंतामणि ने आचार्य मम्मट के लक्षण का भावानुवाद किया है जिससे लक्षण का आशय तो निकल आता है किन्तु स्पष्टता नहीं है । मम्मट ने किसी 'छद्म' से स्वरूप को छिपाये जाने की बात कही है अतः 'छद्म' छिपाने में कारण होगा किन्तु चिंतामणि ने कारण के स्थान पर 'काज' शब्द का प्रयोग कर दिया है जिससे भ्रान्ति उत्पन्न हो सकती है ।

<u>सहोक्ति</u> :-

<u>चिंतामणि</u> :-

संग अर्थ के शब्द बल द्वै भासक पद एक ।
तहाँ सहोक्ति होति है, यों कवि करत विवेक ।।[1]

<u>मम्मट</u> :-

सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम् [2]

<u>विवेचन</u> :-

यह अलंकार सह शब्द अथवा सह के अर्थ पर आश्रित है । चिंतामणि ने मम्मट के लक्षण का शब्दानुवाद किया है । अनुवाद स्पष्ट एवं सफल है ।

<u>विनोक्ति</u> :-

<u>चिंतामणि</u> :-

जहाँ कछु बिन होत कछु रम्य अरम्य सुबात ।
बुधु जन मत सौं विनउक्ति अलंकार कहि जात ।।[3]

<u>मम्मट</u> :-

विनोक्तिः सा विनाऽन्येन यत्रान्यः सन्न नेतरः ।
क्वचिदशोभनः क्वचिच्छोभनः ।[4]

1: क०कु०क० 3/126
2: का०प्र० 10/112 सूत्र 183
3: क०कु०क० 3/126
4: का०प्र० 10/112 ~~का मूलसूत्र तथा उसकी वृत्ति~~ । सूत्र 169

<u>विश्वनाथ</u> :–

विना सम्बन्धिनः किंचिद् यत्रान्यस्य परा भवेत् ।
अरम्यता रम्यता वा सा विनोक्तिरिति स्मृता ।।[1]

<u>विवेचन</u> :–

विनोक्ति के लक्षण में चिंतामणि ने मम्मट एवं विश्वनाथ के सारांश को लेकर अत्यन्त स्पष्ट लक्षण दिया है किन्तु मम्मट के शोभन और अशोभन के बदले विश्वनाथ के रम्य और अरम्य का प्रयोग किया गया है ।

<u>सामान्य</u> :–

<u>चिंतामणि</u> :–

प्रस्तुति में जहँ और सों, गुन के साम्य निहारि
एक रूपता बरनिये सो सामान्य विचारि ।[2]

<u>मम्मट</u> :–

प्रस्तुतस्य यदन्येन गुणसाम्यविवक्षया ।
ऐकात्म्यं बध्यते योगात् तत्सामान्यमिति स्मृतम्[3]

<u>विवेचन</u> :–

मम्मट के लक्षण का चिंतामणि द्वारा सफल और स्पष्ट अनुवाद प्रस्तुत किया गया है ।

<u>तद्गुण</u> :–

<u>चिंतामणि</u> :–

निज गुन तजि उत्कृष्ट गुन, गहै आनिकै कोइ ।
अलंकार तद्गुन कहौ कवि जन सम्मत होइ ।।[4]

<u>विश्वनाथ</u> :–

तद्गुणः स्वगुण त्यागादन्योत्कृष्ट गुणाहृतिः ।[5]

1: प्र०रू०पृ० विश्वनाथ - 289-290
2: का०क०त० 3/131
3: का०प्र० 10/134 तथा सूत्र 201
4: का०क०त० 3/133
5: प्र०रू०पृ० विश्वनाथ चिंतामणि

<u>विवेचनः—</u>

तद्गुण के लिए चिंतामणि ने विश्वनाथ का आधार लिया है । विश्वनाथ ने अन्य के उत्कृष्ट गुण को ग्रहण करने के लिए अपने गुण का त्याग करने को तद्गुण कहते हैं । ध्यातव्य है कि मम्मट[1] ने उत्कृष्ट के बदले अति उज्ज्वलता का उल्लेख किया है और अप्पय्य[2] दीक्षित ने बिना किसी कारण के त्याग और दूसरे गुण के ग्रहण को तद्गुण माना है । विश्वनाथ का लक्षण भी विश्वनाथ के समान है —

तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः।[3]

<u>अतद्गुणः—</u>

<u>चिंतामणिः—</u>

और वस्तु गुन को ग्रहन जहँ न करै कछु बात ।
ताहि अतद्गुन कहत हैं जो कवि मति अवदात ।।[4]

<u>मम्मटः—</u>

तद्रूपाननुहारश्चेदस्य तत् स्यादतद्गुणः[5]

<u>विवेचनः—</u>

चिन्तामणि ने मम्मट का छायानुवाद किया है । किसी भी कारण से दूसरे के गुण ग्रहण न किये जाने का उल्लेख करके चिंतामणि ने मम्मट की वृत्ति द्वारा सांकेतिक अतद्गुण की दोनों स्थितियों के उल्लेख का सफल प्रयास किया है तथापि लक्षण का झुकाव वृत्ति के निम्नलिखित अंश की ओर है :—

तेन तत् अनुकूलत्व रूपं ग्रहणं कुतोऽपि निमित्तात् नानुविधीयते सोऽतद्गुण स्यादपि प्रतिपत्तव्यम् ।[6]

1: का०प्र० 10/37 तथा वृत्ति 203
2: कुवलयानन्द - पृष्ठ 235
3: सा०द० 10/90
4: क०कु०त० 3/135
5: का०प्र० 10/138 तथा वृत्ति 204
6: वही 10/138 की वृत्ति ।

विरोधः—

चिंतामणि :—

सो विरोध अविरुद्धता मैं जहँ विरोध अभिधान ।
सुनौ जाति गुन क्रिया अरु द्रव्य माह संधान ॥
जाति जात्यादिकन सौं गुन गुनादि सो जानि ।
क्रिया क्रिया अरु द्रव्य सौं, द्रव्य द्रव्य सो मानि ॥
यौं विरोध दस भाँति सो मम्मट गए बखानि ।
तिनके देत उदाहरन सुकवि लेहु मन मानि ॥[1]

मम्मट :—

विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः ।
वस्तुवृत्तमाविरोधेऽपि विरुद्धयोरिव यदभिधानं स विरोधः
जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्विरुद्धा स्याद् गुणस्त्रिभिः[2]

विवेचन:—

चिंतामणि ने मम्मट के लक्षण का शुद्ध भावानुवाद किया है और मम्मट का नामोल्लेख करके प्रमाणिकता की मुहर भी लगाई है । मम्मट की भाँति दस भेदों के उदाहरण भी दिए गए हैं ।

विशेष:—

चिन्तामणि :—

बिना प्रसिद्ध आधार जो करौ आधेय बखानि ।
एकहि को एकबार जो कित अनेक थल जानि ॥[3]

मम्मट :—

बिना प्रसिद्धमाधारमाधेयस्य व्यवस्थितिः ।
एकात्मा युगपद् वृत्तिरेकस्यानेकगोचरा ॥

1: क०क०त० 3/137, 3/138, 3/139

2: का०प्र० 10/110 तथा उसकी वृत्ति सूत्र 165,166

3: क०क०त० 3/140

अन्यत् प्रकुर्वतः कार्यमशक्यस्यान्यवस्तुनः ।

तथैव करणं चेति विशेषस्त्रिविधः स्मृतः ।।[1]

(प्रसिद्धाधारपरिहारेण यत् आधेयस्य विशिष्टा स्थितिरभिधीयते स प्रथमो विशेषः)

एकमपि वस्तु यत् एकेनैव स्वभावेन युगपदनेकत्र वर्तते स द्वितीयः

यदपि किञ्चिद्रभसेन आरभमाणस्तेनैव यत्नेनाशक्यमपि कार्यान्तरमारभते सोऽपरो विशेषः[2]

अधिकः—

चिंतामणिः—

जो आधार आधेय की अनुरूपता न होइ ।

दोऊ को आधिक्य क्रम, अधिक अलंकृत सोइ ।।[3]

विद्यानाथ :—

आधाराधेययोरानुरूप्याभावोऽधिकमतः[4]

विवेचनः—

चिंतामणि ने विद्यानाथ के लक्षण का शब्दानुवाद प्रस्तुत किया है किन्तु छन्दों के अनुरोध से इन्होंने शब्दों में जो हेर फेर किया है उसे अनुवाद की सरलता को ठेस पहुँची है ।

विभावनाः—

चिंतामणिः—

कारज उतपति की जहाँ कारन को प्रतिषेध ।

सो सब कहत विभावना पंडित सुकवि सुमेध ।।[5]

1: का० प्र० 10/135, 10/136 तथा पृष्ठ 202

2: का०प्र० 10/135, 10/136 की वृत्ति, पृष्ठ 202

3: क० क० त० 3/155

4: प्र० रु० पृ० विद्यानाथ- 304

5: क०क०त० - 3/159

मम्मट:—

क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना ।।[1]

विवेचन:—

आचार्य मम्मट के लक्षण क्रिया के (कारण) प्रतिषेध के होने पर भी फलोत्पत्ति (कार्योत्पत्ति) को विभावना माना है । इसी आधार पर चिंतामणि ने भी सरल और स्पष्ट लक्षण निरूपित किया है । यह एक ऐसा अलंकार है जहाँ अनुवाद के विपरीत हो जाने पर भी विभावना के स्वरूप में बाधा नहीं पड़ती ।

विशेषोक्ति :—

चिंतामणि:—

जो अखंड कारन मिले कारज कछू न होइ ।
ताको विशेषोक्ति कहत पंडित सब कवि कोइ ।।[2]

मम्मट:—

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः ।
मिलितेष्वपि कारणेषु कार्याकथनं विशेषोक्ति ।।
अनुक्तनिमित्ता उक्तनिमित्ता अचिन्त्यनिमित्ता च ।[3]

विवेचन:—

चिंतामणि ने मम्मट कृत लक्षण का तथा वृत्ति का सम्मिलित रूप से अनुवाद करके अपना लक्षण प्रस्तुत किया है किन्तु मम्मट वर्णित तीन भेदों का उल्लेख भी नहीं किया है । लक्षण सुबोध तथा स्पष्ट है ।

असंगति:—

चिंतामणि:—

हेतु और थल में कहूँ काज और थल होइ ।
अलंकार ताको कहत हौंति असंगति सोइ ।।[4]

1· का०प्र०- 10/107 तथा सूत्र 161

2· क०कु०त०- 3/161

3· का०प्र० - 10/108 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति सूत्र 162

4· क०कु०त० - 3/163

विश्वनाथ :-

कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसंगतिः ।[1]

विवेचन:-

चिन्तामणि ने असंगति का सामान्य लक्षण दिया है और साहित्यदर्पण से प्रभावित हैं । आचार्य मम्मट ने कार्यकारणभूत दो धर्मों की 'भिन्नदेशता' और 'युग पद प्रतीति' को असंगति का क्षेत्र माना है । ऐसी दशा में डा० ओम प्रकाश का यह कथन है कि "आचार्य चिंतामणि तथा कुलपति के लक्षण क्रमशः छायाग्रहीत तथा स्वतंत्र मतावलम्बी हैं"[2] उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि मम्मट की छाया ढूढ़ने के बदले विश्वनाथ का प्रत्यक्ष अनुवाद क्यों न मान लिया जाय ।

विचित्र :-

चिन्तामणि :-

कहौ विचित्र सुविरुद्धफल चाहन कौ उद्दोत ।
अलंकार सु नवीन यह बरनत पंडित लोग ।।[3]

विश्वनाथ :-

विचित्रो तद्विरुद्धस्य कृतिरिष्टफलाय चेत् ।[4]

विवेचन:-

मम्मट ने विचित्र अलंकार[6] का लक्षण नहीं दिया है किन्तु उनके बाद के आचार्यों ने जैसे रुय्यक[5] अप्पय दीक्षित[5] तथा विश्वनाथ आदि ने इसका लक्षण दिया है और प्रायः सब के लक्षण एक से जैसे हैं किन्तु चिंतामणि का लक्षण विश्वनाथ की शब्दावलि के अत्यन्त निकट है । डा० ओम प्रकाश ने लिखा है कि "रीतिकाल के चिंतामणि, कुलपति, रसलीन, भवीरदास तथा भिखारी कवि ने इसका लक्षण नहीं दिया । इसका कारण उनका मम्मट कृत लक्षणों का अनुयायी होना है-"[7] एक अत्यन्त भ्रामक

1: सा०द० 10/69
2: रीतिकालीन अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन - डा० ओम प्रकाश पृष्ठ 379
3: क०कु०त० 3/165
4: सा०द० 10/71
5: अलंकार सर्वस्व-रुय्यक पृष्ठ 164
6: अप्पय्य दीक्षित-कुवलयानन्द पृ0 164
7: रीतिकालीन अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन - डा० ओम प्रकाश पृ0 385

सूचना है क्योंकि चिन्तामणि ने विचित्र अलंकार का लक्षण नहीं दिया अपितु 'अलंकार सु नवीन' यह कहकर स्पष्ट कर दिया है कि वह अलंकार मम्मट के परवर्ती आचार्यों में प्राप्य है पता नहीं डा० ओम प्रकाश ने इसे क्यों नहीं देखा ? एक बात और उल्लेखनीय है कि चिन्तामणि ने मम्मट के अतिरिक्त अन्य आचार्यों से भी यथा अवसर लाभ उठाया है फिर उन्हें मम्मट के लक्षण का अनुयायी बतलाना सत्य का अपलाप है ।

<u>अन्योन्यः</u>—

जहाँ मिलत द्वै बात कछु, करत परस्पर काज ।
अलंकार अन्योन्य यह, बरनत सब कवि राज ।।[1]

<u>मम्मटः</u>—

क्रियया तु परस्परम् ।
वस्तुनोर्जननेऽन्योन्यम् ।[2]

<u>विवेचनः</u>—

चिंतामणि ने मम्मट के लक्षण का भावानुवाद किया है इसीलिए एक 'क्रिया' तथा 'जनन' का उल्लेख नहीं है । वृत्ति अंश की भी उपेक्षा कर दी गई है तथापि लक्षण स्पष्ट एवं शुद्ध है ।

<u>विषमः</u>—

<u>चिन्तामणिः</u>—

जो संजोग द्वै भाँति को कथा योग नहिं होइ ।
विषम अलंकृत कहत यह, कवि पंडित सब कोइ ।।[3]
कर्ता को न क्रिया फल, पुनि अनर्थ कछु होइ ।
जो कारण कछु क्रिया तें कीजे और विधि सोइ ।।
यों विरूपता दोउ के, विषम कहत कवि नाह ।
अलंकार कवता न के देखौ मुखन माँह ।।[4]

1: क०कु०त० 3/167

2: का०प्र० 10/120 का उत्तरार्द्ध तथा 121 का पूर्वार्द्ध

3: क०कु०त० 3/169, 3/170, 3/171

4: का०प्र०10/126, 10/127 तथा वृत्ति 193

विवेचनः—

चिन्तामणि ने दीपक अलंकार के दो लक्षण दिये हैं । इनमें से पहला मम्मट कृत लक्षण का शब्दशः अनुवाद किया है और विश्वनाथ के लक्षण का भी पूर्ण सरल एवं स्पष्ट अनुवाद किया है ।

मालादीपकः—

चिन्तामणिः—

पूरब पूरब करै जो उत्तर को उपकार ।
मालादीपक होत यह समझो बुद्धि उदार ।।[1]

मम्मटः—

मालादीपकमाद्यं चेद्यथोत्तरगुणावहम् । पूर्वेण पूर्वेण वस्तुना उत्तरमुत्तरं
चेदुपक्रियते तन्मालादीपकं ।[2]

विवेचनः—

चिन्तामणि ने मम्मट कृत लक्षण के कारिका की वृत्ति का शब्दानुवाद किया है । अनुवाद सरल एवं स्पष्ट है कोई मौलिक उद्भावना नहीं है ।

प्रतिवस्तूपमाः—

चिन्तामणि :—

कहुँ वर्ण्य स्लोक जो शब्द भेद सो होय ।
कीजत एक हु बात मैं, प्रतिवस्तूपम सोय ।।[3]

मम्मटः—

प्रतिवस्तूपमा तु सा ।
सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः ।[4]

विवेचनः—

चिन्तामणि ने मम्मट कृत लक्षण का भावानुवाद किया है । भावानुवाद सरल एवं स्पष्ट है । उल्लेखनीय है कि चिन्तामणि ने मम्मट के ही समान मालारूप प्रतिवस्तूपमा

1: क०क०त० 3/186
2: का०प्र०-10/104 का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति पृष्ठ 156
3: क०क०त० 3/189
4: का०प्र० 10/101 का उत्तरार्द्ध तथा 10/102 का पूर्वार्द्ध पृष्ठ 153

के लिए भी दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं किन्तु लक्षण का उल्लेख नहीं है । मम्मट ने भी माला प्रतिवस्तूपमा की चर्चा नहीं की है ।

दृष्टान्त :—

चिन्तामणि :—

> जहँ बिम्ब प्रति बिम्ब को भाव वचन में होइ ।
> कहत सुकवि दृष्टान्त है, सुनहु ताहि सब कोइ ।।
> जहाँ लसित है वस्तु को शब्द भेद अभिधान ।
> सो बिम्ब प्रति बिम्बमय, भाव कहत बखान ।।
> अलंकार दृष्टान्त में, प्रगट धर्म को होइ ।
> विशेषणहु को होइ पुनि-पुनि विशेष्य में होइ ।।[1]

मम्मट :—

> दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्[2]

विवेचन :—

मम्मट के लक्षण को स्पष्ट करने के लिए प्रतिवस्तूपमा के लक्षण से 'वाक्ययो-र्द्वयोः' की अनुवृत्ति करनी पड़ती है और इस प्रकार 'वाक्यद्वय' अर्थात् उपमान वाक्य और उपमेय वाक्य दोनों में 'एतेषाम्' अर्थात् उपमान, उपमेय वाक्य दोनों में और साधारण धर्म इन तीनों का 'प्रतिबिम्बनम्' अर्थात् बिम्ब प्रति बिम्ब भाव होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है । चिन्तामणि ने इसी परिष्कृत लक्षण के आधार पर दृष्टान्त का लक्षण प्रस्तुत किया है । वस्तु प्रति वस्तु भाव में प्रतिवस्तूपमा और प्रतिबिम्ब भाव में दृष्टान्त अलंकार होता है ।

जहाँ एक ही या अभिन्न साधारण धर्म का पुनरुक्ति से बचने के लिए भिन्न शब्दों में कथन होता है वहाँ बिम्ब प्रति बिम्ब भाव होता है वहाँ भिन्न दो धर्मों के सादृश्य के कारण औपम्य प्रतीयमान रूप में उपमान वाक्य तथा उपमेय वाक्य में पृथक

1: कविकुलकल्पतरु 3/193, 3/194, 3/195

2: काव्यप्रकाश 10/102 का उत्तरार्द्ध पृष्ठ 154

कारज के प्रस्ताव में कारन को अभिधान ।
कारन के प्रस्ताव मैं कारज कथन सुजान ।।
अप्रस्तुति सामान्य सो तहँ विशेष कहि जाय ।
कहूँ विशेष प्रस्तुति कहँ सामान्यो सुकहाय ।।
कहूँ वस्तु प्रस्ताव मैं होय वस्तु अभिधान ।
अप्रस्तुति अलंकार के पंच भेद यौं जान ।।[1]

<u>मम्मट</u>:—

अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया ।।
(अप्राकरणिकस्याभिधानेन प्राकरणिकस्याक्षेपोऽप्रस्तुत प्रशंसा)
कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति ।
तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पंचधा ।[2]

<u>विवेचन</u>:—

चिन्तामणि का लक्षण एवं भेद निरूपण मम्मट से प्रभावित है तथापि इस अलंकार में मम्मट की अपेक्षा कुछ विशिष्ट समालोचना की गई है । मम्मट ने भी पाँच भेद माने हैं वे इस प्रकार हैं:—

1: अप्रस्तुत कार्य से प्रस्तुत कार्य का द्योतन
2: अप्रस्तुत कारण से प्रस्तुत कार्य का द्योतन
3: अप्रस्तुत सामान्य वस्तु से प्रस्तुत सामान्य वस्तु का बोधन
4: अप्रस्तुत सामान्य का प्रस्तुत विशेष से अभिव्यंजन
5: अप्रस्तुत विशेष से प्रस्तुत सामान्य का सूचन

किन्तु चिन्तामणि ने सामान्य के प्रस्ताव में सामान्य कथन रूप मम्मट के तीसरे भेद को पाँचवाँ भेद कहा है । जहाँ तुल्य अभिधान अर्थ सामान्य का सामान्य कथन अथवा विशेष का विशेष कथन होता है वहाँ विशेष के तीन प्रकार बताए हैं —

1: क०क०त० 3/221 — 224 तक
2: काव्य प्र० 10/98 का उत्तरार्द्ध और उसकी वृत्ति तथा 10/99 पृष्ठ 150,151

६। रोग प्रकरण

दोष-प्रकरण

संस्कृत काव्य-शास्त्र का इतिहास साक्षी है कि गुण सिद्धान्त की भाँति दोष का विचार विवेचन भी दो वर्गों में विभक्त है । प्रथम वर्ग के विद्वान वे हैं जो 'शब्द एवं अर्थ के साहित्य को काव्य' स्वीकार करते हैं । अतः उनकी दृष्टि में दोष शब्द और अर्थ के अपकर्षक तत्त्व हैं ।

दूसरा वर्ग रसध्वनिवादियों का है जो दोषों को मुख्य रूप से काव्यात्मा - रस- का अपकर्षक मानते हैं । गौण रूप से वे दोष, शब्द और अर्थ के भी अपकर्षक हुआ करते हैं ।

स्पष्टता के लिए हम एक व्यक्ति के जीवन का दृष्टान्त मान लेते हैं,— जैसे व्यक्ति के शारीरिक दोष (काणत्व खंजत्व आदि) उसके शारीरिक बाह्य सौन्दर्य का अपकर्ष कर देते हैं वैसे ही काव्य के शब्दार्थाश्रित दोष उसको विकलांग बनाकर उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देते हैं, और जिस प्रकार लोकनिन्दित अनुचित आचरण व्यक्ति के चारित्रिक दोष बन कर उसकी आत्मा को निर्बल बना देते हैं, उसी प्रकार रस के दोष काव्य की प्रभविष्णुता और शक्ति का ह्रास कर देते हैं । अतः दोष के स्वरूप, विभाग एवं भेद आदि के संबन्ध में मतभेद रखते हुए भी आचार्यगण दोषों के निराकरण के संबन्ध में एक मत हैं ।

काव्य की निर्दोषता किस सीमा तक हो इस संबन्ध में भी चिन्तन दो प्रकार के हैं — पहला वर्ग दोष को नितान्त हेय समझता है, जिसमें भामह[1] दण्डी[2]

1: सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत् ।
विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निन्द्यते ॥
नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।
कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ॥ काव्यालंकार 1/11,12

2: तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथंचन ।
स्याद् वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् ॥ काव्यादर्श 1/7

जहाँ तक चिंतामणि का प्रश्न है वे अपनी काव्य परिभाषा के लिए मुख्यतः विश्वनाथ के ऋणी हैं,[1] और उन्हीं से प्रभावित होकर गुण और अलंकार के सद्भाव को प्राथमिकता देते हैं और दोषों के अभाव को बाद में प्रस्तुत करते हैं ।

दोषों की परिभाषा :-

मम्मट के अनुसार जिससे मुख्य अर्थ का अपकर्ष होता है वह दोष है, और रस मुख्य है । अतः उसका (रस का) आश्रय होने से वाच्य अर्थ भी मुख्य अर्थ कहलाता है । शब्दादि इन दोनों के उपकारक होते हैं । अतः शब्द, वर्ण, रचना आदि में भी दोष रहता है ।[2] मम्मट के उक्त लक्षण का विश्लेषण करने पर रस दोष, अर्थ दोष और शब्दादि दोष, अतः, दोष के तीन भेद प्राप्त होते हैं । इन्हीं को आधार बनाकर चिन्तामणि का कथन है कि —

शब्द अर्थ रस को जु इत, रोकि करै अपकर्ष ।
दोष कहत हैं ताहि को सुने घटतु है हर्ष ।।[3]

यहाँ दो बातें विचारणीय हैं — पहली बात है 'सुने घटतु है हर्ष' की । यह अंश काव्य प्रभाव से संबद्ध है । क्योंकि काव्य के लक्षण में इन्होंने 'आनन्द'[4] को महत्त्व दिया है, और दोष उस हर्ष (आनन्द) का नाश करता है । अतः दोष युक्त काव्य अवर्णनीय है । दूसरी बात यह ध्यान देने योग्य है कि मम्मट ने दोष को मुख्य रूप से रस से संबद्ध किया है तदनन्तर लक्षणा शक्ति से, वाच्यार्थ से और फिर वाचक शब्दों से । किन्तु चिन्तामणि ने क्रमविपर्यय करके शब्द और रस की चर्चा

1: गुणालंकार सहितौ शब्दार्थौ दोष वर्जितौ ।
प्र० च० शु० - पृष्ठ 42

2: मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः ।
काव्य प्र० - 7/49 पूर्वार्ध

3: शब्द अर्थ रस को जु इत रोकि करै अपकर्ष ।
दोष कहत हैं ताहि को सुने घटतु है हर्ष ।। क० कु० त० 4/1

4: छन्द विचार सुखद कवि मधुर शील जिन छन्द ।
भाषा छन्द विचार सुनि सुनिय होत आनन्द ।। क०क०त० - 1/5

इस प्रकार चिन्तामणि परिगणित वाक्य दोषों के नाम इस प्रकार हैं :—

1- प्रतिकूलाक्षर, 2- हतवृत्त, 3- न्यूनपद, 4- अधिकपद, 5- कथितपद, 6- पतत्प्रकर्ष, 7- समाप्तपुनरात्त, 8- चरणान्तरपद (अर्धान्तरैक वाचक?), 9- अभवन्मत योग, 10- अकथित वाच्य (अनभिहित वाच्य), 11- अस्थानस्थपद, 12- संकीर्ण, 13- गर्भित, 14- प्रसिद्ध हत, 15- भग्नक्रम, 16- अक्रम, 17- अमतपरार्थ ।

इनमें से विवेच्य क्रम में चरणान्तर पद का केवल लक्षण दिया गया है । अक्रम दोष का लक्षण और उदाहरण दोनों छूट गए हैं । शेष सभी दोषों के लक्षण-उदाहरण प्राप्त हैं ।

<u>3: अर्थ दोष :—</u>

मम्मट के 23 अर्थ दोषों में से परिगणन के समय केवल उन्नीस प्रकार दोषों की चर्चा 'कवि कुल कल्प तरु' में प्राप्त होती है । इस सन्दर्भ में निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेख्य हैं —

अर्थ अपुष्ट जु कष्ट पुनि, व्याहत अरु पुनरुक्त ।
अग्राम्यो संदेहित पुनि, जो न हेत संजुक्त ।।
और प्रसिद्ध विरुद्ध पुनि, अनवीकृत मन कथ ।
नेम अनेम विशेष पुनि, बिन विशेष साकथ ।।
साकांक्षी पद युक्त पुनि, सहचर भिन्न विचारि ।
कीजै प्रकट विरुद्ध पुनि, विध्ययुक्त निरधारि ।।
त्यक्त पुनः स्वीकृत कह्यो पुनि अश्लील बखानि ।
अर्थ दोष या भाँति के अपने मन में आनि ।।[1]

लक्षणोदाहरण के क्रम में 'विध्ययुक्त' और 'अनुवादायुक्त' का उल्लेख भी मिलता है —

1: क० कु० त० - 4/69-72 पद

५ः संधि प्रकरण

उत्तम मध्यम अधम ह्वै त्रिविध कवित पहिचानि ।
तिनके लच्छन उदाहरन, देत लेहु मन आनि ।।
वाच्य अरथ ते कहत मानि, व्यंग्य अधिक जहँ होइ ।
सो जन उत्तम कवित यह, जानत है कवि कोइ ।।
उत्तम व्यंग्य प्रधान गन, अप्रधान गन व्यंग्य ।
सो मध्यमपुनि अधमगनि, त्रिविध चित्र अव्यंग ।।[1]

यहाँ चिन्तामणि ने 'अतिशायी' और 'अनतिशायी' जैसे शब्दों का प्रयोग न करके मम्मट सम्मत [illegible] प्रधान, अप्रधान शब्द का प्रयोग किया है । 'अवर' के स्थान पर मध्यम को महत्त्व दिया है, और अव्यंग्य के स्थान पर अस्फुट व्यंग्य का उल्लेख नहीं किया है । उत्तम व्यंग्य को तो ध्वनि नाम नहीं दिया गया है किन्तु मम्मट के 'बुधैर्ध्वनिः'[2] तथा आनन्दवर्धन के 'सहृदयश्लाघ्यः'[3] को 'जानत है कवि कोइ' में समेटने का सुन्दर प्रयास किया गया है ।

इन्होंने व्यंग्य की परिभाषा दो स्थानों पर दी है । पहले का उल्लेख शब्द-शक्ति विवेचन में किया जा चुका है ।[4] पुनः इन्होंने लिखा है —

वाच्य लच्छनातें भिन्न जे, कवित फुरै जे अर्थ ।
व्यंग्य ते सब व्यंग्य कहि, बरनत सुकवि समर्थ ।।[5]

तात्पर्य यह कि जहाँ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न अर्थ भासित होता है उसे व्यंग्य अर्थ कहते हैं जिसका वर्णन समर्थ कवि ही करते हैं ।

इस प्रकार व्यंग्य की परिभाषा के उपरान्त उत्तम काव्य के दो उदाहरणों का उल्लेख करके इन्होंने ध्वनि के भेदोपभेद की चर्चा की है । स्पष्ट रूप से ध्वनि का लक्षण नहीं दिया है अतः ऐसा प्रतीत होता है कि व्यंग्य और ध्वनि को इन्होंने

1: क०क०त० 5/2/1,2,3

2: का०प्र० 1/4 सूत्र 2

3: ध्वन्यालोक 1/2 पृष्ठ ११

4: क०क०त० 5/1/7

5: वही 5/2/4

आदि मे रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशान्ति, भाव सन्धि, भावशबलता आदि इन आठ का ग्रहण किया है ।

असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि, आनि रसादिक चिह्न ।
इनी आदि सब लखवे, तिन्हैं गनावत भिन्न ।।
प्रथमहि रस पुनि भाव गनि, तिनके पुनि आभास ।
भाव शान्ति अरु भाव को, उदै बखानि प्रकास ।।
भाव सन्धि पुनि शबलता, भाव न की मन आनि ।
असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि तिनके भेद बखानि ।।[1]

रस को असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य क्यों कहते हैं ? इसकी व्याख्या करते हुए चिन्तामणि लिखते हैं कि –

मिलि विभाव अनुभाव अरु, संचारीन मिलाइ ।
थिर थाई है भाव जो, सो रस रूप गनाइ ।।
कछुक यथाक्रम अधिक यह, तीनहु को क्रम जोइ ।
व्यंजन को न लखौ परै, सो अलक्ष्य क्रम होइ ।।[2]

तात्पर्य यह है कि रत्यादि स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से अभिव्यक्त होते हैं तो उनकी रस संज्ञा होती है । विभावादि कारण हैं और रस कार्य, क्योंकि कारण पूर्ववर्ती होता है और कार्य परवर्ती । ऐसी दशा में कारण और कार्य के बीच एक क्रम होता है किन्तु यह क्रम शीघ्रता के कारण लक्षित नहीं होता । इस संदर्भ में चिन्तामणि ने काव्य प्रकाश एवं उसकी टीकाओं से प्रेरणा ली है ।[3] असंलक्ष्य क्रम में 'अस्' का प्रयोग क्रम के नितान्त अभाव का बोधक नहीं है, अपितु शीघ्रता के कारण उसका लक्षित न होना मात्र समझना चाहिए ।

1: क०क०त० – 5/2/47

2: क०क०त० – 5/2/48, 49

3: का०प्र० – 4/41 की वृत्ति

6: शब्द शक्ति प्रकरण

संयोगादि के उदाहरणों के उल्लेख के उपरान्त मम्मट ने टिप्पणी दी है कि "एवं संयोगादिभिरर्थान्तराभिधायकत्वे निवारितेऽप्यनेकार्थस्य शब्दस्य यत् क्वचिदर्थान्तर-प्रतिपादनम् तत्र नाभिधा नियमनात् तस्याः । न च लक्षणा मुख्यार्थबाधाद्यभावात् । अपितु अञ्जनं व्यञ्जनमेव व्यापारः ।"[1]

इसी बात को चिन्तामणि ने इस प्रकार स्पष्ट किया है —

व्यंजन व्यंजनयुत पद जिन कुलको अर्थ ।
वाचक वाचक लाक्षणिक की कीन्ह समर्थ ।।[2]

इसका उदाहरण इस प्रकार है —
लाखों हैं सखियाँ सबै, अब हों भई अचेत ।
मैं मनु दीन्हीं आपनों पै उत पाउ न देत ।।[3]

किसी नायक के प्रति नायिका की उक्ति है, नायिका को बड़ा ही दुःख है । वह चिन्ता के कारण बेहोश हुई जा रही है । उसने सखियों की गवाही में उस प्रिय को अपना मन अर्पित कर दिया है । पर वह निर्दय प्रिय अपना पाँव तक नहीं देता, आने का कष्ट भी नहीं करता अथवा सर्वथा आत्म समर्पण कर देने वाली उस बेचारी को चरण स्पर्श का भी अवसर नहीं देता । किन्तु यहाँ अपने प्राकृतिक अर्थ के अतिरिक्त 'मन' और 'पाउ' में जो परिमाणबोधक भाव निहित है वह भी कम मजेदार नहीं है । जो प्रियतम सखियों की गवाही में 'मन' लेनेवाला 'पाव' भी वापस न करे, उसके ठग होने में क्या सन्देह है, और इस प्रकार लुट जाने वाली बेहोश न हो तो क्या हो ? यह अर्थ अनेकार्थक-पद-आश्रित भी बड़ी कम रमणीय नहीं है । घनानन्द तो 'छटाँक' भी नहीं देता —

" तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं "[4]

विप्रलब्धा नायिका की यह वेदना कम मार्मिक नहीं है ।

1: का०प्र० - 2/19 तथा सूत्र 32 पृष्ठ 80

2: क०कु०क०त० - 5/1/19

3: वही 5/1/23

4: घनानन्द कवित्त

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है शब्द-शक्ति विवेचन में चिन्तामणि ने मुख्यतः मम्मट का और कहीं-कहीं साहित्यदर्पण का आश्रय लिया है किन्तु यह कह देना अनुचित न होगा कि इन्होंने कुछ बातों को छोड़ दिया है और कुछ को स्पष्ट करने में सफल नहीं हुए हैं । अभिधा का उल्लेख नहीं किया है । लक्षणा के भेदोपभेद की चर्चा भी नहीं की है । अभिधामूला व्यंजना और लक्षणा मूला व्यंजना का स्वरूप भी स्पष्ट नहीं है । कुल मिलाकर इस प्रकरण में किसी मौलिकता के दर्शन नहीं होते उदाहरणों में 'भई अनूपम, चोप नभु' पर 'मुखं विकसितस्मितं'[1] तथा 'भूमिजा में पायी कूप' इत्यादि में 'अति पृथुलं जल कुम्भम्'[2] इत्यादि की छाया देखी जा सकती है ।

1: का०प्र० - उदाहरण संख्या 69

2: का०प्र० - उदाहरण संख्या 13 पृष्ठ 83

x x x

7: नायक नायिका भेद प्रकरण

नायक-नायिका भेद प्रकरण

नायक-नायिका भेद[1]

<u>नायक भेदः</u>—

नायक-नायिका भेद की चर्चा शृंगार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत की गई है । स्त्री और पुरुष के पारस्परिक रति संबन्धी विभिन्न परिस्थितियों, स्वभावों, प्रवृत्तियों एवं रुचियों को ध्यान में रखते हुए नायक-नायिका भेद का विस्तृत उल्लेख किया गया है ।

इस संबन्ध में यह भी उल्लेख है कि स्त्री पुरुष का रति-व्यापार मूलतः कामशास्त्र का विषय है और रतिभाव में आकर्षण एवं आलम्बनत्व आवश्यक रहता है अतः नायिका के लिए नायक आलम्बन है और नायक के लिए नायिका ।

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के चौबीसवें एवं पच्चीसवें और छब्बीसवें अध्यायों में नायक-नायिका भेद का उल्लेख नाटकीय पात्रता की दृष्टि से किया है । उनका विवेचन शृंगार रस तक ही सीमित नहीं है ।

दशरूपक में नाटकीय पात्रता के साथ साथ शास्त्रीय विवेचन का महत्त्वपूर्ण योगदान है किन्तु उसके बाद संस्कृत ग्रन्थों के युग में ही केवल शृंगार रस के आधार पर नायक नायिका भेद वर्णित हुआ है । यही परम्परा हिन्दी में भी प्राप्त हुई है, फलस्वरूप चिंतामणि ने अपने ग्रन्थों में शृंगार रस के आलम्बन के रूप में ही उक्त प्रसंग की चर्चा की है ।

चिंतामणि का नायक-नायिका विषयक प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ रसविलास है जो मूलतः धनंजय के दशरूपक पर आश्रित है । रसविलास के दूसरे तथा तीसरे

---

१. चिन्तामणि ने रस विवेचन के क्रम में आलम्बन और आश्रय की दृष्टि से नायक-नायिका-भेद का उल्लेख किया है हमने सुविधा की दृष्टि से इस अध्याय को पृथक कर दिया है वैसे चिंतामणि की व्यवस्था अधिक उचित है ।

केलि कला में चतुर अति प्रीतम सों अति प्रीति
लाजन ले है मदन बस प्रौढ़ा की यह रीति[1]

डा0 सत्यदेव चौधरी ने "लाजन ले है मदन बस" ऐसा पाठ मानकर 'मदन के वशीभूत होकर लज्जा तजना'[2] ऐसा अर्थ स्वीकार कर लिया है किन्तु साहित्य-दर्पण आदि आकर ग्रन्थों के अनुरोध से इस अर्थ को केवल भ्रान्ति ही मानना चाहिए । लक्षण का पूर्वार्द्ध भानु मिश्र की रस मंजरी[3] से प्रभावित है और उत्तरार्द्ध विश्वनाथ के दरव्रीड़ा नामक भेद[4] की छाया से युक्त प्रतीत होता है ।

प्रौढ़ा के भी चिन्तामणि ने 4 भेद माने हैं — 1: यौवन प्रमत्ता 2: मदनमत्ता 3: रति प्रीतिमती 4: रत्यानन्दपरवशा अथवा सुरति मोद परवशा । इन चारों के केवल उदाहरण दिए गए हैं लक्षण नहीं । इनमें से यौवनप्रमत्ता दश रूपक[5] की गाढ़ और साहित्य-दर्पण[6] की गाढ़ तारुण्या ही है । मदनमत्ता विश्वनाथ की स्मरान्धा का अनुवाद है[7]। शेष दो भेदों के लिए भानु मिश्र की रस मंजरी का प्रभाव दृष्टव्य है[8] क्योंकि भानु मिश्र की रतिप्रीति और आनन्द सम्मोह जैसी चेष्टाओं के आधार पर ही इन भेदों की कल्पना हुई होगी ।

मान की दृष्टि से स्वकीया नायिका के जो तीन भेद किये गए हैं उस संबन्ध में यह उल्लेख्य है कि स्वकीया की मूलभूत विशेषता अपने पति में पूर्ण अनुराग है । मुग्धा नायिका पहले तो पति के अन्य नायिका सम्भोग जैसे अपराध की गन्ध भी नहीं पाती यदि पा भी जाय तो उसे विश्वास नहीं होता और यदि क्षण भर के लिए विश्वास भी आ जाय तो प्रिय के नर्म वचनों और व्याजोक्तियों को सत्य मान लेती है और मान

1: क0क0त0 6/102

2: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य - डा0 सत्यदेव चौधरी पृष्ठ 418

3: रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 22

4: सा0द0 3/60

5: दश रूपक 2/18

6: सा0द0 3/60

7: वही

8: रस मंजरी - भानु मिश्र पृष्ठ 28

नहीं करती । अतः मान का क्षेत्र केवल मध्या और प्रौढ़ा नायिका में ही होता है । पति में अनुरक्त नायिका पति के अन्य नायिकानुराग को देख कर मान क्यों नहीं करेगी । अतः मान की दृष्टि से मध्या और प्रौढ़ा स्वकीया नायिकाओं के तीन भेद बतलाए गए हैं:—धीरा अधीरा और धीरा-धीरा ।

मध्या प्रौढ़ा मान में कवि मति त्रिविध बखानि ।
धीरा और अधीर लिख धीरा-धीरा मानि[1]

मध्या स्वकीया नायिका यदि अपने कोप को व्यंग्य वचन से प्रकट करती है तो वह धीरा कहलाती है और यदि स्पष्ट रूप में अपने कोप वचन को निकालती जाती है तो उसे मध्या अधीरा कहते हैं । धीरा-धीरा मध्या नायिका की सहनशीलता इतनी कम हो जाती है कि बेचारी कोप वचन के साथ रो पड़ती है ।

व्यंग्य कोप प्रगटै सुतिय मध्या धीरा होइ ।
कोप वचन कोमल प्रगट मध्य अधीरा सोइ ।।
वचन रूखिन के संग जोइ कोप प्रकासे नारि ।
मध्या धीर अधीर लिख कवि जन कहत विचारि ।।

विलासी नायक कहीं रात्री भर विहार करके प्रातःकाल अपनी प्रेयसी के पास आता है रात भर प्रतीक्षा करती हुई प्रेयसी प्रातःकाल नायक को देखकर कहती है कि रात भर कलंकी चन्द्रमा उदित रहा । तुम मेरा मन लेकर न जाने कहाँ चले गए थे । मैं किसी तरह मन्दिर के बीच बैठकर आत्म रक्षा करती रही । दीपक के प्रकाश में भी अन्धकार दिखाई पड़ता था । अब मेरे नेत्र रूपी चकोरों ने अमृत का पारण कर लिया है क्योंकि निष्कलंक चन्द्रमा जैसे प्यारे मोहन तुम अपनी अनुपम कलाओं के साथ प्रगट हुए हो

कठिनो चंद कलंक उग्यो मन मेरो लै साथ रहे तुम न्यारे
बैठि रही मन मन्दिर बीच लखी सब दीप प्रकास अंध्यारे
प्रातहिं पाइ सुधामय पारनो नैन चकोरन मोहन प्यारे
क्यों न अनूप कला प्रगटी अकलंक कला निधि मोहन प्यारे[2]

1: का०का०रा० 6/109 तथा 6/112

2: का०का०रा० 6/110

कि सभी आचार्यों ने और स्वयं चिन्तामणि ने नायिका के स्थूल भेदों में सामान्या नायिका का उल्लेख किया है ।

अवस्था के अनुसार नायिकाओं के भेदः—

अवस्था के अनुसार नायिकाओं के निम्नलिखित भेद हैं ।—

1- स्वाधीन पतिका 2- वासकसज्जा 3- विरहोत्कण्ठिता 4- विप्रलब्धा 5: खंडिता 6- कलहांतरिता 7- प्रोषितभर्तृका तथा 8- अभिसारिका ।

कहि स्वाधीनप्रिया बहुरि वासक सज्जा जानि ।
बहुरि विरह उत्कंठिता विप्रलब्ध पुनि मानि ।।
पुनि खंडिता बखानिये कलहंतरिता नाम ।
पुनि कहि प्रोषित भर्तृका अभिसारिका सुधाम ।।[1]

ये आठों भेद स्वकीया, परकीया और सामान्या इन तीनों घटित होते हैं वे जहाँ और जिस रूप में सम्भव हैं वहाँ उसी रूप में प्रकाशित होते हैं —

सो सब भेद तिहून के भेदन हू के होत ।
ये जैसे सम्भव तिते तैसे लहत उदोत ।।[2]

स्वाधीनपतिकाः—

सो स्वाधीनप्रिया कहो जाके नाह अधीन ।
सुखी सदा आनन्दमय बरनत सुकवि नवीन ।।[3]

अपने प्रियतम को अपने प्रेम से अधीन करके जो सदा प्रफुल्लित रहती है व स्वाधीन पतिका नायिका है । चिंतामणि ने इसके उदाहरणों के क्रम में स्वकीया, परकीया और सामान्या का उल्लेख न करके मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और सामान्या का उल्लेख किया है । स्वकीया में ही मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भेद किए गए हैं । यद्यपि ये परकीया और सामान्या में भी हो सकती हैं किन्तु प्रायः यहाँ शास्त्रकारों ने इसकी उपेक्षा कर दी है ।

1: क०क०त० 6/144 तथा 145

2: क०क०त० 6/146

3: वही 6/147

साहित्य-दर्पण में विरहोत्कंठिता नायक के न आने के कारण दुःखिनी होकर प्रतीक्षा में उत्कंठित रहती है। अतएव उन्होंने विरहोत्कंठिता के लिए "सवागमन दुखार्ता"[1] की शर्त रखी है। भानु मिश्र ने भी उक्त नायिका को प्रिय के अनागम के हेतु की चिंता में रत दिखाया है[2] किन्तु चिन्तामणि ने आकुलता से युक्त और आशापूर्ण प्रतीक्षा में लीन नायिका को विरहोत्कंठिता की संज्ञा दी है।

<u>विप्रलब्धाः</u>—

चिन्तामणि की विप्रलब्धा नायिका वह है जो यह जानती है कि उसका प्रिय उसे संकेत स्थान में बुलाकर किसी अन्य नायिका के पास चला गया है। विश्वनाथ ने केवल न आने की बात कही है किन्तु चिंतामणि ने "जाय आन तिय पास" के द्वारा कारण को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। लक्षण इस प्रकार है —

जाहि बोलि संकेत पिय जाय आन तिय पास
ताहि विप्रलब्धा बहु कहि कवि करहिं प्रकास

उल्लेख्य है कि मुग्धा और मध्या विप्रलब्धा के उदाहरणों में क्रमशः प्रिय के संकेत स्थल पर में लिए आने या वहाँ न पाए जाने का उल्लेख है[3] और प्रिय के स्थान न मिलने से नायिका अपने को ठगी सी अनुभव करती है। अन्य स्त्री के पास जाने के संकेत प्रौढ़ा परकीया और सामान्या के उदाहरणों में ही दृष्टिगत होते हैं।

<u>खण्डिताः</u>—

खंडिता नायिका की परिभाषा चिंतामणि ने इस प्रकार दी है :—

आन बधु रति चिन्ह धरि आवै जाको पीय।
प्रात ताहि सो खंडिता कह रसिकन को हीय।।[4]

1: रस मंजरी - भानु मिश्र पृ० 122-125
2: क०कु०क०त० 6/166
3: वही 6/167
4: क०कु०क०त० 6/172

४। रस प्रकरण

दूसरी बात यह है कि प्रच्छन्न मान समाप्त होकर संयोग की मधुरता का परिपोषक हो जाता है। इसलिए चिन्तामणि ने विश्वनाथ के आधार से प्रच्छन्न मान का विवेचन किया है।

ईर्ष्यामान:-

ईर्ष्यामान का सहज कारण है है अपने पति के विषय में परनारी संपर्क का ज्ञान। इसलिए यह केवल स्त्रियों में ही देखा जाता है :-

प्रच्छन्नमानगत कह्यौ ईर्ष्यामान जु होइ
सु तौ परतिये तियन मैं यौं बरनत सब कोइ[1]

विश्वनाथ ने पति के अन्य नारी से संपर्क को देखने, अनुमान करने तथा सुनने से ईर्ष्या की उत्पत्ति मानी है और अनुमान के भी तीन आधार बतलाए हैं — 1- स्वप्न में नायिका के संपर्क की बातें बड़बड़ाना 2- नायक में उसके संयोग चिन्हों को देखना 3- तथा नायक के मुख से अचानक अन्य नायिका का नाम निकल जाना :-

पत्युरन्यप्रियासंगे दृष्टेऽथानुमिते श्रुते ।
ईर्ष्यामानो भवेत्स्त्रीणां तत्र त्वनुमितिस्त्रिधा
उत्स्वप्नायितभोगाङ्कगोत्रस्खलनसंभवा ।[2]

किन्तु चिन्तामणि ने केवल दृष्ट कारण का ही उल्लेख किया है :-

औरतिया के रंग में रीझ करै जो नारि ।[3]

ऐसा क्यों है समझ में नहीं आता ? क्यों कि इससे विश्लेषण बड़ा स्थूल हो जाता है।

अनन्तर इन्होंने रस मंजरी के आधार पर मान के के तीन भेद किये हैं —

1: क0कु0त0 10/60
2: सा0द0 3/199 तथा 200
3: क0कु0त0 10/61

इन छः उपायों का विश्लेषण इस प्रकार है — मधुर वचन का नाम 'साम' है, सखी को फोड़ लेना 'भेद' है, आभूषण आदि को किसी बहाने से देने का नाम 'दान' है, पैरों पर गिरना 'प्रणति' है, सामआदिक उपायों के असफल हो जाने पर उपाय छोड़ कर बैठ रह जाना 'उपेक्षा' है एवं त्रास, हर्ष आदि के द्वारा कोप दूर हो जाने का नाम 'रसान्तर' है —

मधुर वचन सो साम कहि भेद सखी को बस
दान ब्याज भूषादि को प्रणति चरन को पात
सामादिक की हीनता होत उपेक्षा चित्त
त्रास हरख इन आदि है कहि रस अन्तरनित्त[1]

इन उपायों के सुन्दर उदाहरण दिए गए हैं जिनसे सन्दर्भ बिल्कुल स्पष्ट हो गए हैं। नमूने के तौर पर रसान्तर का यह उदाहरण देखिए —

मान कियो वृषभानु कुमारिन मान्यो गुवालिन और मनाई ।
और उपाय थके जिनके मन मोहन यों तब बात बनाई ।।
पीछे तिहारे कहा है लिखा ? कहि जो चितयौं मन में भरमाई ।
यों झिझकी, उमकी लपकी, हँसिके मनमोहन कंठ लगाई ।।[2]

<u>करुण:</u>—

करुण विप्रलम्भ के विवेचन का आधार साहित्य - दर्पण है। साहित्य - दर्पण में लिखा है कि —

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः।
यथा कादम्बर्यां पुण्डरीक महाश्वेता वृत्तान्ते ।[3]

इसी के अनुवाद स्वरूप चिन्तामणि का कथन है कि —

1: क०क०त० 10/69,70 तुलनीय - सा०द० 3/202,203
2: वही 10/77
3: सा०द० 3/209 तथा उसकी वृत्ति

जहाँ पुरुष तिय जुगल मे मृत्यु एक की होय
पुनि जीवन की आस में करुना रस मन सोय
जो बरनी कादम्बरी पुण्डरीक वृत्तान्त
सो करुणात्मक मानत है सब पीडित मतवन्त[1]

यहाँ विश्वनाथ ने कादम्बरी के पुण्डरीक वृत्तान्त में करुण विप्रलम्भ मानना चाहिए या करुण रस, इस सम्बन्ध में सूक्ष्म विवेचन भी किया है किन्तु चिन्तामणि ने यहाँ मौन धारण कर लिया है तथा अपनी ओर कोई अन्य उदाहरण नहीं दिया है।

प्रवासः--

प्रवास कहते हैं परदेश के वास को । यहाँ परदेश का अर्थ लाक्षणिक रूप से इतना ही लिया जाना चाहिए कि प्रिय कुछ निश्चित अवधि के लिए आश्रय से दूर है । इसलिए आश्रय की विरहाकुल स्थिति में प्रवास विप्रलम्भ होता है ।

चिन्तामणि ने यहाँ विश्वनाथ सम्मत प्रवास की चर्चा नहीं की है तथापि प्रोषित पतिका नायिकाओं की जीवनचर्या का जो उल्लेख किया है[2] उसी से प्रभावित होकर चिंतामणि ने अत्यन्त संक्षेप में यह कह दिया है कि --

तन मन होत मलिन जो ताप निवास प्रवास[3]

यह भी उल्लेखनीय है कि इन्होंने वर्तमान प्रवास की चर्चा नहीं की है । केवल भूत और भविष्यत प्रवास का ही उल्लेख किया है किन्तु ऐसा क्यों है ? यह समझ में नहीं आता क्योंकि जब प्रोषित पतिकाओं के भेद निरूपण के क्रम में प्रवत्स्यत पतिका का विवेचन किया गया है फिर प्रवास की दशा में उसका उल्लेख न करना एक स्खलन ही माना जायगा ।

अस्तु, इन्होंने भूत और भविष्यत् प्रवास का उल्लेख करके मम्मट के अनुसार प्रवास के पाँच कारणों की सोदाहरण चर्चा की है --

---

1: क०क०त० 10/78
2: सा०द० 3/204,5,6
3: क०क०त० 10/80 पूर्वार्ध
4: वही 10/80 उत्तरार्ध

होन हार अरु भयो जो हूँ विधि बरन प्रवास

ताको हेत उदाहरन सज्जन सुनो प्रकास[1]

विप्रलम्भ हेतु निरूपण—

प्रथम हेतु अभिलाष पुनि विरहा ईरषा मानि

पुनि प्रवास अरु साप पुनि विप्रलंभ के जानि[2]

'अभिलाष' कहते हैं सम्भोग से पूर्ववर्ती अनुराग को । 'विरह' कहते हैं गुरुजन आदिक की परतंत्रता के कारण मिलन के अभाव को । 'ईर्ष्या' और प्रवास' का विवेचन पहले हो चुका है । 'शाप' का लक्षण स्वतः स्पष्ट है इसलिए चिंतामणि ने केवल विरह का लक्षण दिया है जब कि मम्मट ने किसी का लक्षण नहीं दिया है, केवल उदाहरणों में ही लक्षण का संकेत दे गए हैं । चिन्तामणि का लक्षण विरह का लक्षण इस प्रकार है :—

गुरजनादि परतंत्र जँह निकटहु मिलन न होइ ।

दंपति को कुजतन कहत विरह कहावत सोइ ।।[3]

उदाहरण शाप हेतुक को छोड़कर अन्य सब के दिये गए हैं । प्रवास हेतुक का एक ललित उदाहरण अवलोकनीय है —

मोहि तोहि बालिक कहा अंतर जीवन देत

पीउ पीउ रटि रटि मेरे निठुर कहा सुधि लेत[4]

1: का०क०त० 10/81

2: वही 10/83

तुलनीय—

अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति

पञ्चविधः ।

काव्यप्र० 4/सूत्र 29 की वृत्ति

3: का०क०त० 10/85

4: वही 10/88

वागादिवैकृतैश्चेतोविकासो हासइष्यते ।[1]

<u>आलम्बनः--</u>

साहित्यदर्पण में लिखा है कि जिस विकृत आकार वाणी एवं चेष्टा को देखकर लोग हँस पड़ते हैं उसे यहाँ आलम्बन माना गया है --

विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः ।
तदत्रालम्बनम् × × × × ।।[2]

चिन्तामणि ने इस प्रकार का परिगणन न करके अपने लक्षण में हास्योत्पादक प्रत्येक कारण को आलम्बन के रूप में ग्रहण करके आलम्बन के आधार को व्यापकता प्रदान की है ।

बातें उपजत है सुनी आलम्बन पहिचानि[3]

आश्रय का उल्लेख चिंतामणि ने नहीं किया है । इसका मुख्य कारण सम्भवतः यह है कि प्रधान रूप से हास्य रस का आश्रय सहृदय अथवा सामाजिक होता है वैसे काव्य अथवा नाट्य का कोई पात्र भी आश्रय हो सकता है ।

<u>उद्दीपनः--</u>

विश्वनाथ ने हास्य रस के आलम्बन की चेष्टाओं को ही उद्दीपन के रूप में स्वीकार किया है[4]।

× × तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।[5]

इसी के अनुवाद रूप में चिंतामणि का कथन है कि --

1: सा०द० 3/215 का पूर्वार्द्ध

2: क०क०त० 9/92

3: सा०द० 3/215

4: वही 3/216

5: क·क·त 9/92

चेष्टा तातैं कहत हुं दीपन रस को होइ ।[1]

यहाँ चेष्टा शब्द का उल्लेख अस्पष्ट एवं भ्रामक है, क्योंकि विकृत वाणी और विकृत आकार ही तो चेष्टाएँ ही हैं किन्तु उनसे रस के उत्पन्न होने की बात कही गयी है फिर उन्हें ही उद्दीपन कहना उचित प्रतीत नहीं होता ।

अनुभावः—

विश्वनाथ ने अक्षिसंकोच और वदन के विकास को इसके अनुभाव के रूप में बताया है ।

अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः ।[2]

किन्तु चिन्तामणि ने अनुभाव का उल्लेख नहीं किया है । इस दृष्टि से इनका विवेचन अपूर्ण हो गया है ।

संचारी भावः—

विश्वनाथ के आधार पर अवहित्था, श्रम आदि संचारियों का उल्लेख चिंतामणि ने किया है —

अवहित्थाश्रम आदि पुनि संचारी जो होइ ।[3]

विश्वनाथ का कथन है कि "निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः ।[4]

विश्वनाथ ने निद्रा और आलस्य का भी उल्लेख किया है और उसके बाद आदि शब्द का प्रयोग किया है । चिंतामणि ने विश्वनाथ के अवहित्था और रसारूपक

1: क०कु०त० 9/95

2: सा०द० 3/216

3: रसारूपक - 4/74

4: सा० द० 3/216

के क्रम[1] का उल्लेख करके 'आदि' शब्द का प्रयोग किया है । वस्तुतः दोनों ही संचारियों के नामोल्लेख मात्र को महत्व देते हैं । अन्तिम परिगणन नहीं करते । अतः निद्रा और आलस्य को छोड़ देने के बाद भी लक्षण अपूर्ण नहीं है ।

<u>वर्ण और देवता:-</u>

विश्वनाथ के लक्षण का शब्दानुवाद करते हुए चिन्तामणि ने हास्य रस का वर्ण श्वेत और देवता प्रमथ (शिवगण) को स्वीकार किया है ।

सेत बरन यह प्रमथ पति देव तहाँ सन्मानि[2]

<u>हास्य रस के भेद:-</u>

प्रकृति की दृष्टि से इसे उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन कोटियों में विभाजित करके भाव के तारतम्य को आधार मानकर हास्य रस के छ भेद भरत मुनि ने किए हैं । उत्तम — 1:स्मित 2:हसित, मध्यम — 3:विहसित — 4:उपहसित अधम — 5:अपहसित 6:अति हसित ।

स्मितमथ हसितं विहसितमुपहसितं चापहसितमतिहसितम् ।
द्वौ द्वौ भेदौ स्यातामुत्तममध्यमाधमप्रकृतौ ।[3]

भरत ने इन छः भेदों की सम्यक व्याख्या की है और प्रत्येक की विशेषताएँ और उनके पारस्परिक अन्तर को भी स्पष्ट किया है उसी का संक्षिप्त विवेचन दशरूपक और साहित्य दर्पण में प्राप्त होता है । चिन्तामणि ने भी इन्हीं छ भेदों की चर्चा और उत्तम, मध्यम, अधम के आधार पर वर्गीकरण किया है, हाँ नाम-करण में भिन्नता है । पाँच नाम तो वे ही हैं किन्तु अपहसित के स्थान पर इन्होंने अवहसित का प्रयोग किया है । परिगणन इस प्रकार है —

1: दशरूपक - 4/74
2: क0क0त0 9/98 सुखसिध — श्वेतः प्रमथ देवता
3: नाट्यशास्त्र - 6/53 - भरत

हास स्मित अरु हसित पुनि, कहिए और विचारि ।
और बरनिये उहसित अरु अपहसित निहारि ।।
पुनि अति हसित छ विधि सु ये हैं है भिन्न गनाइ ।
उत्तम मध्यम अधम जन गत ये समुझि बनाइ ।।[1]

ध्यातव्य है कि 'छविधि' कहते हुए भी उपर्युक्त पंक्तियों में स्मित, हसित, उहसित, अपहसित और अति हसित इन पाँचों का ही उल्लेख है । सम्भवतः 'और विचारि' तथा 'और बरनिए' जैसे शब्द समूहों के स्थान पर अवहसित का उल्लेख रहा होगा जो बाद में पाठ भ्रष्ट होने के कारण समाप्त हो गया होगा । उपर्युक्त छ भेदों के लक्षण भी साहित्य-दर्पण से ही प्रभावित हैं । चिंतामणि का कथन है कि स्मित में नेत्र विकसित हो जाते हैं कि और हसित में कुछ-कुछ दाँत दिखाई पड़ते हैं । इन सब के साथ मधुर और सुन्दर स्वर हो तो विहसित होता है । उपहसित में सिर में कंप होता है । यदि आँखों में पानी आ जाय तो उसे अपहसित कहते हैं । अति हसित में हँसते-हँसते आदमी धरती पर लोट-पोट हो जाता है ।

स्मित कहि विकसित दृगन कछु-कछु लख परैं सु दंत ।
कहत हसित उत्तमन के हैं बरनत बुधवन्त ।।
मधुर स्वर विहसित सिरः कंप उपहसित जानि ।
मध्यम नर मन हास के ये हैं भेद बखानि ।।
आँसुन जुत कहि अपहसित बहुरि अति हसित जानि ।+
तन परसै पुहमी तसै ये अधमन के मानि ।।[2]

उल्लेख है कि स्मित के लक्षण में "स्वल्पितहास्यम्" की उपेक्षा कर दी गई है और अतिहसित के लक्षण में "क्षिप्ताङ्गम्" के स्थान पर 'तन परसै पुहमी तसै' का उल्लेख किया गया है । इस प्रकार यहाँ केवल अनुवाद न करके मौलिकता लाने

1: का०क०त० 9/93,94 तुलनीय सा०द० 3/217

2: वही 9/95 - 97 तक तुलनीय सा०द० 3/218,219

का प्रयास किया गया है क्योंकि 'अतिहसितम्' का अर्थ जहाँ चिंतामणि की दृष्टि में हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाना अधिक उचित है ।

हास्य रस का उदाहरण निम्नलिखित है —

आरसी देख जसोमति सूधौं करे तुतरात यों बाल कन्हैया ।
बैठेते बैठेते उठेते उठे अरु कूदेते कूदे चलेते चलैया ।।
बोलेतें बोले हसेतें हसे मुख जैसो करौं त्यों ही आपु करैया ।
दूसरो को तु दुलार कियो यह को है जु मोहि खिझावत मैया ।।[1]

यहाँ दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब ह को देखकर अपनी ही चेष्टाओं को दूसरे बालक की चेष्टा मान कर खीजते हुए कन्हैया के उपालम्भ से माता यशोदा को जो प्रसन्नता हुई होगी उसे उत्तम प्रकृति गत स्मित के रूप में वर्णित करने का प्रयास किया गया है ।

करुण रस:—

चिंतामणि की दृष्टि से इष्ट वस्तु के नाश और अनिष्ट वस्तु के आगम से जो दुःख उत्पन्न होता है उसको शोक कहते हैं । यह शोक जहाँ स्थायी के रूप में विद्यमान होता है वहाँ करुण रस होता है —

इष्ट नाश कि अनिष्ट की आगमतें जो होइ ।
दुख शोक थाई जहाँ भाव करुण कहि सोइ ।।[2]

आलम्बन:—

करुण रस का आलम्बन शोच्य अर्थात् विनष्ट वस्तु आदि शोचनीय व्यक्ति होते हैं कवि कुल कल्प तरु में पाठ है —'आलम्बनिन सोक रत'[3] जिसे सम्भवतः 'आलम्बन' गनि सोच्य रत' होना चाहिए क्योंकि साहित्य-दर्पण में 'शोच्य मालम्बनम् मतम्'[4] ही दिया हुआ है ।

1: क०क०त० 9/99

2: वही 9/100 तुलनीय सा०द० 3/222 का पूर्वार्द्ध तथा 3/223 का पूर्वार्

3: क०क०त० 9/101

उद्दीपनः—

विनष्ट प्रिय व्यक्ति के दाहादि कार्य उद्दीपन हैं — " ताको दाह क्रियादि उद्दीपन ×××।

आश्रय के विषय में कोई उल्लेख नहीं है ।

अनुभावः—

विश्वनाथ ने दैव निन्दा, भूमिपतन, क्रन्दन, वैवर्ण्य, उच्छ्वास, निःश्वास, स्तम्भ एवं प्रलाप इन आठ अनुभावों का उल्लेख किया है,[2] किन्तु चिंतामणि ने रोदन और भूपात का नामतः परिगणन करने के उपरान्त शेष को आदि शब्द में समेट लिया है ।

अनुभावनमि रोदन भू पातादि[3] यह संक्षेप जहाँ लक्षण को संश्लिष्ट बनाता है वहीं उसकी स्पष्टता में बाधा भी आती है ।

संचारी भावः—

विश्वनाथ ने विस्तार से संचारियों का परिगणन किया है उनके अनुसार निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, व्यभिचारी हैं,[4] किन्तु चिंतामणि ने सारा बोझ आदि शब्द पर डाल दिया है । उनका कथन है- कि निर्वेदादिक

निर्वेदादिक होत हैं जामें बहु विधि विचारि ।
ते सब अपनी बुद्धि बल लीजे बिबुध विचारि ।।[5]

यहाँ भी आचार्य की दृष्टि संक्षेप की ओर रही है किन्तु संचारियों की ऊहा का भार विद्वानों पर छोड़ देने के कारण लक्षण सामान्य पाठकों के लिए

1: क०क०त० 9/101 मूलभित्ति - सा०द० 3/223 का उत्तरार्द्ध

2: सा०द० 3/224

3: क०क०त० ~~3/~~9/101

4: सा०द० 3/225

5: क०क०त० 9/102

सुपीठा नहीं बन सका है ।

<u>वर्ण और देवता:-</u>

साहित्यदर्पणकार के अनुसार ही चिन्तामणि ने इसे कपोत वर्ण का रस माना है, इसके देवता यमराज हैं -

गहु कपोत रंग रसु कह्यो जमदैवत ढेह आनि[1]

किन्तु यहाँ 'कपोर' को कपोत का अपभ्रंश न मान कर 'कर्बुर' का अपभ्रंश मानना अधिक उचित होगा ।

चिन्तामणि ने करूण रस के तीन उदाहरण प्रस्तुत किए हैं । तीनों में दशरथ की मृत्यु की चर्चा है । मृत-पिता आलम्बन हैं, भरत के द्वारा पिता की मृत्यु का समाचार सुनना उद्दीपन है । इस समाचार को सुनते ही शोक स्थायी भाव उद्दीप्त हो जाता है । राम का दुखी होना, अचेत होकर भूमि पर गिरना शरीर का पीला पड़ना जैसे अनुभावों का वर्णन है । राम के दुःख को देखकर भाइयों का विकल हो जाना और राम को धैर्य बंधाना तथा उसे सुनते ही राम का संसार को सूना देखना और मुख का विवर्ण हो जाना समग्र पूर्ण रस सामग्री से संवलित करूण का परिपाक कर रहा है । दूसरे छन्द में जानकी सहित तीनों भाइयों का रोना जहाँ दुस्सह शोक को प्रगट कर रहा है । वहीं राम के द्वारा आत्म भर्त्सना से करूण रस का प्रवाह उमड़ पड़ा है, कहना न होगा कि तीनों छन्दों के इस प्रसंग में करूण रस का सुन्दर परिपाक हुआ है जिसमें विभावादि सामग्री की पूर्ण समायोजना दृष्टिगत होती है । प्रसंगतः केवल एक छन्द का उल्लेख पर्याप्त होगा -

ऐसी भाँति राम सब भाँति को प्रकार पूछ्यो भरत सुनायो सोच पिता को मरन है
विपुल अँगन ते अचेत ह्वै गिरे हैं भूमि भरत को मन देखि भयो आरत है
तेरे ही वियोग में तिहारे पिता प्रान तजे, तुमको धरा को अब दीरघ [illegible] है
यह सुनते ही राम सूनो सब जग लख्यो चाहो सबै दुखै भयो बदन बिबरन है[2]

1: क०कु०क० ९/१०३, सुलनिधि सा०द० ३/२२२

2: क०कु०क० ९/१०४

रौद्र रसः—

रौद्र रस के स्थायी भाव निरूपण में चिंतामणि ने विद्यानाथ का आश्रय लेकर लिखा है कि —

और विरचित अपराधनि चित्त प्रज्वलन क्रोध ।
सो थाई जित रौद्र सों बरनत निरमल बोध[1] ।[2]

विद्यानाथ का कथन है कि —

शत्रुकृतापकारेण मनः प्रज्वलनम् क्रोधः[2] [3]

यों तो क्रोध की उद्दीप्ति किसी के भी अपराध से हो सकती है किन्तु शत्रु के अपराध से उत्पन्न क्रोध अन्य कारणों से उत्पन्न क्रोध की अपेक्षा अधिक तीव्र और प्रबल होता है इससे आश्रय की हानि भी होती है और अपमान भी होता है । इसलिए प्रतिशोध की भावना चित्त में ज्वाला उत्पन्न करती है इसी को क्रोध कहते हैं यही क्रोध रौद्र रस का स्थायी भाव कहलाता है ।

आलम्बनः—

विश्वनाथ का अनुसरण करते हुए 'आलम्बनमरिस्तत्र'[3] का अनुवाद चिंतामणि ने इस प्रकार किया है 'आलम्बन अरिपरनिष'[4]

उद्दीपनः—

शत्रु की चेष्टा अथवा उसके आचरण को ही विश्वनाथ के अनुरूप चिंतामणि ने उद्दीपन स्वीकार किया है[5]—

× × × × × × उद्दीपन मन आनि ।
ताके ये आचार सब कुछ बल सकल बखानि ।[5]

1: क0कु0त0 9/107
2: प्र0रु0 भू0 - विद्यानाथ पृष्ठ 23।
3: क0कु0त0 9/108 तुलनीय-
4: सा0द0 3/227
5: क0कु0त0 9/108 तुलनीय- तच्चेष्टा उद्दीपनं मतम् - सा0द0 3/227

अव्याप्ति उत्पन्न कर दी है । हम जानते हैं कि दानवीर, दयावीर और धर्मवीर जैसे भेदों को जब चिन्तामणि ने स्वीकार किया है तो इनकी दृष्टि में भी 'विजेतव्य' के अतिरिक्त आलम्बन रहे होंगे । अतः लक्षण अपूर्ण ही कहा जायगा । दान, दया और धर्म की रक्षा में आश्रय के लोकोत्तर कर्म की अनेक कथायें प्राप्त होती हैं अतः चिन्तामणि अपने लक्षण में विषय को स्पष्ट नहीं कर सके हैं ।

आश्रयः—

चिन्तामणि ने आश्रय का उल्लेख नहीं किया है किन्तु आगे चलकर साहित्य-दर्पण के आधार पर इसे उत्तम नायक विषयक माना है अतः उत्तम पात्र आश्रय है[1]

उद्दीपनः—

विश्वनाथ से ही प्रेरणा लेकर चिंतामणि ने वीर रस की उद्दीपक सामग्री के विषय में कहा है कि — आलम्बन का इंगित ही उद्दीपन होता है —

× × × ताको इंगित जोइ ।
उद्दीपन × × × × × ॥[2]

यहाँ इंगित का अर्थ चेष्टा है । साहित्य-दर्पण में चेष्टा शब्द का ही प्रयोग किया गया है । स्पष्ट है कि 'विजेतव्य आदि' की 'चेष्टा आदि' से वीर रस की उद्दीप्ति होती है । यहाँ भी 'आदि' शब्द का प्रयोग न करके चिन्तामणि ने अपने लक्षण को संकुचित बना दिया है अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो लक्षण को केवल युद्ध वीर तक सीमित कर लिया है ।

1: उत्तम नायक विषय जहँ होइ सुथिर मन आनि ।
क०कु०त० 9/116
तुलनीय - उत्तम प्रकृतिर्वीरः सा०द० 3/232

2: क०कु०त० 9/114 तुलनीय - सा०द० 3/233

अनुभाव:—

'नायक कौ आचरन जो सो मानिए अनुभाव'[1]

उपर्युक्त लक्षण भी विश्वनाथ से ही प्रभावित है । किन्तु चिन्तामणि ने विश्वनाथ के 'सत्वाध्यवसायादि' की व्याख्या कर दी है क्योंकि प्रसंगानुकूल नायक के आचरण में सभी अनुभाव समाहित हो जाते हैं अतः नायक की समस्त चेष्टाएँ जो वीर रस के आवेग को प्रभावित करें, अनुभाव कहलायेंगी ।

संचारी:—

चिन्तामणि ने वीर रस की पुष्टि करने वाले संचारियों में केवल धृति का उल्लेख करके 'आदि' शब्द से काम चला लिया है —

× × × धृत्यादिक पुनि संचारी गन होइ[2]

यहाँ 'आदि' शब्द के अन्तर्गत साहित्यदर्पणोक्त धृति, मति, गर्व, स्मृति, वितर्क, रोमांच जैसे संचारियों का परिगणन समझना चाहिए परन्तु चिन्तामणि ने इनका उल्लेख न करके जहाँ लक्षण को संक्षिप्त बनाया है वहाँ अस्पष्टता भी आ गई है ।

वर्ण और देवता:—

विश्वनाथ के आधार पर वीर रस का वर्ण स्वर्ण के समान और देवता इन्द्र है । ऐसा उल्लेख कवि कुल कल्प तरु में प्राप्त होता है —

इन्द्र देवता कनक सम बरन सु जाको जान[3]

वीर रस के भेद:—

साहित्यदर्पण तथा कवि कुल कल्प तरु में वीर रस के चार भेदों को स्वीकार किया गया है — दान वीर, धर्म वीर, युद्ध वीर और दया वीर ।

दान धर्म के युद्ध के दया सु आदि गनाय[4]

उदाहरण:—

वीर रस के सभी उदाहरण राम कथा से लिये गये हैं जिनमें युद्ध वीर, दान वीर और दया वीर के उदाहरण हैं । युद्ध वीर में राक्षसों से युद्ध करते

हुए राम के उत्साह का सुन्दर परिपाक है तो दान वीर में लंका का राज्य विभीषण को देने की घटना का उल्लेख है । दया वीर में युद्ध भूमि में मृत वानर भालुओं को जीवन दान देने का सुन्दर उल्लेख है । सभी उदाहरण सुन्दर हैं

भयानक रस:—

भयानक रस का स्थायी भाव भय है । विश्वनाथ के आधार पर चिन्तामणि का कथन है कि किसी रौद्र की शक्ति से उत्पन्न चित्त को व्याकुल कर देने वाला भाव भय कहलाता है और जहाँ यह भय स्थायी रूप से विद्यमान होता है उसे भयानक रस कहते हैं —

रौद्र शक्ति भव चित्त की विकलता भय जानि ।
सो जामें थाई सुरस भयानकौ पहिचानि ।।[6]

आलम्बन:—

जिससे यह भय उत्पन्न होता है वही इस रस का आलम्बन है —

जाके उपजत हैं सुतेती आलम्बन जानि[7]

स्पष्ट है कि भय जिससे उत्पन्न होता है ऐसे सिंह आदि को ही यहाँ आलम्बन मानना चाहिए किन्तु चिन्तामणि के लक्षण से ऐसा अर्थ प्रतीत होता है कि जिसमें यह भय पैदा होता है वह आलम्बन है (जबकि वस्तुतः वह आश्रय है)अतः लक्षण दोष पूर्ण हो जाता है । वस्तुतः साहित्यदर्पण के 'यस्मात्' का अनुवाद 'जाके' के स्थान पर जाते या जासों होना चाहिए । यह भ्रान्ति लिपिकारों के

1:क0क0त09/115 तुलनीय - सा0द0 3/233
2:क0क0त0-9/114 तुलनीय- सा0 द0 3/234
3:क0क0त010/116 तुलनीय सा0द0 3/232
4:वही 10/115 वही 3/234
5:वही 10/118 से 128 तक
6:क0क0त0 9/129 तुलनीय- रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्तवैक्लव्यदं भयम् । सा0द0 3/ 1[illegible] तथा भयानकोभयस्थायिभावः-वही 3/235
7:क0क0त09/130 तुलनीय- सा0द0 3/236

प्रभाव से ही उत्पन्न हुए हैं ऐसा मानना अधिक संगत होगा । यहाँ आश्रय का उल्लेख नहीं है क्योंकि साहित्य दर्पण में स्त्री और नीच प्रकृति के लोगों को आश्रय माना गया है ।[1]

उद्दीपनः--

उद्दीपन के संबन्ध में विश्वनाथ के समानान्तर चिंतामणि का कथन है कि-

ताके इंगित जे जे कछू उद्दीपन ते मानि ।[2]

वस्तुतः आलम्बन की भयंकर चेष्टाएँ जैसे सिंह आदि का गरजना, आक्रमण के लिए झपटना आदि उद्दीपन विभाव हैं । किन्तु चिंतामणि ने 'जे कछू' कह कर स्थान को सांकेतिक बना दिया है जिसमें स्पष्टता का अभाव है ।

अनुभावः--

विश्वनाथ ने अनुभावों की एक पूरे श्लोक में लम्बी सूची प्रस्तुत की है जिसमें वैवर्ण्य, गद्‌गद्‌ स्वर, प्रलय (मूर्छा), स्वेद, रोमांच, कंप, इधर-उधर देखना, आदि का परिगणन है[3] किन्तु चिंतामणि ने केवल वैवर्ण्य का उल्लेख करके आदि शब्द का आश्रय लिया है जिससे स्थान संक्षिप्त हो गया है पर उतनी अनुभाव में दुरूह भी । चिन्तामणि का कथन इस प्रकार है -

वैवर्ण्यादिक जानियै ताके इत अनुभाव[4]

संचारी भावः--

भयानक रस के संचारियों में शंका तथा भय का उल्लेख करके 'आदि' शब्द के प्रयोग से काम चला लिया गया है -

शंकाभीतादिक कहे तै संचारि गनाय[5]

यहाँ भी विश्वनाथ ने पूरे एक श्लोक में जुगुप्सा, आवेग, मोह, त्रास, ग्लानि, दीनता, शंका, अपस्मार, संभ्रम तथा मरण का उल्लेख किया है ।[6]

1: स्त्री नीचप्रकृतिः सा०द० 3/235
2: का०क०त० 9/130 पूर्वार्ध - चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनम् - सा०द० 3/236
3: सा०द० - 3/237
4: का०क०त० 9/131 का पूर्वार्ध
5: वही 9/131 का उत्तरार्ध

वर्ण और देवता:-

भयानक रस के देवता एवं वर्ण का उल्लेख विश्वनाथ के आधार पर इस प्रकार है -

काल वरन याको बरन काल देवता मानि ।[1]

अर्थात् इसका वर्ण काला और देवता काल हैं ।

उदाहरण:-

इस रस के उदाहरण में चिंतामणि ने एक दोहा दिया है इससे पता लगता है कि चिंतामणि की इस रस में अभिरुचि नहीं रही होगी ।

वीभत्स रस:-

स्थायी भाव:-

वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है । विश्वनाथ का अनुवाद करते हुए चिंतामणि का कथन है कि -

देखे कुत्सित वस्तु के होत जुगुप्सा जानि ।

सो है थाई भाव जिहि सो वीभत्स बखानि ।।[2]

विश्वनाथ का कथन है कि -

दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा

तथा

जुगुप्सा स्थायि भावस्तु वीभत्सः कथ्यते रसः ।[3]

तात्पर्य यह है कि दोषादि के दर्शन के कारण किसी वस्तु के प्रति उत्पन्न घृणा को जुगुप्सा कहते हैं । विचारणीय है कि विश्वनाथ ने घृणा जनक वस्तु के दोषदर्शन से जुगुप्सा का उदय माना है किन्तु चिंतामणि ने उसे कुत्सित वस्तु कहा

1: क0क0त0 10/132 तुलनीय - सा0द0 3/235

2: वही 10/134

3: सा0द0 3/239

उदाहरणः—

राम रावण युद्ध के प्रसंग में बीभत्स रस का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया गया है ।[1]

अद्भुत रसः—

अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है । इसका लक्षण विद्यानाथ के आधार पर चिंतामणि ने इस प्रकार किया है ।

निरखि अलौकिक वस्तु जो होतु चित्त विस्तार
सो विस्मय थाई जहाँ सो अद्भुत रस धार[2]

अपूर्वार्थ का अनुवाद अलौकिक वस्तु किया गया है । अतः सिद्ध है कि अलौकिक वस्तु के दर्शन से चित्त को जो विस्तार प्राप्त होता है । यह अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय रूप विस्मय तत्त्व है । विश्वनाथ ने अद्भुत रस के प्रकरण में तो लोक की सीमा को अतिक्रान्त करने वाले विविध पदार्थों से उत्पन्न चित्त को विस्मय कहा है[3] जो प्रायः विद्यानाथ एवं चिन्तामणि से मिलता जुलता है किन्तु विशेष रूप से लक्ष्य करने की बात यह है कि चिंतामणि ने अद्भुत को रस का सार कहा है । इस 'रसेसारः' शब्द को धर्मदत्त के ग्रन्थ से विश्वनाथ ने उद्धृत किया है[4] जिसमें उन्होंने प्रत्येक रस में अद्भुत अथवा चमत्कार स्वरूप विस्मय तत्त्व की अनिवार्यता स्वीकार की है ।

अतः चिन्तामणि का उपर्युक्त मान्यता में अद्भुत तत्त्व का सभी रसों में होना ही सिद्ध करता है । चित्त विस्तार का तात्पर्य प्रसन्नता के कारण चित्त

1: क०क०त० 9/137

2: वही 9/138

तुलनीय —

अपूर्वार्थ संदर्शनाच्चित्त विस्तारो विस्मयः

प्र०रु०प्र० 165

3: सा०द० 3/169,170

का वैशद्य प्राप्त करना ही है ।

आलम्बनः—

अलौकिक वस्तु की महत्ता का उल्लेख करते हुए चिंतामणि का कथन है कि

मत अलौकिक जो वस्तु सो आलम्बन जानि

तथा —

आलम्बन मनि वस्तु जो बरन अलौकिक होइ[1]

तात्पर्य यह कि जो वस्तु संसार की सामान्य वस्तुओं से विलक्षण होती है उसी से विस्मय की उत्पत्ति होती है । इस बात को विश्वनाथ ने — वस्तुलोका-तिगमालम्बनम्[2] गतम् के रूप में व्यक्त किया है ।

उद्दीपनः—

अलौकिक वस्तु की महिमा और उसके गुणों को विश्वनाथ की भाँति चिंतामणि ने अद्भुत रस की उद्दीपन सामग्री के रूप में स्वीकार किया है —

महिमा वाके गुनन की सो उद्दीपन मानि ।

तथा —

उद्दीपनता गुननन की महिमा जो कछु होइ[3]

इससे स्पष्ट है कि अलौकिक वस्तु के गुणों की महिमा ही अद्भुत रस का उद्दीपन है:—

गुणनाम् तस्यमहिमा भवेदुद्दीपनं पुनः[4]

यहाँ यह संकेत आवश्यक है कि गुणों की महिमा का उल्लेख विश्वनाथ

1: का०क०त० 9/139 तथा 140 का पूर्वार्द्ध

2: सा०द० 3/243

3: वही 9/39 तथा 140 का उत्तरार्द्ध

4: सा०द० 3/243

और चिंतामणि दोनों ने किया है किन्तु उसके विवरण-विश्लेषण के संबंध में मौन हैं ।

<u>आश्रय:—</u>

आश्रय का उल्लेख यहाँ भी नहीं है ।

<u>अनुभाव:—</u>

विश्वनाथ ने स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गद्गद् स्वर, संभ्रम और नेत्र विकास आदि अनुभावों का उल्लेख किया है[1] किन्तु चिंतामणि ने संक्षिप्तता को महत्व देते हुए केवल नेत्र विकास की चर्चा करके 'आदि' शब्द से काम चला लिया है :—

नेत्र विकासादिक जहाँ बरनत हैं अनुभाव[2]

<u>संचारी भाव:—</u>

विश्वनाथ ने हर्ष, वितर्क, आवेग और संभ्रम इन चार संचारियों का उल्लेख करके आदि शब्द का प्रयोग किया है—

वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिणः[3]

किन्तु चिंतामणि ने हर्ष और वितर्क का उल्लेख करके छोड़ दिया है —

हर्ष-वितर्कादिक तहाँ संचारी समुझाय[4]

<u>वर्ण और देवता:—</u>

चिंतामणि ने अद्भुत रस का वर्ण पीत तथा देवता गन्धर्व को माना है —

पीत बरन जो बरनिये गन्धर्व दैवत मानि[5]

पीत वर्ण तो विश्वनाथ ने भी स्वीकार किया है किन्तु उन्होंने गन्धर्व को देवता माना है[6] किन्तु चिंतामणि ने गन्धर्व का उल्लेख किया है । "स्वर्ण [illegible]

1: सा०द० 3/244
2: क०क०त० 9/141 का पूर्वार्द्ध
3: सा०द० 3/245
4: क०क०त० 9/141 का उत्तरार्द्ध
5: वही 9/142 का पूर्वार्द्ध
6: सा०द० 3/242 तथा 243

रहकर पूरी सृष्टि में व्याप्त रहने वाला और कुसुम सायकों से जगत को बेधने की कामना रखने वाला उद्भुत कर्मा काम देव भी अधिदेवता होने में समर्थ हैं किन्तु × × × × काम देव को अधिष्ठाता मानने में दो आपत्तियाँ हैं एक तो यह कि काम देव शृंगार रस से संबद्ध है, ऐसी दशा में अद्भुत तत्त्व का विस्तार केवल शृंगार तक सीमित हो जायगा । दूसरा यह कि "काम देव में प्रभावगत वैविध्य नहीं है"।[1]

उदाहरणः—

राम और कृष्ण के लोकोत्तर चरित्रों के आधार पर दो उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं । पहले में तो रामकथा के अनेक प्रसंग हैं किन्तु दूसरे में गोवर्धनो-द्धारण की कथा है[2]।

शान्तरसः—

शान्तरस के स्थायी भाव शम के विवेचन में चिंतामणि विश्वनाथ से प्रभावित हैं :—

शम कहियत वैराग्य तें, निर्विकार मन होइ ।
सो थाई जिहि शान्त रस, बरनत हैं सब कोइ ।।[3]

और विश्वनाथ का कथन है:—

शमोवैराग्यादिनानिर्विकारचित्तत्वम्[4]

स्पष्ट है कि चिन्तामणि ने सम्पूर्ण लक्षण का अविकल अनुवाद किया है ।

1: हिन्दी काव्य में विस्मय तत्त्व एवं अद्भुत रस — डा0 शिवाकान्त त्रिवेदी- पृ0 3

2: क0क0त0 9/143 तथा 144

3: वही 9/145

4: प्र0रू0भू0 पृष्ठ 168

आलम्बनः—

चिंतामणि का कथन है कि :—

आलम्बन संसार के निश्चित सत्व बखानि ।
है परमारथ सत्व जो सो आलम्बन जानि ।।[1]

विश्वनाथ ने 'अनित्यत्व' आदि के कारण सम्पूर्ण असारता का ज्ञान अथवा परमात्मा के स्वरूप को इस रस में आलम्बन माना है ।[2] चिंतामणि ने सम्भवतः अनुवाद तो विश्वनाथ का ही किया है किन्तु प्रथम पंक्ति में निश्चित सत्व अंश में भ्रांति प्रतीत होती है क्योंकि संसार के निश्चित प्राणियों का आलम्बनत्व शान्तरस की दृष्टि से संगत नहीं प्रतीत होता । सम्भवतः लिपिकारों के प्रमाद से 'निःसारत्व' के स्थान पर निश्चित सारत्व लिख दिया गया है क्योंकि निःसारत्व से अर्थ की संगति बैठ जाती है और छन्द भी दुष्ट नहीं होता । परमात्म स्वरूप के लिए 'परमारथसत्व' भी बहुत उचित अनुवाद नहीं है ।

अतः आलम्बन के स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद न होते हुए भी शान्तरस के आलम्बन के संबन्ध में प्रायः बोध स्पष्ट नहीं है ।

उद्दीपनः—

उद्दीपन के संबन्ध में चिंतामणि ने विश्वनाथ का शाब्दिक अनुवाद किया है । दोनों के लक्षण निम्नलिखित हैं :—

क - पुण्याश्रम हरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः ।
महापुरुषसङ्गाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ।।[3]

ख - पुन्याश्रम हरिक्षेत्र अरु तीरथ रम्य बनादि ।
ताके उद्दीपन गनत महा पुरुष संगादि ।।[4]

1: क०कु०क०त० 9/147

2: सा०द० 3/246 तथा 247 का पूर्वार्ध

3: सा०द० 3/247

4: क०कु०क०त० 9/148

क्या ही अच्छा होता यदि चिंतामणि ने इसी प्रकार सटीक और सफल अनुवाद किया होता ?

<u>आश्रय:-</u>

आश्रय के संबन्ध में यों तो कोई उल्लेख नहीं है किन्तु -

'सकल साधुसेवक सतत शुद्ध अति विमल आदि[1]' जैसे पंक्तियों के आधार पर संतों को इस रस का भी आश्रय मानना चाहिए ।

<u>अनुभाव:-</u>

चिन्तामणि ने शान्त रस में रोमांच नामक अनुभाव का उल्लेख विश्वनाथ के अनुवाद के रूप में किया है -

पुलकादिक अनुभाव गनि - - - - - ।[2]

यद्यपि यहाँ अश्रु, गद्गद् वचन आदि अनेक अनुभावों का उल्लेख किया जा सकता था लेकिन उन सब का समाहार आदि में कर लिया गया है ।

<u>संचारी भाव:-</u>

इस रस के संचारी का उल्लेख भी चिन्तामणि ने अतिशय संक्षिप्त किया है -

- - - - - - - - - - संचारी हर्षादि ।[3]

जबकि विश्वनाथ ने निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, प्राणियों पर दया आदि का संचारी के रूप में उल्लेख किया है । चिन्तामणि की संक्षेप वृत्ति से स्पष्टता में कमी आ गई है ।

<u>वर्ण और देवता:-</u>

विश्वनाथ के ही आधार पर इस का वर्ण कुन्द अथवा इन्दु के समान धवल माना गया है तथा भगवान नारायण को अधिदेवता के रूप में स्वीकार किया है -

---

1: क०क०त० 9/149

2: वही 9/149 तुलनीय - सा०द० 3/248

3: वही 9/149

कुन्द इन्दु सम धवल यह श्री नारायण आप ।
या रस के अधिदेवता जे मेटत सब ताप ।।[1]

यहाँ चरण की पूर्ति के लिए 'जे मेटत सब ताप' और चिन्तामणि का अपना है जिससे नारायण का प्रभाव द्योतित किया गया है ।

<u>उदाहरण:-</u>

उदाहरण में ब्रह्मज्ञान के आनन्द पारावार में निमग्न एवं सांसारिक प्रपंचों से मुक्त किसी संत की शान्ति दशा का सुन्दर निरूपण है ।

नव रसों के निरूपण के उपरान्त चिन्तामणि ने भाव, रसाभास, भावाभास, भाव शान्ति, भावोदय, भाव सन्धि और भाव शबलता का भी संक्षिप्त और किसी सीमा तक अलग अलग उल्लेख किया है ।[2]

<u>भाव:-</u>

भाव के विषय में मम्मट का कथन है कि :-

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाऽञ्जितः ।।
भाव प्रोक्तः ।
आदिशब्दात् मुनिगुरुनृपपुत्रादिविषया[3]

इसी आधार पर चिन्तामणि की उक्ति इस प्रकार है :-

देवसुत गुरु आदि पै, तिनमें जो रति भाव ।
कै संचारी व्यंजित जो शुद्ध भाव समुझाव ।।[4]

यहाँ उल्लेख है कि चिन्तामणि ने पुत्र विषयक रति को वात्सल्य रस स्वीकार

1: का०कु०त० 9/146 तुलनीय - सा०द० 3/246

2: का०कु०त० 9/157

3: का०प्र० 4/35 तथा उसकी वृत्ति

4: का०कु०त० 9/158

किया है और रूप गोस्वामी ने देव विषयक रति को भक्ति रस, किन्तु चिंतामणि ने इन्हें स्वतंत्र रस के रूप में न स्वीकार करके भाव ही माना है । सम्भवतः चिन्तामणि रसों की संख्या का विस्तार नहीं चाहते थे क्योंकि देव विषयक रति के जो दो उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं और जिनमें क्रमशः 'भवानी के चरण में मन बाँधने की'[1] तथा 'कोटि काम सुन्दर कुँवर कान्ह के कालिन्दी के कूल में कदम्ब तरु के तरे विराजने'[2] की शोभा का उल्लेख किया गया है । येह दोनों ही पद भक्ति भाव के उत्तम उदाहरण हैं । नृप विषयक रति भाव का उदाहरण अतिशय सुकुमार है । अतः उसको उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकती ।

कुच ही ललित जरकसी जग मगी हारु ।
झालर में झलकत मुक्ता सो है झुडार ।।
केसर के रंग रंगी कोनी सी झगुलिया में
झलकत अंग कुम्हल दल सुकुमार
हँसत कमल कलिया सु देखि चिंतामनि
अमल मुकुर कोर मानो दसरथ दार
गोद लिये रामचु को आनंद मगन मन
मैया ललकि के चलाया लेति बार बार[3]

गुरु विषयक रति का उदाहरण नहीं दिया गया है ।

<u>रसाभास तथा भावाभासः</u>--

रस एवं भाव यदि अनौचित्य प्रवृत्त हो तो उन्हें क्रमशः रसाभास और भावाभास कहते हैं :--

अनुचित विषयक रसु जु है सोई रस आभास ।
अनुचित विषयक भाव जो सो सुनि भावा भास ।।[4]

1: क०कु०क० 9/159
2: वही 9/160
3: वही 9/161
4: वही 9/162 तुलनीय सा०द० 3/262

इनके अनुकूल उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं ।[1]

भाव, शान्ति और भावोदय के संबन्ध में चिन्तामणि का कथन है कि :-

उपसम पावै भाव जो भाव शान्ति सो जानि ।
भावउदै आदिक सुनौ उदयादिक पहिचानि ।।[2]

भाव सन्धि और भाव शबलता के लक्षण नहीं दिए गए हैं, हाँ उदाहरण दिए गए हैं और वे बड़े ही मनोरम हैं ।

उपसंहार :-

चिंतामणि के रस प्रकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने रस संबन्धी समस्त विषयों एवं रस के विभिन्न अंगों का सुव्यवस्थित विवेचन किया है । आधार ग्रन्थों के रूप में काव्य प्रकाश, साहित्य-दर्पण, प्रताप रुद्रीय यशोभूषण, रस मंजरी, दशरूपक, कुवलयानन्द आदि ग्रन्थों से आवश्यकतानुरूप सामग्री संकलित की गई है। अपनी रुचि और योजना के अनुरूप जब एक ही स्थान में चिंतामणि कई आचार्यों के मतों का मिश्रण कर लेते हैं तो उनकी प्रखर मौलिक बुद्धि का पता लगता है । भाव, स्थायी भाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव आदि के स्वरूप निर्धारण में मुख्यतः विद्यानाथ का आश्रय लिया गया है । उद्दीपन विभाव में केवल तटस्थ उद्दीपन को ही स्वीकार करना और अन्य उद्दीपनों को आलम्बन धर्मिता के कारण आलम्बन मानना चिन्तामणि की मौलिक दृष्टि का परिचायक है । रस को मम्मट के समान ध्वनि का एक प्रभेद मानते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में उसे व्यंग्य घोषित किया है । 33 संचारी भावों के क्रम को दशरूपक के आधार पर लिया गया है तो उनका स्वरूप निर्धारण धनंजय, विश्वनाथ, और विद्यानाथ के सम्मिलित प्रभाव का परिणाम है । पूर्वराग के प्रसंग में विद्यानाथ द्वारा प्रस्तुत 12 काम दशाओं के साथ ही विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत दस काम दशाओं को निरूपित किया गया है ।

---

1. क०कु०त० 9/163 तथा 164
2. वही 9/165

विद्यानाथ का आश्रय लेते हुए भी इन्होंने नायक नायिका भेद को स्वतंत्र प्रकरण के रूप में न मानकर विश्वनाथ के अनुसार शृंगार रस के अन्तर्गत ही स्थान दिया है ।

इस प्रकार यद्यपि यह प्रकरण भी आकर ग्रन्थों के सार संचयन का परिणाम है तथापि सावयव अलंकारों को अनुमान के अन्तर्गत स्वीकार करना, अनुभाव के विद्यानाथ कथित चार भेदों में से तीन अस्वीकार कर देना, मरण और मद नामक संचारियों के नवीन लक्षण प्रस्तुत करना आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो चिंतामणि की मौलिक प्रतिभा को सिद्ध करने में पर्याप्त सहायक हैं । यद्यपि इतनी विशाल सामग्री के संचय और समायोजन में इनसे भूलें भी हुई हैं जिनकी यथा स्थान समीक्षा करने का भी हमने प्रयास किया है किन्तु सब मिलाकर इस प्रकरण में चिन्तामणि का प्रयास सफल और स्तुत्य है और रीतिकालीन परवर्ती आचार्यों के लिए अनुकरणीय बन गया है ।

*****

७: पिंगल प्रकरण

से करने पर छन्द की आह्लादकारिता स्वतः प्रकट हो जाती है । यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि भारतीय चिन्तन काव्य का परम लक्ष्य आनन्द को मानता है ऐसी दशा में काव्य का एक महत्वपूर्ण तत्व उस आनन्द की उपलब्धि में सहायक हो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

वस्तुस्थिति यह है कि छन्द में आह्लादन की क्षमता है । इस क्षमता के मूल में उसकी लयात्मकता ही सन्निहित है । लयानुकूल शब्दावली अपेक्षाकृत अधिक सुरम्य, आकर्षक और आह्लादक बन जाती है । श्री चन्द्र प्रकाश सक्सेना ने छन्द की इस विशिष्टता का उल्लेख करते हुए कहा है — " लययुक्त शब्दावली आत्मा को चमत्कृत कर उल्लास की ऐसी लोल लहर में व्यक्तित्व को डुबो देती है, जहाँ जीवन की भिन्नता भी आत्म विस्मृति में तिरोहित हो जाती है, मन चिदानन्द की अनुभूति करके गद्गद् हो उठता है ।"[13] कहना न होगा कि इस रमणीयता और आह्लादकता के कारण ही छन्द अत्यधिक स्मरणीय और संग्रहणीय बन जाता है ।

छन्द की आह्लादन क्षमता से जो आत्म-विस्मृति मिलती है उसमें जीवन की भिन्नता ही नहीं मिटती, मन के विकार भी नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार आत्मा का उन्नयन होता है और मानव संस्कृति विकसित होती है । इस संदर्भ में डा० गुप्त का यह कथन स्मरणीय है कि × × × भाव का अरूप छन्द के आलोक में चिन्मय बन जाता है और व्यक्ति के जीवन की परिधि विस्तृत होकर सृष्टि व्यापी अनन्त मानव को आत्मसात् कर लेती है" यही तो मानव संस्कृति का उद्देश्य है"[2] छन्द के द्वारा आत्मोन्नयन और संस्कृति के विकास की बात को स्वीकार करते हुए श्री सक्सेना ने कहा " छन्द की आह्लादन क्षमता आत्मा को जिस उन्मुक्त अवस्था में ले जाती है, वहाँ मन के विकार भी लुप्त हो जाते हैं । राग द्वेष प्रभृति सांसारिक वासना से विरहित होकर वह केवल माधुर्य में डूब जाता है । प्रकृत लय माधुरी मानव के

पिछले पृष्ठ की टिप्पणी—

2: हिन्दी का छन्द विधान : ऐतिहासिक, शास्त्रीय तथा कला परक अध्ययन -
लेखक - श्री चन्द्र प्रकाश सक्सेना (टंकित प्रति पृष्ठ 42).

इस पृष्ठ की टिप्पणी—

1: हिन्दी का छन्द विधान : ऐतिहासिक, शास्त्रीय तथा कला परक अध्ययन -

वास्तविक रूप में कविता नहीं है । इस गद्य मात्र के संस्कार से युक्त साहित्य-कार की महत्वाकांक्षा का परिणाम या उसकी हठधर्मिता का परिचय कहा जाय, तो कदाचित अतिशुक्ति न होगी । आज नवीनता के मोह के कारण छन्द मुक्त काव्य का प्रचलातिशय दृष्टिगत हुआ है, उसमें बहुत सी ऐसी कवितायें भी मिल जाती हैं जिनको मुक्त छन्द की शैली का आवरण मात्र दिया गया है, वस्तुतः वे शुद्ध गीत हैं, वे लय की स्वच्छन्दता से युक्त भी हैं और अन्त्यानुप्रास के सौन्दर्य से मंडित भी । यों तो हिन्दी के रीति ग्रन्थकारों में चिन्तामणि को प्रथम शास्त्र-कार माना गया है किन्तु छन्द शास्त्रीय लक्षण ग्रन्थों में चिन्तामणि कृत पिंगल से पूर्व का ग्रन्थ छन्दोहृदय प्रकाश उपलब्ध हुआ है जिसके रचयिता मुरली धर कवि भूषण थे । इस ग्रन्थ की समाप्ति सवंत् 1756 वि० में हुई । चिन्तामणि कृत "पिंगल" का रचना काल सम्वत् 1756 है । अतः स्पष्ट है कि चिन्तामणि का पिंगल परवर्ती है । किन्तु स्मरणीय है कि चिन्तामणि का कविता काल सं०1700 के आस-पास बताया जाता है । इस आधार पर तो वह और मुरली धर कवि भूषण समकालीन ठहरते हैं । वस्तुस्थिति यह है कि मुरलीधर कवि भूषण चिन्तामणि के छोटे भाई थे ।

चिन्तामणि ने मूलतः पिंगल की रचना के लिए प्राकृतपैंगलम् को ही आधार बनाया है । प्राकृतपैंगलम् छन्द शास्त्रीय जगत का अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । डा० शिवनन्दन प्रसाद के अनुसार मात्रिक छन्दों की दृष्टि से इसका वही स्थान है जो वर्णवृत्त के प्रसंग में पिंगल कृत छन्दःशास्त्र का है ।[1] यह प्राकृत भाषा में लिखा गया है इसकी रचना चौदहवीं शताब्दी के आस-पास हुई ऐसा मान्य है साथ छन्दों में ही स्वनामोल्लेख की परम्परा का अनुसरण इस ग्रन्थ में भी हुआ है उदाह-रण अलग से दिए गए हैं, इसमें नवीन मात्रिक छन्दों का उल्लेख हुआ है ।दोहा जैसे लोकप्रिय छन्द का प्रथम शास्त्रीय विवेचन प्राकृतपैंगलम् के रचयिता ने ही किया है ।

पिछले पृष्ठ की टिप्पणी :—

1: तुलसी का छन्द विधान: ऐतिहासिक, शास्त्रीय तथा कलापरक अध्ययन · लेखक की शीघ्र प्रकाश्य थीसिस (टंकित प्रति पृष्ठ — 21)

2: छन्द विषयक पुनरुक्त कोष — ना०का०शा० 1/5

तुलनीय — छन्दो वक्ष्ये यथाक्रम — ना० शा० 6/314

<u>चिन्तामणि कृत पिंगल :—</u>

आचार्य चिन्तामणि ने मकरन्दशाह की आज्ञा से पिंगल ग्रन्थ की रचना की[1]। आरम्भ में चिंतामणि ने गुरु-लघु-विचार, गण-परिचय, मात्रा प्रस्तार-मात्रा उदिष्ट, वर्ण मेरु, मात्रा-मेरु, वर्ण पताका, मात्रा पताका, वर्णमर्कटी तथा मात्रा मर्कटी का विवेचन किया है। तत्पश्चात् मात्रिक और वर्णिक छन्दों को लक्षण और उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है। छन्दों का अधिकांश लक्षण-निरूपण प्राकृत पैंगलम् पर आधृत है।

मात्रिक छन्दों में जिन संख्यावाची शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे निम्नलिखित हैं —

पाँच मात्रा	= आयुध
चार मात्रा	= तुरंग
दो गुरु	= कर्ण
चार लघु	= विप्र
तीन गुरु	= गंधी[2]

चिंतामणि ने शंकर के अष्ट गणों (यगण, मगण, भगण आदि) का देवता माना है।

पृष्ठ 4 व 5 की टिप्पणी :—

3:

4:

इस पृष्ठ की टिप्पणी :—

1: चिन्तामणि कवि को हुकुम कियो साहि मकरन्द ।
करो लच्छि लच्छन सहित भाषा पिंगल छन्द ।।
— चि०पिं० पृष्ठ 1

2: चि०पिं० पृष्ठ 18 से 22 तक छन्द 18 से 22 तक

(क) मात्रिक छन्द:—

1. गाथा(आर्या):—

इसके प्रथम और तृतीय चरण में बारह-बारह, द्वितीय में अट्ठारह तथा चतुर्थ चरण में पन्द्रह मात्राएँ होती हैं। यति बारह मात्राओं के पश्चात आती है।[1] इसकी लय के निर्धारण में आचार्य चिन्तामणि ने पूर्ववर्ती आचार्यों का अनुकरण मात्र किया है। पिंगल से लेकर प्राकृत पैंगलम् तक में यही कहा गया है कि इसके पूर्वार्द्ध में सात चतुष्क के बाद एक गुरु आता है, पूर्वार्द्ध का षष्ठ चौकल जगण(।ऽ। या सर्व लघु (।।।।) होता है, उत्तरार्द्ध में 'लघु' मात्र रह जाता है।[2] चिंतामणि ने भी यही माना है।[3] प्रस्तुत लेखक द्वितीय दल या उत्तरार्द्ध की ओर अधिक स्पष्टता प्रदान करते हुए यह कहना चाहता है कि उत्तरार्द्ध में छठे चौकल की जो पूर्वार्द्ध में जगण या चार लघुओं में रूपायित होता है, तीन मात्राएँ कम हो जाती हैं, यथा —

> साहि नृपति सुव कीरति । चाहि चिति जग मधि सेत अतिछनी ।।
> हिय के कहत कछु मिति । तुहू कहत कोकिला बानी ।। —(चि० पि० 58)

आचार्य चिन्तामणि ने कमला, लीला आदि गाथा भेद भी बताये हैं। कमला में 27 गुरु कहे हैं।[4] स्वतः स्पष्ट है कि 27 गुरु के साथ 3 लघु आयेंगे। अगले प्रत्येक गाथा भेद में एक-एक गुरु कम होता जायेगा और उसके स्थान दो लघु लेते जा

---

1. प्रथम तीसरे रवि कला दूजै ठारह जानि ।
   चौथे पद पन्द्रह रचौ यो गाथा पहिचानि ।।56।। पृ० 8 (चि० पि०)
2. पिंगल 4/14-17, प्रा० पैं० 2/1-2, हेम० छन्दोऽनुशासन 4/1-2, प्रा० पैं० 1/54
3. सात-चतु:कल गुरु सहित छठें जगन पुनि जानि ।
   कै चितवहु उत्तर अरध छठें लघु पहिचानि ।।57।। पृ० 8 (चि० पि०)
4. कई कमलादिक गुरु जानु । 62 पृ० 9 (चि० पि०)

5- सिंहनी :-

यह गाहिनी का उल्टा होता है[1] अर्थात् गाहिनी के ~~प्रथम दल में~~ प्रथम दल में 30 मात्राएँ होती है इसके दूसरे दल में, गाहिनी के द्वितीय दल में 32 मात्राएँ होती हैं, इसे प्रथम दल में । यथा,

हिम करू हिम अरू हीर क्रु । हर गिर हर हास हर कृपा हर, हारे । 12, 20
साहि नृपति हमि सुन्दर । सेत सुजसु चहु दिसा निमाह पसारो ॥ 12, 11
(शि॰ पि॰)

रेखांकित अक्षरों का द्रुतोच्चारण अपेक्षित है ।

6: घत्ता :-

इस छंद में दो चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में चार चौकलों से निर्मित 32 मात्राएँ होती हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द 64 मात्राओं का होता है ।[1]

7: रसिक :-

इस छन्द में 6 चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में 11 लघु होते हैं । यथा,

घर बल दलि मलि पिरत । 11 लघु
रहकनि धुक अमिर मिरत । ,,
कमल सबलिहि मद भरत । ,,
उमहि बिहद मद भरत । ,,
नृप मद भर भम चलत । ,,
रस-बस बिबि झल हलत ।[2] ,,
— (शि॰ पि॰ 75)

पिछले पृष्ठ की टिप्पणी :-

3: (अ) पूरब उत्तर अरु वो माहा के विपरीत ।
साहि सिंहनी कहत हैं, छन्द सुजिन अमीत ।।67 (शि॰ पि॰ पृ॰9)

(आ) प्राकृत पैंगलम् 1/66

4: (अ) मात्रा की चौथी चरन चौथ मत को होय ।
सो गाहिनि × × × ×" — 69 (शि॰ पि॰ पृ॰10)

द्विपदी :—

द्विपदी में दो चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में 29 मात्राएँ होती हैं जिनमें चार छकल और पंचक का योग होता है और अन्त में गुरु आता है । बारह मात्राओं के बाद यति आती है ।[1] यथा,

साहि महीपति सुव जब, गावत नितहि वर सुनी वेद हैं ।
मैं जानत जाही ती जग मह सबसे बरन विशेष है ॥45॥

— पि०पि० पृ० 22

दंड :—

यह भी द्विपदी छन्द है जिसमें सर्व लघु से निर्मित नौ चौकलों के पश्चात् एक रगण आता है । इस प्रकार इसमें 41 मात्राएँ होती हैं ।[1] यह विशुद्ध मात्रिक छन्द नहीं है । इसकी प्रकृति वर्णवृत्त के समीप है । यथा,

जगत मह विदित सुर असुर नर मुनि सकल, कहत हर, सुनहि सब,
रचन सकल जाहि जू ।
सुकवि मन नमत नित सकल जग गुन अविरल सुरस सुख कहत सुख
रचत सब जाहि जू ॥46॥

— पि०पि० पृ० 22

उदाहरण 'दंड' के द्वितीय चरण में एक मात्रा कम है ।

---

(1) आदि छकल चौर चारकल पाँच अन्त गुरु होय ।
बारह पर विश्राम कई, द्विपदी कहिये सोय ॥44॥

— पि०पि० पृ० 22

(2) अ- त्रिभुवन अंत हर गनधा, विधि लघु पुन होय ।
कवि चिंतामनि कहत हैं, दंडा कहिये सोय ॥45॥

— पि०पि० पृ० 22

आ- [illegible] 1/159

रुचिरा:—

यह त्रिपदी छन्द है। प्रत्येक चरण में 7 चौकल और एक गुरु के योग से 30 मात्राएँ होती हैं[1]। यथा,

> साजि सु दल सिंगार सुलित रन सोभ अनल मन क्यौं अकबै ।
> सुभग तुरंग कुरंग मयन मित, चपल तुरंग हवा कबवै ॥96॥
>
> — वि० वि० पृ० 25

सिंहावलोकन:—

इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में चार चौकलों के योग से 16 मात्राएँ होती हैं। पहले चरण को छोड़कर अन्य प्रत्येक चरण के प्रारंभ में पूर्व चरण के अन्त का शब्द प्रयुक्त होता है।[2] यथा,

> प्रफुल्लित बन छवि नहिं कहत बनै ।
> बन कोकिल कूकत कुंज घनै ।।
> घन मधु झरकर संचित सु समी ।
> समीकर सुख रघु कंटक कमी ।।

---

1. (अ) सात चतु: कल होइ जह, बहुरि अन्त गुरु होय ।
   साजि मत्त के चरन दै, रुचिरा कीज्जै सोय ।।

   (आ) प्रा० पै० 5/34
2. (अ) चारि चतु: कल द्विप की रच अंकन निश्चित होइ ।
   अंत आदि मैं चरन सम, सिंह विलोकन सोइ ।।

   (आ) प्रा० पै० 1/184

81: भ्रमरावली:--

इस छन्द के प्रत्येक चरण में 15 वर्ण होते हैं जिनमें 5 सगणों का योग होता है।[6]

82: कल हंस:--

'स ज ज भ र' का योग कल हंस है। यह 15 अक्षर का छन्द है।

83: रमस:--

इसमें 14 लघु होते हैं और अन्त में गुरु होता है। इस प्रकार 15 वर्ण होते हैं।[7]

84: निशिपाल:--

इस छन्द में 'भ ज स न र' का क्रम होता है। इस प्रकार से 15 अक्षर होते हैं।[1]

85: नाराच:--

इस छन्द में लघु गुरु क्रम से 16 वर्ण होते हैं।[2]

86: नील:--

इसमें पाँच भगण के पश्चात् एक गुरु आता है।[3]

87: चंचला:--

इस छन्द में गुरु लघु क्रम से 16 वर्ण होते हैं।[4]

88: पृथ्वी:--

इस छन्द का लक्षण है 'ज स ज स य ल० गु०'। इस प्रकार इसमें 17 वर्ण होते हैं।[5]

89: मालाधर:--

इस छन्द में 'न स ज स य ल० गु०' के क्रम से 17 वर्ण होते हैं।[6]

90: शिखरिणी:--

शिखरिणी 'में' य म न स भ ल० गु०' के क्रम से 17 वर्ण होते हैं।[7]

91: मन्दाक्रान्ता:--

'म भ न त त गु० गु०' का क्रम मन्दाक्रान्ता का लक्षण है। इस प्रकार इसमें 17 वर्ण होते हैं।[8]

छन्दों के लक्षण-निरूपण में वर्णिक गणों को ग्रहण किया जाता है ।

छन्दःशास्त्र के क्षेत्र में चिन्तामणि का यह कृत्य यद्यपि अधिकांशतः प्राकृत पैंगलम् का अनुकरण है तथापि इसकी अपनी उपयोगिता और महत्ता है, जिसे विस्मृत नहीं किया जा सकता है । चिन्तामणि ने प्राकृत भाषा में उल्लिखित नियमों और लक्षणों को हिन्दी में प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है, उसे छन्द विषय ज्ञान को सरल और संक्षिप्त बनाने का सफल प्रयत्न कह सकते हैं । वस्तुतः चिन्तामणि छन्द के हिन्दी लक्षणकारों की उस परम्परा के प्रतिनिधि और सूत्रधार हैं, जिसने संस्कृत और प्राकृत भाषा से अपरिचित व्यक्तियों के छन्द के ज्ञानार्जन का मार्ग प्रशस्त किया है ।

x*0*x

10: उ प ल ब्धि याँ

(ख) परिशिष्ट

(मुगल कालीन)
भारत में चिंतामणि की
जन्मभूमि तथा प्राप्त
काबुल
काश्मीर
हमीरपुर
कानपुर
फतेहपुर
चित्रकूट
गोलकुण्डा
बंगाल की खाड़ी

मुगलकालीन - कानपुर, फतेहपुर जिलों में
चिन्तामणि की जन्म तथा निवास स्थान
कानपुर
गं गा न दी
तिकवापुर
खजुआ
बिन्दकी
फतेहपुर
खागा
य मु ना न दी
संकेत
सड़क
रेलवे
नदी
जन्म स्थान
निवास स्थान

ध्वनि का वर्गीकरण
अविवक्षित वाच्य
विवक्षितान्यपरवाच्य
अर्थान्तर संक्रमित वाच्य
अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य
संलक्ष्य क्रम व्यंग्य
असंलक्ष्य क्रमव्यंग्य

कवि कुल कल्प तरु में नायिका भेद :—

(1) जाति के आधार पर —

दिव्या, अदिव्या, दिव्या दिव्या = 3.

(2) नायक के संबन्ध के आधार पर —

स्वकीया, परकीया, सामान्या = 3

स्वकीया के तीन प्रमुख भेद

मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा = 3

मुग्धा —

अविदित यौवना, अविदित कामा, विदितमनोभवा, नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा, कोमल कोपा = 6

मध्या —

आरूढ़ यौवना, आरूढ़ मदना, विचित्र सुरता, प्रगल्भ वचना = 4

प्रगल्भा या प्रौढ़ा :—

यौवना प्रगल्भा, मदनमत्ता, रति प्रीति मती, रत्यानन्द परवशा अथवा सुरतिमोद परवशा = 4

मान की दृष्टि से मध्या और प्रौढ़ा स्वकीया नायिका के तीन भेद :—

धीरा, अधीरा, धीरा धीरा = 3

प्रौढ़ा धीरा के तीन भेद :—

सावहित्थाधीरा, सादरा धीरा, रत्युदासा धीरा = 3

परकीया :—

ऊढ़ा, अनूढ़ा = 2

ऊढ़ा :—

सुरतगोपना, चतुरा, कुलटा, लक्षिता, अनुशयाना, मुदिता = 6

चतुरा :—

वचन चतुरा, क्रिया चतुरा = 2

अनुशयाना :—

संकेत स्थल नाश दुःखिता, भाविस्थान भाव दुःखिता, संकेत स्थल गमन समर्था = ३

सुरत गोपना (गुप्ता):—

वृत्त, वर्तिष्यमाण, वृत्तवर्तिष्यमाण (उक्त 6 भेद केवल ऊढ़ा परकीया के — ३

अवस्था के अनुसार :—

स्वाधीन प्रिया (पतिका), वासक सज्जा, विरहोत्कंठिता, विप्रलब्धा, खंडिता, कलहांतरिता, प्रोषित पतिका, अभिसारिका — ८

स्वाधीन पतिका :—

मुग्धा स्वाधीन पतिका, मध्या स्वाधीन पतिका, सामान्या स्वाधीन पतिका = ३

वासक सज्जा :—

मुग्धा वासक सज्जा, मध्या वासक सज्जा, प्रौढ़ा वासक सज्जा, परकीया वासकसज्जा = ४

विप्रलब्धा :— मुग्धा विप्रलब्धा, मध्या विप्रलब्धा प्रौढ़ा विप्रलब्धा, परकीया विप्रलब्धा

खंडिता :— मुग्धाखंडिता, उत्तमा खंडिता, मध्या खंडिता, प्रौढ़ा खंडिता, परकीया खंडिता, सामान्या खंडिता = 6

कलहंतरिता :— मुग्धा कलहंतरिता, मध्य कलहंतरिता, प्रौढ़ा कलहंतरिता, परकीया हंतरिता —४

प्रोषित पतिका :— प्रवत्स्यत पतिका, प्रवत्स्य पतिका, प्रोषित पतिका = ३

प्रवत्स्यतपतिका :— मुग्धा प्रवत्स्यत पतिका, मध्या प्रवत्स्यत पतिका, प्रगल्भा प्रवत्स्यत पतिका, परकीया प्रवत्स्यत पतिका, सामान्या प्रवत्स्यत पतिका = ५

प्रवत्स्य पतिका :— मुग्धा प्रवत्स्य पतिका, प्रगल्भा प्रवत्स्य पतिका, परकीया प्रवत्स्य पतिका,

प्रोषित पतिका :— मुग्धा प्रोषित पतिका, मध्या प्रोषित पतिका, प्रौढ़ा प्रोषित पतिका, परकीया प्रोषित पतिका, सामान्या प्रोषित पतिका = ५

अभिसारिका :— ज्योत्स्नाभिसारिका, दिवाभिसारिका, तमोभिसारिका = ३

गुण के अनुसार :— उत्तमा, मध्यमा, अधमा = ३

रस विलास में नायिका भेद :—

(अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर की हस्तलिखित प्रति से प्राप्त)

जाति के अनुसार :—

पद्मिनी, चित्रिणी, हस्तिनी, शंखिनी = 4

संबन्ध के अनुसार :—

स्वकीया, परकीया- सामान्या = 3

स्वकीया के तीन भेद :—

मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा = 3

मुग्धा के चार भेद :—

नवमुग्धा, नवविश्रब्धमुग्धा, रतिवामा मृदुकोपा = 4

मध्या के तीन भेद :—

प्राप्त यौवना, प्राप्त कामा, मोहान्तसुरतक्षमा = 3

प्रगल्भा :—

यौवनान्धा, भाव प्रगल्भा और रति प्रगल्भा

पुनः मध्या तथा प्रौढ़ा के मान की अवस्था आधार पर तीन भेद :—

धीरा, अधीरा, धीरा धीरा = 3

प्रौढ़ा धीरा के तीन प्रकार :—

सादरा, साविहत्था और रत्युदासा = 2

पुनश्चधीरादि भेद :—

ज्येष्ठा, कनिष्ठा = 3

परकीया :—

कन्या, परोढ़ा = 2

परोढ़ा :—

अभिमता, दुर्मिता, सुमिता = 3

सुमिता :— कुलटा और लक्षिता

सामान्या :— कोई भेद नहीं

गुण के अनुसार :— उत्तमा, मध्यमा, अधमा = 3

अवस्था के अनुसार :— स्वाधीन पतिका, वासकसज्जा, उत्कंठिता (उत्का), खंडिता,
कलहांतरिता, विप्रलब्धा, प्रोषित पतिका, अभिसारिका = 8

नायिका की सहायिकायें :— दूती, दासी, सखी, नटी, पड़ोसिनी, मालिन, बरइन, संन्यासिनी

श्रृंगार मंजरी में नायिका भेद :-

स्वकीया, परकीया, सामान्या = 3

स्वकीया :-

मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा = 3

मग्धा :-

प्रच्छन्न, प्रकाश = 2

प्रगल्भा :-

रीति प्रीति मतरि, रत्यानन्दपरवशा = 2

मध्या और प्रौढ़ा :-

धीरा, अधीरा, धीरा धीरा = 3

स्वकीया के अन्य भेद :-

जेष्ठा, कनिष्ठा = 2

परकीया :-

कन्यका, परोढ़ा =2

परोढ़ा :-

उद्बोधिता, उद्बुध्दा = 2

क. उद्बोधिता:-

धीरा, अधीरा, धीरा धीरा = 3

उद्बुध्दा :-

गुप्ता, निपुणा, लक्षिता = 3

निपुणा :-

वचन निपुणा, क्रिया निपुणा, पति वंचन निपुणा = 3

मानवती :— लघुमानवती, मध्यमानवती, गुरु मानवती = 3

अन्य संयोग दुःखिता :— दूतीसंभोग सम्भोग दुःखिता, दूती समागमित दुःखिता, इतर रति सुतिखिन्ना, ईर्ष्यागर्विता = 4

कलहंतारिता :—

ईर्ष्या कलहंतारिता, प्रणयकलहंतारिता = 2

वक्रोक्ति गर्विता :—

प्रेम गर्विता, सौन्दर्य गर्विता, सौभाग्य गर्विता, नैपुण्य गर्विता = 4

सौन्दर्य गर्विता :—

स्मित गर्विता, यौवन गर्विता, सौकुमार्य गर्विता, विलासगर्विता = 3

प्रोषित भर्तृका :—

प्रवत्स्यत्प्रिया, प्रवसत्पतिका, प्रोषित पतिका = 3

प्रवत्स्यत्प्रिया :—

विगलित प्रस्थान पतिका = 1

अभिसारिका :—

स्वकीया अभिसारिका, मुग्धाभिसारिका, मध्याभिसारिका, प्रौढाभिसारिका, परकीया अभिसारिका, सामान्याभिसारिका = 6

परकीयाभिसारिका :—

ज्योत्स्नाभिसारिका, तमोभिसारिका, दिवाभिसारिका, कामाभिसारिका, प्रेमगर्वाभिसारिका = 5

उत्तमादि :—

उत्तमा, मध्यमा, अधमा (सभी नायिकायें) = 3

वात्स्यायनमतानुसार :—

पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रिनी, शंखिनी = 4

अथ वरन मेरु

मत्ता मेरु
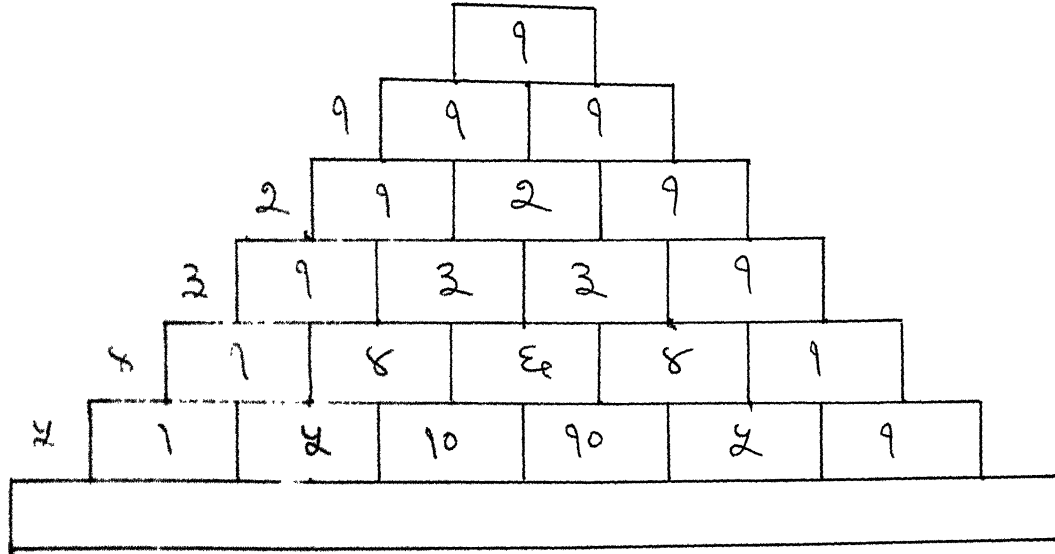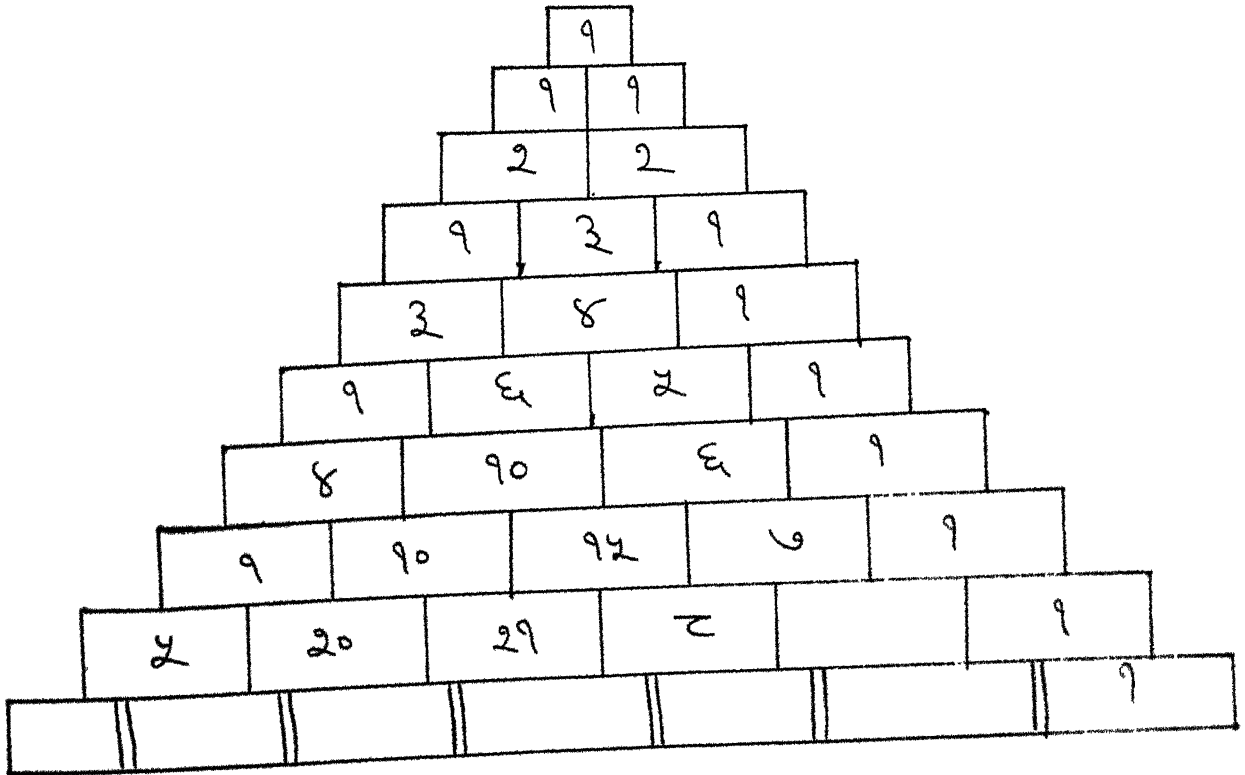
मात्रा पताका

१	२	३	५	८	१३

माता मर्कटी

१	२	३	४	५	६
१	२	३	५	८	१३
१			२०	४०	७८
०	१	२	५	१०	२०
१	२	५	१०	२०	३८
१	३	७	१५	३०	५८

वर्ण मर्कटी

१	२	३	४	५	६	७
२	४	८	१६	३२	६४	१२८
२	८	२४	६४	१६०	३८४	४२६
१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८
१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८
३	१२	३६	९६	२४०	५७६	

पूर्वोल्लिखित मन्त्र चित्रों के लिए पिंगल के दोहे :—

1: अच्छरमेरु —

आखर गिनती कोठ करि आदि अन्त धरि एक ।
पूर और सिर अंक जुग बरन सुमेर बिबेक ।।

चिन्तामणिकृत पिंगल 5/30

2: मत्तामेरु —

द्वै द्वै कोठ सम लिखो येक अंक ता अंक ।
आदि एक है एक ती एक धरियो अंत ।।
सेष अंक ता सीस को अंक जुगल मिलाइ ।
मत्त मेरु के अंक यो औरो गनो बनाइ ।।

चिन्तामणिकृत पिंगल - हस्तलिखित प्रति
काशी नागरी प्रचारिणी पृष्ठ 5/31, 32

3: मात्रा पताका :—

अंक रीति उद्दिष्ट के है कर ताके अंत ।
अंक एक मिलाइ के समति लेहु सुधिवन्त ।।
सेस अंक पूरब तरे धरिये उबरे अंक ।
द्वै द्वै बहुरि मिलाइ के औरो मेटि निसंक ।।
या पूरब उबरे बहुरि अंक धरो निरधारि ।
या विधि कीजो चारि पुनि औरो मेटि बिचारि ।।
एक अंक लोपे पंगति होत एक एक गुरु धान ।
द्वै लोपे तें दु गुरु धल या विधि औरे जानि ।।
मत्त पताका जानि यह लीजो सुजन निहारि ।
पिंगल मति सब समुझि करि कवि मनि कहत बिचारि ।।

चिन्तामणिकृत पिंगल — हस्तलिखित प्रति
काशी नागरी प्रचारिणी सभा पृ० 6/33-39

4: मात्रामर्कटी :—

पांति षट्कोण कीजिये मत्त संख्य सुभधाम ।
एकादिक तहँ अंक है पूरब पंगति विधान ।।
दु जे मे उद्दिष्ट के धरिये अंक बनाय ।
पुनि दोउ सौं तीसरी कवि मनि कहत सुनाय ।।
चौथी पंगति आदि ही धरिये किन्तु बिचारि ।
एक एक पंचई छठी चौथी पुनि निर धारि ।।
अब धरिये लघु पंगति को अरध पंचई चाहि ।
चौथी पूरो तीजी पंगति सेस अंक ता माहि ।।
चौथी पंचई जोरि के छठी रचो ता माहि ।
मत्त मर्कटी कहत यों चिंतामनि या भांति ।।
पूछो छंद कला करो पूछे चरन मिटाइ ।
सेस अंक गुरु जानिये लघु औरे पुनि पाइ ।।

प्रथम पाँति के एक कल विनि कलाधिक को ग्यान ।
दूजी ला प्रस्तार की कविअली जानत जान ।।
सकल कला प्रस्तार की समुझि तीसरी प पाँति ।
चोथी में गुरु पांचई लघु जानो या भांति ।।
छठीं पगति मे बुध्दि बल वरन सकल पहिचानि ।
कवि चिंतामनि कहत हैं पिंगल को मत आनि ।।

— चिन्तामणिकृत पिंगल — हस्तलिखित
प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा
पृष्ठ 67/40 — 49

5: वर्न मर्कटी :—

वरन संध्य जहँ कोव रचि पंगति सु तहाँ विचारि ।
एकाधिक लैह अंक दे पथम पंगति निरधारि ।।
पाँति दूसरी है वहुरि दूनें दीजे अंक ।
प्रथमहिं है धरि तीसरी है गनि वहुरि निसंक ।।
चोथी पंचई पंगति पुनि अरध अंक संगान ।
करि के तिसरी पाँति के पूरो कहत प्रमान ।।
पंचई ते है तिगुनी करो छठी पाँति भरि लेहु ।
वरन मरकटी यों रचो यो मनि माहि सवेहु ।।

— चिन्तामणिकृत पिंगल - हस्तलिखित
प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा
पृष्ठ 8/50 — 54

(५) परिशिष्ट

परिशिष्ट – ख

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

<u>संस्कृत ग्रन्थ –</u>

1: अकबर साहि शृंगार दर्पण	पद्म सुन्दर	प्रथम संस्करण
2: अभिनव भारती, अभिनव गुप्त	सम्पादक डा0 नगेन्द्र	प्रथम संस्करण
3: अलंकार सर्वस्व, रुय्यक		सन् 1950 ई0
4: अभिज्ञान शाकुन्तलम्,	कालिदास	शकाब्द 1827
5: अमर कोश	क्षीतस्वामी	प्रथम संस्करण
6: अलंकार शेखर	केशव मिश्र	सन् 1899
7: औचित्य विचार चर्चा	क्षेमेन्द्र	सन् 1933
8: काव्य प्रकाश, मम्मट, बाल बोधिनी टीका		प्रथम संस्करण
9: काव्य प्रकाश, मम्मट, आचार्य विश्वेश्वर टीका		सन् 1960
10: काव्य प्रकाश, मम्मट,	प्रदीप टीका	प्रथम संस्करण
11: काव्यादर्श	दंडी	सन् 1958
12: काव्यानुशासनम्	हेमचन्द्र	सन् 1938
13: काव्यालंकार	रुद्रट	सन् 1939
14: काव्यालंकार	भामह	सन् 1925
15: काव्यालंकार-सार-संग्रह	उद्भट	सन् 1958
16: काव्यालंकार-सूत्राणि	वामन	सन् 1953
17: कुवलयानन्द	अप्पय दीक्षित	संवत् 2013 वि0
18: चन्द्रालोक	जयदेव	सन् 1934
19: छन्दोऽनुशासन	हेमचन्द्र	प्रथम संस्करण
20: ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन	द्वितीय संस्करण
21: नाट्यदर्पण	आनन्दवर्धन	द्वितीय संस्करण
22: नाट्य दर्पण	राम चन्द्र गुण चन्द्र	प्रथम संस्करण
23: नाट्य शास्त्रम्	भरत मुनि	सन् 1943
24: पिंगल छन्द शास्त्र	हलायुध पुत्र भट्ट	प्रथम संस्करण
25: प्रताप रुद्र यशोभूषण, विद्यानाथ, सम्पादक डा0 वी0 राघवन्		प्रथम संस्करण

26: प्रताप रूद्रयशोभूषण, विद्यानाथ, रत्नापण टीका, कुमार मार्ग स्वामी प्रथम संस्क
27: प्राकृत पैंगलम्, संम्पादक डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रथम सं
28: पिंगल छन्दः सूत्रम् प्रथम संस्करण
29: ब्रह्म वैवर्त पुराण द्वितीय संस्करण
30: मेघ दूत कालिदास तृतीय संस्करण
31: मेदिनी शब्द कोश संवत 1997 वि0
32: रस तरंगिणी, भानु दत्त मिश्र संवत 2015 ई0
33: रस मंजरी भानु दत्त मिश्र सन् 1904
34: रस गंगाधर तिलक पंडित राज जगन्नाथ,
सम्पादक रा0 म0 सन् 1953
35: रसार्णव सन् 1865
36: राधामाधव विलास चम्पू सम्पादक वि0 का0
राजवाड़े शके 1844
प्रथम संस्करण
37: लोचन अभिनव गुप्त प्रथम संस्करण
38: व्यक्ति विवेक महिम भट्ट संवत् 1993 वि0
39: वक्रोक्ति जीवितं, आचार्य कुन्तक सम्पादक डा0 नगेन्द्र सन् 1955
40: विष्णु पुराण तृतीय संस्करण
41: वृत्त रत्नाकर सम्पादक केदार नाथ शर्मा सन् 1948
42: शृंगार तिलक रूद्रभट्ट तृतीय संस्करण
43: शृंगार प्रकाश भोजदेव प्रथम संस्करण
44: शृंगार मंजरी, सन्त अकबर शाह, सम्पादक डा0 वी0 राघवन, प्रथम संस्करण
45: श्रीमद् भागवत संवत 2006
46: साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ, विमला टीका सन् 1967
47: साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ, शशिकला टीका सन् 1970
48: संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी वी0 के0 तथा वी0 के0 कार्बे तृतीय संस्करण
49: हरिवंश पुराण तृतीय संस्करण

चिन्तामणि के हस्तलिखित ग्रन्थ :-

1: कृष्ण चरित्र	कैप्टन शूरवीर सिंह जी प्राप्त
2: चौतीसी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
3: छन्दोविचार	सरस्वती महल तंजौर
4: छन्दोलता	राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर जयपुर
5: छन्द विचार	महाराजा काशी नरेश पुस्तकालय, रामनगर (वाराणसी)
6: पिंगल	निजी प्रति
7: पिंगल	काशी नागरी प्रचारिणी सभा
8: बारह खड़ी	काशी नागरी प्रचारिणी सभा
9: रस विलास	अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर(जयपुर)
10: रामाश्वमेध	काशी नागरी प्रचारिणी सभा

11:
खोज रिपोर्ट द्वारा प्राप्त चिंतामणि के ग्रन्थ :-

11: काव्य विवेक	कुछ अंश खोज रिपोर्ट से प्राप्त
12: कवित्त विचार	कुछ अंश खोज रिपोर्ट से प्राप्त
13: रामायण	कुछ अंश खोज रिपोर्ट से प्राप्त
14: रसमंजरी	अप्राप्त (केवल नाम)

चिन्तामणि के प्रकाशित ग्रन्थ :-

15: कवि कुल कल्प तरु	नवल किशोर प्रेस व सन् 1875
16: शृंगार मंजरी	सम्पादक डा0 भगीरथ मिश्र, लखनऊ विश्व विद्यालय

17:
अन्य कवियों के हस्तलिखित ग्रन्थ :-

17: अमरेश विलास, नीलकंठ कृत	शिवराम पुस्तकालय गुलेर कांगड़ा
18: राधा माधव विलास चम्पू	जयराम कृत राजवाड़े इतिहास शोध संस्थान धुलिया
19: राधा माधव विलास चम्पू	

19: संगीत मकरन्द, वेदकृत — संस्कृत मडल ग्रन्थालय, तंजौर

20: अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर की हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची

21: हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की त्रैमासिक रिपोर्ट

22: हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, काशी नागरी प्रचारिणी सभा

हिन्दी के ग्रन्थ :-

1: अकबर दरबार के हिन्दी कवि — डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल — द्वितीय संस्करण

2: अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय — सम्पादक डा० दीनदयाल गुप्त — द्वितीय संस्करण

3: अरस्तु का काव्य शास्त्र — डा० नगेन्द्र — प्रथम संस्करण

4: आस्था के चरण — डा० नगेन्द्र — प्रथम संस्करण

5: आचार्य भिखारीदास — डा० नारायण दास खन्ना — संवत् 2012 वि०

6: आधुनिक ब्रज भाषा काव्य — डा० जगदीश वाजपेयी — प्रथम संस्करण

7: औरंगजेब भाग - 3 — जदुनाथ सरकार — प्रथम संस्करण

8: करुणा भरण — सम्पादक डा० योगेन्द्र सिंह — प्रथम संस्करण

9: कवितावली — गोस्वामी तुलसीदास — गीता प्रेस

10: काव्य के रूप — गुलाब राय — सन् 1950

11: केशव का आचार्यत्व — डा० विजय पाल सिंह — प्रथम संस्करण

12: केशव ग्रन्थावली — प्रथम संस्करण

13: कबीर ग्रन्थावली — सम्पादक माता प्रसाद गुप्त — प्रथम संस्करण

14: कवि प्रिया — केशव — संवत् 1982 वि०.

15: घनानन्द ग्रन्थावली — सम्पादक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र — प्रथम संस्करण

16: छत्तीस गढ़ का साहित्य और उसके साहित्यकार — डा० गंगा प्रसाद गुप्त — सन् 1972

17: छत्रपति शिवाजी — लाला राजपति राय — प्रथम संस्करण

18: छन्द प्रभाकर — जगन्नाथ प्रसाद भानु — चतुर्थ संस्करण

19: छन्दः शास्त्र	डा0 रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'	प्रथम संस्करण
20: छन्दो हृदय प्रकाश, मुरलीधर कवि	सम्पादक पं0 शिवनाथ प्रसाद मिश्र	प्रथम संस्करण
21: तुलसी ग्रन्थावली	सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	प्रथम संस्करण
22: दारा शिकोह	डा0 कालिका रंजन कानूनगो	सन् 1949
23: देव और उनकी कविता	डा0 नगेन्द्र	प्रथम संस्करण
24: दोष भूषण	डा0 योगेन्द्र सिंह	प्रथम संस्करण
25: दोहावली	गोस्वामी तुलसीदास	गीता प्रेस
26: नवीन पिंगल	अवध उपाध्याय	प्रथम संस्करण
27: पद्माकर ग्रन्थावली	सम्पादक पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	प्रथम संस्करण
28: पिंगल पीयूष	परमानन्द शास्त्री	द्वितीय संस्करण
29: बुन्देल खंड का इतिहास	गोरे लाल तिवारी	सम्वत् 1990
30: भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका	डा0 नगेन्द्र	सन् 1955
31: भिखारी दास ग्रन्थावली	सम्पादक पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	द्वितीय संस्करण
32: भूषण का जीवन एवं व्यक्तित्व	हरिश्चन्द्र दीक्षित	प्रथम संस्करण
33: भूषण का वीर काव्य	हरिश्चन्द्र दीक्षित	प्रथम संस्करण
34: भूषण मतिराम तथा उनके अन्य भाई	डा0 किशोरी लाल गुप्त	सन् 1964
35: भूषण	सम्पादक पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	सम्वत 2026 वि0
36: भूषण विमर्श	पं0 भागीरथ दीक्षित	द्वितीय संस्करण
37: भूषण ग्रन्थावली	सम्पादक राम नरेश त्रिपाठी	चतुर्थ संस्करण
38: मतिराम ग्रन्थावली	सम्पादक पं0 कृष्ण बिहारी मिश्र	द्वितीय संस्करण
39: मतिराम कवि और आचार्य	डा0 महेन्द्र	सन् 1960
40: मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास	ईश्वरी प्रसाद	प्रथम संस्करण
41: मात्रिक छन्दों का इतिहास	डा0 शिवनन्दन प्रसाद	प्रथम संस्करण
42: महा कवि मतिराम	डा0 त्रिभुवन सिंह	प्रथम संस्करण
43: मुगल दरबार, भाग - 3 (मआसिर उल उमरा का हिन्दी रूपान्तर)	ब्रजरत्न दास	प्रथम संस्करण

44: मआसिर उल उमरा, हिन्दी अनुवाद — यदुनाथ सरकार — प्रथम संस्करण

45: मिश्र बन्धु विनोद — मिश्र बन्धु, भाग 1, 2, 3, 4 — द्वितीय तथा तृतीय संस्करण

46: रस चन्द्रिका — बिहारी लाल — प्रथम संस्करण

47: रसिक प्रिया — केशव (सम्पादक लक्ष्मी निधि चतुर्वेदी) — सन् 1954

48: रस सिद्धान्त — डा० नगेन्द्र — सन् 1964

49: रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र — डा० निर्मला जैन — प्रथम संस्करण

50: रस सिद्धान्तः स्वरूप विश्लेषण — डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, प्रथम संस्करण

51: राम चरित मानस — गोस्वामी तुलसी दास — गीता प्रेस

52: रीति कालीन अलंकार शास्त्र का शास्त्रीय विवेचन — डा० ओम प्रकाश शर्मा — सन् 1965

53: रीतिकालीन रीति कवियों का शिल्प विधान — डा० महेन्द्र — सन् 1968

54: रीति कवियों की मौलिक देन — डा० किशोरी लाल गुप्त — सन् 1971

55: रीति कालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, डा० बच्चन सिंह — संवत् 2015

56: रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस विवेचन — डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण

57: रीति काव्य संग्रह — डा० जगदीश गुप्त — सन् 1970

58: रीतिकालीन काव्य में लक्षणा का प्रयोगः एक आलोचनात्मक अध्ययन — डा० अरविन्द पाण्डेय — प्रथम संस्करण

59: रीतिकालीन कवियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त, डा० सूर्य नारायण द्विवेदी — सन् 1969

60: रीति काव्य की भूमिका — डा० नगेन्द्र — सन् 1969

61: रीति शृंगार — डा० नगेन्द्र — सन् 1954

62: ब्रजभाषा — डा० धीरेन्द्र वर्मा — प्रथम संस्करण

63: ब्रजभाषा व्याकरण — डा० धीरेन्द्र वर्मा — प्रथम संस्करण

64: ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद — प्रभु दयाल मीतल — द्वितीय संस्करण

65: वंश भास्कर — श्री सूर्य मल्ल — प्रथम संस्करण

66: विद्यापति पदावली — सम्पादक, राम वृक्ष बेनीपुरी, प्रथम संस्करण

67: विनय पत्रिका — गोस्वामी तुलसीदास — गीता प्रेस

68: बिहारी सतसई	बिहारी, बाल बोधिनी टीका	संवत 2010
69: बिहारी रत्नाकर	रत्नाकर	पंचम संस्करण
70: वीर रस का शास्त्रीय विवेचन	वरेकृष्ण	प्रथम संस्करण
71: शिवाजी	यदुनाथ सरकार	द्वितीय संस्करण
72: शिव राज भूषण		प्रथम संस्करण
73: विक्रम सतसई	विक्रम साहिकृत	प्रथम संस्करण
74: शिव सिंह सरोज	सम्पादक डा० किशोरी लाल गुप्त	सन् 1970
75: सिध्दान्त और अध्ययन	गुलाब राय	द्वितीय संस्करण
76: सूर सागर	सम्पादक, नन्द दुलारे वाजपेयी	प्रथम संस्करण
77: हिन्दी अभिनव भारती		प्रथम संस्करण
78: हित तरंगिणी, कृपाराम	सम्पादक सुधाकर पाण्डेय	प्रथम संस्करण
79: हिन्दी अलंकार	डा० नगेन्द्र	प्रथम संस्करण
80: हिन्दी काव्य धारा	राहुल सांकृत्यायन	प्रथम संस्करण
81: हिन्दी काव्य में छन्द योजना	डा० पुत्तुलाल शुक्ल	प्रथम संस्करण
82: हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास	सम्पादक, डा० नगेन्द्र	संवत 2015
83: हिन्दी साहित्य का उद्भव एवं विकास	राम बहोरी शुक्ल एवं डा० भगीरथ मिश्र	प्रथम संस्करण
84: हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	पंचम संस्करण
85: हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य राम चन्द्र शुक्ल	संवत 2008
86: हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० राम कुमार वर्मा	सन् 1973
87: हिन्दी रीति साहित्य	डा० भगीरथ मिश्र	सन् 1973
88: हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य	डा० सत्य देव चौधरी	सन् 1956
89: हिन्दी वाङ्मय का विकास	डा० सत्य देव चौधरी	प्रथम संस्करण
90: हिन्दी में शब्दालंकार विवेचन	डा० देव राज भाटी	प्रथम संस्करण
91: हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास	डा० भगीरथ मिश्र	द्वितीय संस्करण
92: हिन्दी में काव्य दोष, एक आलोचनात्मक अध्ययन	डा० जनार्दन प्रसाद अग्रवाल	प्रथम संस्करण

93: हिन्दी साहित्य कोष — सम्पादक डा0 धीरेन्द्र वर्मा — संवत 20

94: हिन्दी साहित्य का इतिहास, गार्सा द तासी अनु0 डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय — द्वितीय सं

अप्रकाशित शोध ग्रन्थ :—

95: हिन्दी काव्य में विस्मय तत्त्व एवं अद्भुत रस — डा0 शिवादत्त द्विवेदी

96: तुलसी का छन्द विधानः ऐतिहासिक तथा कला परक अध्ययन — डा0 चन्द्र प्रकाश सक्सेना

97: चिंतामणि और उनका काव्य — डा0 सत्य कुमार चन्देल

पत्रिकाएँ एवं खोज रिपोर्ट :—

1: काशी नागरी खोज रिपोर्ट, सन् 1900, 1903, 1924, 1925

2: खोज रिपोर्ट पंजाब, सन् 1900, 1906, 1922, 1923, 1931

3: नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 6 अंक सं0 2010

4: माधुरी पत्रिका, सन् 1924, 1926

5: सम्मेलन पत्रिका, भाग 47 तथा 49

6: हिन्दी अनुशीलन, वर्ष 10 अंक 1

मराठी के ग्रन्थ :—

1: छत्रपति शिवाजी — वी0 वी0 काले — सन् 1960

2: महाराष्ट्रीय ज्ञान कोष — य0 रा0 दाते — सन् 1936

3: शिव कालीन पत्र व्यवहार — वी0 का0 राजवाड़े — प्रथम संस्करण

4: शिव कालीन पत्र सार संग्रह, खंड 3 — सम्पादक श0 ना0 जोशी — सन् 1937

5: शिव कोश — श्री श्री0 हणमंते — सन् 1958

अरबी एवं फारसी के ग्रन्थ :—

1: तज़किर-ए-सर्व आज़ाद — मीर गुलाम अली बिलग्रामी कुतुब खाना, हैदराबाद

2: तारीखे मुहम्मदी हस्तलिखित — रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर (श्री इम्तियाज़ अली अर्शी के सौजन्य से)

3: मआसिर उल उमरा, — रज़ा लाइब्रेरी, रामपुर

अंग्रेजी के ग्रन्थ :-

क्र०	ग्रन्थ	लेखक	संस्करण
1:	इवोल्यूशन आफ इण्डियन कल्चर	बी० एन० लुनिया	प्रथम संस्करण
2:	एस्थेटिक्स	क्रोचे, डगलस ऐन्सिल द्वारा अनुवादित	सन् 1922
3:	ए सेलेक्शन फ्रम हिन्दी लिटरेचर	लाला सीताराम	प्रथम संस्करण
4:	एन एडवांस हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग - 2	आर० सी० मजुमदार	द्वि० सं०
5:	ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर	एफ ई० की० ए०	प्रथम सं०
6:	केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया	वोलजले हेग	चतुर्थ सं०
7:	दी इम्पायर आफ ग्रेट मुगल	जे० एस० हालेन्ड	द्वितीय सं०
8:	दी कान्ट्रीब्यूशन आफ हिन्दी पोएट्स प्रोसोडी	डा० जानकी नाथ सिंह मनोज	प्रथम सं०
9:	दी प्रिन्सिपुल आफ आर्ट	सी० कालिंग वुड	सन् 1955
10:	दी मीनिंग आफ आर्ट	हरबर्ट रीड	द्वितीय सं०
11:	दी नम्बर आफ रसाज़	डा० वी० राघवन	प्रथम सं०
12:	मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान	डा० ग्रियर्सन	सन् 1889
13:	राइज एण्ड फाल आफ मुगल एम्पायर	आर० पी० त्रिपाठी	तृतीय सं०
14:	शिवाजी एण्ड हिज टाइम	यदुनाथ सरकार	सन् 1919
15:	शिवाजी दी ग्रेट	बाल कृष्ण शर्मा	प्रथम सं०
16:	स्टडीज आफ नायक नायिका भेद	डा० राकेश	सन् 1967
17:	सेलेक्टेड स्पीच	टी० एस० इलियट	
18:	सेन्ट्रल इण्डियन गजेटियर ग्वालियर,	सी० ई० लुआर्ड	प्रथम सं०
19:	हिन्दी लिटरेचर	एफ० ई० कीथ	सन् 1920
20:	हिस्ट्री आफ औरंगजेब भाग 3	जदुनाथ सरकार	सन् 1916
21:	हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर	के० बी० जिन्दल	द्वितीय सं०